हिन्दी-साहित्य और बिहार

[सातवीं शती से अठारहवीं शती तक]

प्रथम खण्ड

सम्पादक

श्रीशिवपूजनसहाय

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

वक्तव्य

साहित्य जिसके नाम गुण यश का मनोहर चित्र है,
वह जगन्नाटक सूत्रधर ही प्राणियों का मित्र है।
जो जगन्मानस के कमल विकसा रहा आदित्य है,
वह भाव-भाषा का धनी भगवान ही साहित्य है।

—रामचरित उपाध्याय

बिहार-सरकार द्वारा संस्थापित, संरक्षित और संचालित बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की ओर से 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' नामक पुस्तक-माला का यह प्रथम गुच्छ हिन्दी-प्रेमियों के कर-कमलों में समर्पित करते हुए हमें स्वभावतः मानसिक शान्ति का अनुभव हो रहा है।

वैदिक काल से आधुनिक काल तक बिहार में विविध भाषाओं के साहित्य की सृष्टि होती आ रही है। संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, मगही, मैथिली, भोजपुरी आदि के अतिरिक्त अँगरेजी, फारसी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं के साहित्य की रचना भी बिहार में हुई है। पर आजतक उसकी खोज और रक्षा का कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया गया। अब देश के स्वतंत्र हो जाने पर यह अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि समाज की विशिष्ट प्रतिभाओं की लुप्तप्राय विभूतियों के उद्धार का प्रयत्न किया जाय।

इस पुस्तक-माला में केवल हिन्दी-साहित्यसेवियों की कृतियों का ही संग्रह किया जा रहा है। प्रस्तुत प्रथम गुच्छ में सातवीं से अठारहवीं शती तक के साहित्यकारों से संबद्ध यथोपलब्ध सामग्री का संचय किया गया है। आगामी गुच्छों में उन्नीसवीं और बीसवीं शती के साहित्यसेवियों के परिचयात्मक विवरण क्रमशः प्रकाशित होंगे।

सन् १९५० ई० के मध्य में परिषद् की सेवा का अवसर मिलने पर हमारे मन में सहसा यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि परिषद् के तत्त्वावधान में यह इतिहास अवश्य प्रकाशित हो जायगा। सन् १९५१ ई० में ही हमने परिषद् के संचालक-मण्डल में इस विषय को उपस्थित किया। उस समय के शिक्षा-मंत्री और परिषद् के अध्यक्ष आचार्य बदरीनाथ वर्मा, शिक्षा-सचिव श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस० तथा संचालक-मंडल के सदस्यों ने हमारे प्रस्ताव के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करने की

कृपा की। उन लोगों ने इस कार्य की यथोचित व्यवस्था करने के लिए हमें आदेश एवं अधिकार भी दिया।

परिषद् के अधिकारियों द्वारा इस कार्य की व्यवस्था का अधिकार प्राप्त होने पर हमें यह अनुभव हुआ कि सबसे पहले इस कार्य के लिए एक सुयोग्य एवं अनुभवी व्यक्ति की आवश्यकता है। ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति के लिए सरकार से लिखा-पढ़ी होने लगी और उपयुक्त व्यक्ति की खोज भी जारी रही। नये पद के लिए सरकारी स्वीकृति मिलने और कार्य-कुशल व्यक्ति का चुनाव करने में जो समय लगा, उसके बीच थोड़ा-बहुत काम निश्चित पारिश्रमिक देकर कराया गया।

सन् १९५५ ई० के आरम्भ में श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ इस काम को संभालने के लिए नियुक्त हुए। हिन्दी में बिहार-विषयक साहित्य का निर्माण करके उन्होंने अच्छी ख्याति पाई है। हमने उनकी इच्छा के अनुसार सारी सुविधाओं की व्यवस्था कर दी। सरकारी कार्यालय के नियमानुसार जो कुछ प्रबन्ध कर सकना संभव था, हमने कर दिया और अम्बष्ठजी भी सुव्यवस्थित ढंग से काम करने लगे।

साहित्यिक इतिहास का काम विशेष रूप से अनुसंधानात्मक है, इसलिए उसमें काफी समय लगते देखकर परिषद् के प्रकाशनाधिकारी श्रीअनूपलाल मण्डल को इस बात की बड़ी चिंता होने लगी कि यह इतिहास न जाने कितने वर्षों में पूरा होगा। उनके सिवा परिषद् के कई सदस्य भी ऐसी आशंका प्रकट करने लगे कि न शोध का अंत होगा और न पुस्तक शीघ्र प्रकाशित होगी। सबकी उत्कंठा देखकर हम भी अधीर और आतुर होने लगे।

सन् १९५६ ई० में श्रीअखिलनारायण सिंह 'तोमर' परिषद् के कार्यालय-सचिव के रूप में शिक्षा-विभाग से आये। उनकी सहायता द्वारा कार्यालय के प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्यों से अवकाश पाकर हम प्रतिदिन इस इतिहास के काम में कुछ समय देने लगे।

सन् १९५८ ई० में निश्चय हुआ कि प्रथम खण्ड की पाण्डुलिपि प्रेस में भेज दी जाय। उधर पाण्डुलिपि टंकित होने लगी और इधर प्रतिदिन की खोज से मिली हुई नई सामग्री टंकित प्रति में जोड़ी जाने लगी। इस तरह ऐसा अनुभव होने लगा कि अंतिम प्रेस-कॉपी कभी तैयार न हो सकेगी। अतः सबकी उत्सुकता का ध्यान रखते हुए यह निश्चय करना पड़ा कि शोध से जो कुछ प्रामाणिक सामग्री मिल सकी है, वही प्रकाशित कर दी जाय और आगे मिलनेवाली सामग्री को क्रमशः प्रकाशित करते रहने का प्रबन्ध किया जाय।

सन् १९५९ ई० के आरम्भ में परिषद् के संचालक-मण्डल ने हिन्दी में भारतीय शब्दकोश प्रकाशित करने का निश्चय किया। उस काम के लिए परिषद् ने श्रीगदाधर-प्रसाद अम्बष्ठ को चुना। हमने परिषद् के संचालक-मण्डल के निश्चय एवं निर्देश के अनुसार हिन्दी-शब्दकोश का काम श्रीअम्बष्ठजी को सौंप दिया तथा उसके लिए एक-दो सहायक भी उन्हें दे दिये। साथ ही 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' की सारी सामग्री शब्दकोश-विभाग से अलग करके हमने परिषद् के साहित्य-विभाग के अनुसंधायक श्रीबजरंग वर्मा के हवाले कर दी। उन्होंने संशोधित और संपादित प्रेस-कॉपी को

फिर नये सिरे से तैयार किया. तथा पटना-स्थित अनेक शोध-स्थानों में स्वयं जाकर बहुत-सी नई प्रामाणिक सामग्री का संग्रह करके यथास्थान आवश्यक परिवर्त्तन-परिवर्द्धन कर दिया। हमने ऐसी व्यवस्था कर दी कि वे परिषद् के साहित्य-विभाग के अन्य अनुसंधानात्मक कार्यों से सर्वथा मुक्त होकर एकमात्र इसी काम में अपना समय लगावें।

वर्त्तमान प्रथम खण्ड के लिए श्रीबजरंग वर्मा ने जो अति परिश्रम किया, उसके अतिरिक्त परिषद् के निम्नांकित कार्यकर्त्ताओं ने भी आवश्यकतानुसार हमारी विशेष सहायता करने में बड़ी सहानुभूति प्रदर्शित की—

१. पं० शशिनाथ झा (विद्यापति-विभाग)
२. पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' (सहकारी प्रकाशनाधिकारी)
३. श्रीरामनारायण शास्त्री (प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थशोध-विभाग)
४. पं० विधाता मिश्र (,, ,,)
५ श्रीश्रुतिदेव शास्त्री (लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग)
६. श्रीश्रीरंजन सूरिदेव (प्रकाशन-विभाग)
७. श्रीपरमानन्द पाण्डेय (ग्रन्थपाल, अनुसंधान-पुस्तकालय)

हम उन सभी उदाराशय सज्जनों का भी आभार अंगीकार करते हैं, जिन्होंने येन केन प्रकारेण इस इतिहास में सहायता देने की कृपा की है। यथासंभव ऐसी चेष्टा की गई है कि इस इतिहास के किसी-न किसी अंश में उनका नामोल्लेख हो जाय।

इस पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन की व्यवस्था में श्रीअनूपलाल मण्डल और श्रीअजित-नारायण सिंह 'तोमर' ने जो तत्परता और ममता दिखाई, उससे हमें आशा है कि इस इतिहास के प्रकाशन के भावी खण्डों में भी उनकी दिलचस्पी इसी प्रकार बनी रहेगी।

हमें संतोष है कि वर्त्तमान शिक्षा-मंत्री श्रीमान् कुमार गंगानन्दसिंहजी की छत्रच्छाया में इस साहित्यिक इतिहास-पुस्तकमाला के प्रकाशन का श्रीगणेश हुआ है, और आशा है कि इसके अगले खण्ड भी यथासमय क्रमशः प्रकाशित होते रहेंगे। अंत में, हम बिहार-सरकार के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिसकी कृपा से बिहार का यह अत्यन्त आवश्यक कार्य विधिवत् सम्पन्न हो सका।

पुस्तक छप जाने पर यह देखा गया कि बहुत सावधानता से मुद्रण-कार्य करने पर भी कुछ भ्रमात्मक भूलें रह गई हैं। उनका सुधार 'शुद्धि-पत्र' में कर दिया गया है।

श्रावणी पूर्णिमा
शकाब्द १८८१; विक्रमाब्द २०१६

शिवपूजन सहाय
परिषद्-संचालक

विषयानुक्रमणिका

अठारहवीं शती

भूमिका

रामनाममहिमा बिस्वासी, बन्दौं गनपति बिघ्नबिनासी।
मातु सारदा चरन मनावौं, जासु कृपा निर्मल मति पावौं॥

'रामचरितमानस' की एक चौपाई है—**'साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ, नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ'**—वह इस साहित्यिक इतिहास पर शब्दशः चरितार्थ हुई है। बहुत दिनों की 'शास्ति' के बाद ऐसा 'प्रसाद' हुआ कि आज यह इतिहास हिन्दी-संसार के सामने प्रकट हो रहा है। धन्य है वह दयालु प्रभु जिसने 'शास्ति' में से आधा दन्त्य 'स' निकालकर उसकी जगह आधा दन्त्य 'न' जड़ देने की कृपा दिखाई।

'योऽन्तःस्थितानि भूतानि येन सर्वमिदन्ततम्'—उसी परमपुरुष की मंगलमयी प्रेरणा से किसी सत्कार्य का शुभारम्भ होता है और फिर उसी की कृपा से विघ्न-बाधाओं की परम्परा पार करके वह कार्य सिद्ध भी होता है। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के अनुसार किसी महत्कार्य में विघ्न तो होते-ही हैं, किन्तु उसमें लगे रहने से सफलता भी मिलती है। संभवतः, इस पुस्तक के पाठक ऐसा अनुभव कर सकेंगे।

इस इतिहास के लिए, सबसे पहले, प्राणिमात्र के हृद्देश में अधिष्ठित ईश्वर की प्रेरणा मेरे साहित्य-गुरु पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा के हृदय में हुई थी। उन्होंने ही इस कार्य के लिए मुझे उत्प्रेरित किया और आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय-संचालक श्रीशुकदेवसिंह को मेरी सहायता के लिए उत्साहित किया था। हिन्दी-प्रेमियों से इतिहास के लिए सामग्री-संकलन करने के निमित्त अनुरोध करते हुए सबसे पहली सूचना उन्होंने ही लिखी थी और सामग्री-संकलन के हेतु उसके साथ ही एक विवरण-पत्र भी तैयार कर दिया था। उनकी लिखी उस सूचना[1] के साथ वह विवरण-पत्र भी नीचे दिया गया है।

"नम्र निवेदन

'अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है
है वह मुर्दा देश जहाँ साहित्य नहीं है'

मान्यवर महाशय,

हमलोग बिहार के हिन्दी-साहित्य का इतिहास दो वर्ष से लिख रहे हैं। हमलोगों की आन्तरिक अभिलाषा है कि वह यथासंभव सर्वाङ्गपूर्ण तैयार हो। किन्तु उसमें विशेष

---

१. उक्त सूचना और विवरण-पत्र की एक हजार प्रतियाँ पृथक् पत्रक के रूप में, लक्ष्मीनारायण प्रेस (काशी) में छपवाकर हमने हिन्दी-प्रेमियों की सेवा में भेजी थीं।—सं०

परिश्रम, समय और द्रव्य व्यय करने की आवश्यकता है। परिश्रम और समय के सदुपयोग में तो कोई त्रुटि नहीं होने पाती पर द्रव्य का अभाव अवश्य है। इसलिये सब स्थानों में घूम २ कर यथेष्ट सामग्री एकत्र करने में हमलोग सर्वथा असमर्थ हैं। हाँ, यदि आप सरीखे सहृदय साहित्य-सेवी सज्जन हमलोगों को सहानुभूतिपूर्ण सहायता करने में संकोच न करें तो बिहार का वस्तुतः बड़ा उपकार हो सकता है। सभी हिन्दी-प्रधान प्रान्तों के हिन्दीप्रेमी विद्वानों ने अपने २ प्रान्त के कवियों और लेखकों की जीवनियाँ और रचनाएँ लिख कर अपने प्रान्त की गौरव-वृद्धि की है। किन्तु बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि बिहार के अनेक पुराने लेखक और सुप्रसिद्ध कवि घोर अंधकार के गर्भ में पड़े हुए हैं। कोई ऐसा साधन नहीं जिसके द्वारा उन सभी साहित्यरसिकों का पवित्र चरित्र पढ़ कर हम लाभान्वित हो सकें। कभी बिहार के साहित्यिक गौरव पर हम हिन्दीभाषियों को फूलने का अवसर ही नहीं मिलता। इसलिये अत्यंत अयोग्य होते हुए भी हमलोगों ने, इस महत्कार्य्य को, आप सरीखे उदार साहित्यानुरागियों के भरोसे पर तबतक के लिये अपने हाथ में ले लिया है जबतक कोई बहुज्ञ विद्वान इधर ध्यान नहीं देता। प्रत्येक बिहार-निवासी हिन्दी-प्रेमी का यह कर्तव्य होना चाहिये कि बिहारियों की वास्तविक हिन्दी-साहित्यसेवा का महत्त्व दिखलाने की चेष्टा करके बिहार का मुख उज्ज्वल और मस्तक उन्नत करें।

यद्यपि इस विषय में हमलोगों को जानकारी थोड़ी है तथापि आशा है कि आप महानुभावों की कृपा से सब कुछ साध्य हो सकता है। कृपया आप स्वयं इस फ़ार्म को सावधानतापूर्वक भर कर भेज दें और अपने नगर तथा ग्राम के अथवा आसपास के अन्यान्य सुपरिचित हिन्दी-सेवकों का पूरा पता बतलावें जिनकी सेवा में यह फार्म हमलोग शीघ्र भेज कर खानापूरी करा सकें। जिन हिन्दी के उल्लेख्य पुस्तकालयों, वाचनालयों, पुस्तक प्रकाशक समितियों, कविसमाजों, पाठशालाओं नाट्यमंडलियों, प्रेसों और पत्रों के विषय में आप कुछ जानते हों उनका पूरा पता, नियम और विवरण आदि भेजने या भिजवाने की कृपा करें ताकि हमलोगों को सामग्री संकलन में यथेच्छ सफलता प्राप्त हो। विश्वास है कि आप अपनी जानकारी भर पूरी सहायता करने में कभी कसर न करेंगे। हमलोग अपने सहायकों की नामावली धन्यवादपूर्वक प्रकाशित कर के पुस्तक को पवित्र करेंगे। विशेष गौरव और आनन्द की बात यह है कि इस पुस्तक को बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रकाशित करेगा।

हिन्दी-साहित्यसेवियों के दासानुदास—
शुकदेव सिंह
शिवपूजन सहाय
नागरीप्रचारिणीसभा, आरा।"

"विहार के हिन्दी साहित्य का सर्वाङ्ग पूर्ण इतिहास रचने की सामग्री"

'समस्त विहार के हिन्दी कवि, लेखक, पत्र-प्रकाशक और सम्पादक, हिन्दी-प्रेस तथा हिन्दी-सभा-समाज के संस्थापक वा संचालक'

की

'विवरणात्मक जीवनी, उनकी रचनाओं के उत्कृष्ट नमूने, उनके प्रकाशित वा अप्रकाशित ग्रंथों का पूर्ण विवरण

(विहार प्रादेशिक-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित होगा)

क्रम संख्या	नाम (उपाधि सहित) [लेखक, कवि, सम्पादक, पत्र प्रकाशक या प्रेसाध्यक्ष]	वंश-परिचय (पिता, वर्तमान वंशधर आदि) [कोई उल्लेख्य वंशधर]	जन्म स्थान (पूरा पता, डाकघर, जिला, रेलवे स्टेशन, प्रधान सड़क आदि)	जन्म और मरणतिथि (दिन, मास, वर्ष) (संवत् वि० या सन् ई०)	रचित ग्रंथों के नाम (प्रकाशित वा अप्रकाशित) [मासिक या साप्ताहिक पत्र का नाम, प्रेस या सभा समाज का नाम]	रचना-काल (संवत् या सन्) [प्रेस या सभा की स्थापना-तिथि, पत्र की आयु आदि]	रचना के उत्कृष्ट नमूने (गद्य या पद्य) [उद्धृत अंश के पूरे हवाले के साथ ग्रंथ का नाम और मूल्य]	विशेष विवरण [अन्यान्य विशेष आवश्यक ज्ञातव्य बातें जो महत्वपूर्ण हों]
१	२	३	४	५	६	७	८	९

आवश्यक सूचना—शुद्ध २ स्पष्ट नागराक्षर में स्वच्छतापूर्वक लिखना चाहिये। लेखक वा प्रेषक महाशय का नाम धन्यवाद पूर्वक प्रकाशित किया जायगा।

विनीत प्रार्थना—सावधानी और सहृदयता से सब कोष्ठकों को पढ़ और समझ कर खानापूरी करने की कृपा कीजिये। इस फार्म के भर जाने पर ऐसा ही दूसरा बना लीजिये।

याद रखियेगा—यह सारी सामग्री आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा के पते से शुकदेव सिंह या शिवपूजन सहाय को भेजनी पड़ेगी।

सन् १९१९ ई० (विक्रमाब्द १९७६) में, आज से चालीस वर्ष पहले, जब बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रथमाधिवेशन सोनपुर (हरिहरक्षेत्र) में हुआ था, उसके कार्य-विवरण के चौथे आवरण-पृष्ठ पर उक्त सूचना प्रकाशित हुई थी ।

उक्त सूचना के प्रकाशित होने पर श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित, श्रीरामधारी प्रसाद, श्रीललितकुमारसिंह 'नटवर', श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीराघवप्रसादसिंह और श्रीगंगाशरणसिंह बड़े उत्साह से सामग्री-संग्रह के कार्य में तत्पर हो गये । वे लोग जहाँ-कहीं, जो कुछ सामग्री अथवा सूचना पाते, मेरे पास भेजते जाते । मैं भी उस काम में बराबर जुटा रहा । प्राप्त सामग्री का संचय और प्राप्त सूचनाओं के आधार पर पत्र-व्यवहार करने में संलग्न रहने से हिन्दी-प्रेमियों का सहयोग प्राप्त होने लगा ।

सन् १९२० ई० में महात्मा गान्धी के असहयोग-आन्दोलन की आँधी आई । मैं भी उसमें सूखा पत्ता बना । मेरे पूर्वोक्त सहायक बन्धु भी उस युग की अभिनव क्रान्ति के पुजारी बन गये । तब भी संग्रह-कार्य मन्थर गति से होता ही रहा । मैं अपनी अल्पज्ञता और अनुभव-हीनता के कारण संगृहीत सामग्री अपने साथ ही रखता था—जहाँ-कहीं रोजी कमाने जाता, मोहवश उसे लिये फिरता । यह अनाड़ीपन बड़ा घातक हुआ ।

सन् १९२१ ई० में मासिक 'मारवाड़ी-सुधार' का सम्पादक होने पर और १९२३ ई० में साप्ताहिक 'मतवाला' के सम्पादकीय-विभाग में सम्मिलित होने पर मुझे संग्रह-कार्य में विशेष सुविधा हुई । उसी समय ऐसा अनुभव हुआ कि सामग्री-संग्रह के लिए किसी पत्र का आधार बड़ा आवश्यक है । संयोगवश सन् १९२५-२६ ई० में, जब मैं कलकत्ता के 'मतवाला'-मण्डल से लखनऊ की मासिक पत्रिका 'माधुरी' के सम्पादकीय-विभाग में काम करने गया, तब पूर्ववत् सारी संगृहीत सामग्री अपने साथ वहाँ लेता गया । वहाँ अकस्मात् भीषण साम्प्रदायिक दंगा हो गया । घोर प्राणसंकट की स्थिति में मुझे सर्वथा विवश होकर सारी साहित्यिक सामग्री वहीं छोड़ काशी चला जाना पड़ा । परित्यक्त सामग्री के मोह एवं शोक में वहाँ लगभग एक मास तक बीमार रहने के बाद जब लौटकर लखनऊ गया, तब देखा कि सब सामान गायब है, एक चिट-पुर्जा भी हाथ न लगा । निराशा-जन्य दुःख में पश्चात्ताप करता हुआ मैं पुनः 'मतवाला'-मण्डल में वापस हो गया । वहाँ फिर अपनी विक्षिप्त स्मृति-शक्ति के सहारे संग्रह-कार्य करने लगा । उपर्युक्त बन्धुओं के हार्दिक सहयोग से पुनः सामग्री इकट्ठी होने लगी ।

सन् १९२७ ई० में, लहेरियासराय (दरभंगा) के पुस्तक-भण्डार से, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरीजी के सम्पादकत्व में, बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र 'बालक' का प्रकाशन हुआ । उस समय उन्होंने सामग्री-संकलन पर विशेष ध्यान दिया । फिर, उसके बाद जब वे क्रान्तिकारी मासिक 'युवक' के सम्पादक हुए, तब भी उन्होंने और उनके सहकर्मी श्रीगंगाशरणसिंह ने इस काम में खासी दिलचस्पी दिखाई । श्रीगंगाशरणजी ने तो बिहार-प्रान्त के अनेक स्थानों में स्वयं भ्रमण करके मसाला जुटाया । श्रीरामधारी प्रसाद और श्रीनटवरजी भी सोत्साह सहायता करते रहे । उन्हीं दिनों 'बालक' के श्रीकृष्णजन्माष्टमी के सुन्दर विशेषांक (बालकांक, वर्ष ३, अंक ८, विक्रमाब्द १९८५) में निम्नांकित सूचना[1] छपी थी—

---

१. वह सूचना उस समय के दैनिक-साप्ताहिक पत्रों में भी छपी थी ।—सं०

विजया-दशमी तक अवश्य भेज दीजिये

'बिहार के हिन्दी-कवियों और लेखकों की सचित्र जीवनी' की सामग्री

आपको मालूम है कि यह पुस्तक बरसों से तैयार की जा रही है। बहुत-सी सामग्री संग्रहीत हो चुकी हैं। दसहरे के बाद ही उस पुस्तक का सम्पादन-कार्य आरम्भ हो जायगा, और दीवाली के बाद ही छपाई भी शुरू हो जायगी; क्योंकि इसके प्रकाशन में अनावश्यक एवं असह्य विलम्ब हो रहा है। अनेक बार बिहार के साहित्यानुरागियों से आवश्यक सामग्री भेजने की प्रार्थनाएँ की गईं, और उनकी कृपा के लिये यथेष्ट प्रतीक्षा भी की जा चुकी। किन्तु सन्तोषजनक फल नहीं हुआ! अतएव यह निश्चय किया गया है कि अबतक जितनी सामग्री प्राप्त हो चुकी है, उसी का सिलसिला दुरुस्त करके पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया जाय, ताकि त्रुटियों एवं न्यूनताओं की ओर साहित्यानुरागियों का ध्यान शीघ्र आकृष्ट हो, और पुस्तक के दूसरे-परिशिष्ट-खंड में उनकी पूर्ति हो जाय। फिर भी आगामी दसहरे तक सामग्री भेजने का अवसर दिया जा रहा है। विश्वास है कि बिहार के हिन्दी-प्रेमी सज्जन इस बार अवश्य ही इस निवेदन पर विशेष रूप से ध्यान देने की कृपा करेंगे। सब तरह की सामग्री और इस विषय की चिट्ठी-पत्री निम्नलिखित पते से भेजिये—

श्री गंगाशरण सिंह 'साहित्यरत्न'
खड्गपुर, बिहटा (पटना)

विशेष सूचना—यदि आप लेखक, कवि, सम्पादक या प्रकाशक हैं, तो अपनी पूरी जीवनी (फोटो-सहित) शुद्ध और स्पष्ट लिखकर भेजिये – साथ ही, अपनी रचनाओं के उत्कृष्ट नमूने और अपनी लिखी या प्रकाशित पुस्तकों तथा सम्पादित पत्रों की प्रतियाँ भी। और, जिन मृत या जीवित लेखकों, कवियों, सम्पादकों और प्रकाशकों को आप जानते हों, या जो आपके आसपास रहते हों, उनकी जीवनी और रचनायें आदि भी भेजिये। अपने ग्राम, नगर या आसपास के उल्लेखनीय हिन्दी-पुस्तकालयों, हिन्दी-प्रेसों, हिन्दी-पत्रों और प्रकाशन-संस्थाओं का विवरण भी भेजिये। कार्योपरान्त सब सामग्री, आज्ञानुसार, सुरक्षित लौटा दी जायगी। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में तत्परता से हाथ बटाने वाले सज्जनों के नाम भी पुस्तक में धन्यवाद-पूर्वक प्रकाशित कर दिये जायँगे।

व्यवस्थापक—हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

'बालक' के प्रकाशनारम्भ-काल (सन् १९२७ ई०) में ही कलकत्ता से मैं पुस्तक-भण्डार की सेवा में चला आया। 'बालक'-सम्पादक श्रीबेनीपुरीजी के अतिरिक्त 'बालक' के जन्मदाता-संचालक श्रीरामलोचनशरणजी से भी मुझे इस काम में यथोचित प्रोत्साहन मिलने लगा। उस समय हिन्दी-संसार में 'बालक' की बड़ी प्रख्याति हुई और उसके माध्यम से इस काम में बिहार के हिन्दी-प्रेमियों की सहानुभूति भी प्राप्त होने लगी।

'बालक' के बाद जब श्रीबेनीपुरीजी 'युवक' के सम्पादक थे, तभी निम्नांकित सूचना[१] पुनः छपवाकर हिन्दी-प्रेमियों में वितरित की गई थी—

१. यह सूचना भी उस समय के दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित कराई गई थी।—सं०

कृपया उत्तर शीघ्र दीजिये

'बिहार के हिन्दी-कवि और लेखक' (सचित्र)

सेवा में—

....

....

प्रिय महाशय,

बिहार के हिन्दी-कवियों और लेखकों की रचनाओं और उनके चरित पर पूर्ण प्रकाश डालने वाली एक पुस्तक प्रकाशित होने का अभाव बहुत दिनों से लोग अनुभव कर रहे हैं। इसके लिये कई बार कई व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा प्रयत्न भी किये गये, फल-स्वरूप बहुत-से प्राचीन और नवीन कवियों तथा लेखकों की कृतियाँ भी प्राप्त हुईं, किन्तु अभीतक पूरी सामग्री संकलित न होने के कारण पुस्तक-रूप में उनका प्रकाशन न हो सका। इस बार हमलोगों ने यह पक्का विचार कर लिया है कि जिस प्रकार भी हो, यह काम तुरत सम्पन्न कर लिया जाय। हमलोगों के सौभाग्य से बिहार के उत्साही प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (दरभंगा) के संचालक महोदय ने इस ग्रंथ को सचित्र रूप में प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया है। अतएव, यह पत्र आपकी सेवा में भेज कर हम आपसे सांजलि अनुरोध करते हैं, कि आप शीघ्र ही अपने एवं अपने जान-पहचान के लेखकों और कवियों के सम्बन्ध की ज्ञातव्य बातें, निम्नलिखित क्रम के अनुसार, लिख भेजने की कृपा करें। साथ ही, यदि किसी प्राचीन कवि के विषय में आप कुछ जानते हों—जैसा कि हमें पूर्ण विश्वास है, आप अवश्य जानते होंगे—तो उनसे भी हमें परिचित करायें। यदि आपके जानते कोई ऐसे कवि भी हों, जिनके विषय में आप स्वयं पूरा वर्णन न दे सकते हों, किन्तु उनके विषय की सामग्री कहाँ से प्राप्त हो सकती है, इसकी खबर आप रखते हों, तो वह पता भी हमें बताइये, जिसमें हम वहाँ से पत्र-व्यवहार कर, या वहाँ जाकर, सब बातें मालूम कर सकें। यदि पत्र द्वारा आप किसी कारण से अधिक बातें बताने में असमर्थ हों तो लिखिये कि हम आपसे आकर मिलें और सब बातों की जानकारी हासिल करें। विवरणों के साथ ही यदि आप अपना और अन्य कवियों या लेखकों के चित्र भी भेज सकें, तो बड़ी कृपा हो।

यह कार्य बहुत ही कठिन और व्यय-साध्य है। जबतक आप ऐसे सहृदय साहित्यिक इस कार्य में हाथ न बटाएँगे—इसका भली-भाँति सम्पन्न होना असम्भव-सा है। आप ही लोगों की कृपा के भरोसे हमने इस कार्य के प्रारम्भ करने का साहस किया है। आशा है कि आप इस पर उचित ध्यान देंगे और शीघ्र ही उपयुक्त विवरण भेज कर अनुगृहीत करेंगे। इस पवित्र कार्य में सहायता देनेवाले सज्जनों की नामावली में आपका नाम भी इस पुस्तक में प्रकाशित करने का सौभाग्य हमें प्राप्त होगा—ऐसा भरोसा है।

विवरण यों भेजिये—

१. कवि या लेखक का नाम, २. वंश-परिचय, ३. जन्म-तिथि (मृत होने पर मृत्यु-तिथि भी), ४. पूरा पता, ५. संक्षिप्त चरित, ६. रचना-काल, ७. रचित ग्रन्थों के नाम (प्रकाशित या, अप्रकाशित कब और कहाँ से प्रकाशित हुए), ८. फुटकर रचनायें—प्रकाशित या अप्रकाशित, ९. रचना के उत्कृष्ट नमूने, १०. अन्य ज्ञातव्य बातें।

कृपैषी—

श्रीशिवपूजन सहाय, श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, श्रीगंगाशरणसिंह

पत्र-व्यवहार इस पते पर कीजिये—

श्रीगंगाशरणसिंह, मु०—खरगपुर, पो०—बिहटा, (पटना)

सन् १९३०-३१ ई० में जब मैं सुलतानगंज (भागलपुर) से प्रकाशित 'गंगा' का सम्पादक हुआ, तब पण्डित जगदीश झा 'विमल' की सहायता से उस क्षेत्र की कुछ सामग्री प्राप्त हुई। 'गंगा' के सहकारी-सम्पादक साहित्याचार्य श्री 'मग' ने भी मेरे उद्योग में सहयोग देने की कृपा की। पूरे एक साल के बाद जब मैं फिर पुस्तक-भण्डार में आया, तब 'बालक' के सहकारी सम्पादक श्रीअच्युतानन्द दत्त और 'मिथिला-मिहिर' के सम्पादक श्रीसुरेन्द्र झा 'सुमन', साहित्याचार्य ने बड़ी सहृदयता से इस काम में सहायता दी। इस तरह सामग्री-संकलन का काम नियमित रूप से चलता रहा।

दैवयोग से सन् १९३४ ई० में, विशेषतः उत्तर-बिहार में, भीषण भूकम्प हुआ। उसमें समस्त संगृहीत सामग्री आकस्मिक भूगर्भ-विस्फोट में नष्ट-भ्रष्ट हो गई। विदीर्ण पृथ्वी से निर्गत बालुका-मिश्रित जलराशि में से अस्त-व्यस्त कागजों को घण्टों बाद निकालने की सुधि हुई, तो कुछ ही बिखरे पन्ने हाथ लगे, बाकी सब लथपथ होने के कारण सुखाने पर भी लिट्ट हो गये। किन्तु उस समय तो प्राणों के ही लाले पड़े थे; क्योंकि चौबीस घंटे तक रह-रहकर भूचाल के झटके आते-जाते रहे, अतः निराशा और ग्लानि के कारण मन हतोत्साह हो गया। तब भी मेरे हृदय में जो निश्चित संकल्प था, वह 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' का आश्वासन दे-देकर इस काम में लगे रहने को मुझे उद्विग्न एवं प्रेरित करता ही रहा। उस समय वयोवृद्ध साहित्यसेवी पण्डित जनार्दन झा 'जनसीदन' और श्रीगंगापति सिंह ने मेरे विचलित मन को बड़ा ढाढ़स और बढ़ावा दिया, जिससे मेरा टूटा हुआ मन फिर इस काम में जुट गया।

ईश्वर की कृपा से सन् १९३९ ई० में जब मैं राजेन्द्र-कॉलेज में हिन्दी-विभाग का प्राध्यापक होकर छपरा चला गया, तब सामग्री-संकलन और संकलित सामग्री को सुव्यवस्थित करने का अवसर मिलने लगा। अवकाशों का सदुपयोग अधिकतर इसी काम में होता रहा। ईश्वरीय प्रेरणा से सन् १९४० ई० में पुस्तक-भण्डार (लहेरियासराय) की रजत-जयन्ती और उसके लब्धकीर्त्ति संस्थापक श्रीरामलोचनशरणजी की स्वर्ण-जयन्ती के उपलक्ष्य में एक बृहत् स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित करने का निश्चय हुआ। उस ग्रन्थ में उस समय तक की संगृहीत सामग्री का समावेश तो किया ही गया, और

भी बहुत-सी नई सामग्री खोजकर बिहार की हिन्दी-सेवा का विवरणात्मक परिचय दिया गया। उस अवसर पर सामग्री-संग्रह में पुस्तक-भण्डार का विद्यापति-पुस्तकालय बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। उसमें संचित पुरानी दुर्लभ पुस्तकों और अलभ्य पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री-संकलन करने में वर्त्तमान विख्यात कथाकार श्रीराधाकृष्ण प्रसाद, एम्० ए० ने बड़ी सहायता की।

जब सन् १९४३ ई० में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई, तब सभा की ओर से पण्डित लल्लीप्रसाद पाण्डेय ('बालसखा'-सम्पादक) के तत्त्वावधान में हिन्दी-संसार के साहित्यसेवियों का संक्षिप्त परिचय-ग्रन्थ तयार किया जाने लगा। पाण्डेयजी ने मुझसे बिहार की सहित्य-सेवा का विवरण माँगने की कृपा की। मैंने अपने पास की संगृहीत सामग्री की प्रतिलिपि उनकी सेवा में प्रेषित कर दी। यद्यपि वह ग्रन्थ प्रकाशित न हो सका, तथापि उसके कारण मेरे पास की सामग्री बहुत-कुछ सुव्यवस्थित हो गई।

भारतेन्दु-युग के वयोवृद्ध लेखक बाबू शिवनन्दन सहाय से मैंने उनके जाने-सुने-देखे साहित्यकारों का परिचयात्मक विवरण लिखवाया था। उसके कई पन्ने छाँटकर श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन' ले गये। वे उस विवरण को मुजफ्फरपुर से प्रकाशित अपनी 'विभूति' पत्रिका में प्रकाशित करना चाहते थे। किन्तु उनके असामयिक निधन के कारण वह विवरण न छपा और न मेरे हाथ लगा। उस विवरण के खो जाने से सुव्यवस्थित सामग्री फिर खण्डित हो गई।

सन् १९५० ई० में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की सेवा पर नियुक्त होने के बाद मैंने बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पुस्तकालय में मिली पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री-संग्रह का जो प्रयास किया, उसमें सम्मेलन के ग्रन्थपाल श्रीदामोदर मिश्र से आवश्यक सहायता प्राप्त हुई। उसी समय सम्मेलन के त्रैमासिक मुखपत्र 'साहित्य' के नवीन संस्करण का प्रकाशनारम्भ हुआ, जिसके चतुर्थ अंक (जनवरी १९५१ ई०) के चौथे आवरण-पृष्ठ पर मैंने निम्नांकित सूचना[1] प्रकाशित कराई—

बिहार का साहित्यिक इतिहास

बिहार की साहित्यसेवा हिन्दी साहित्य के इतिहास में, बड़े महत्व की है। बिहार के लेखकों, कवियों, सम्पादकों और पत्रकारों ने हिन्दी की सराहनीय सेवा की है। किन्तु आजतक बिहारी साहित्यकारों की साहित्यसेवा का कोई विवरण, विस्तार से या संक्षेप में, कभी लिखा नहीं गया। फल यह हुआ है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में बिहार के साहित्यिकों का कार्यक्षेत्र भी बिहार ही रहा है, पर उसका भी वर्णन कहीं नहीं मिलता। इससे बिहार का साहित्यिक गौरव घोर अन्धकार और विस्मृति के गर्भ में छिपा हुआ है। उसे प्रकाश में लाकर हिन्दी-प्रेमियों के सामने रखने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता का अनुभव उसी समय हुआ था जिस साल बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म

---

१. यह सूचना भी उस समय कई सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी। —सं०

हुआ था। तभी से इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये उपयुक्त सामग्री का संग्रह किया जाने लगा। इस शुभ प्रयत्न में सर्वश्री गंगाशरण सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी, मथुरा प्रसाद दीक्षित, रामधारी प्रसाद, राघव प्रसाद सिंह, ललित कुमार सिंह 'नटवर' आदि प्रमुख साहित्यिकों के सहयोग से काफी सफलता मिली—इतनी सामग्री संकलित हो गई कि अब उसे ग्रन्थ का रूप देना अनिवार्य प्रतीत होने लगा। अतः यह निश्चय किया गया है कि प्राप्त सामग्री का सदुपयोग अविलम्ब किया जाय। किन्तु वह ग्रन्थ तभी सर्वांगपूर्ण होगा जब बिहार के सभी हिन्दीप्रेमी और साहित्यिक इस महान् कार्य में खुले दिल से सहयोग करेंगे। आशा और विश्वास है कि बिहार के साहित्यसेवी सज्जन, चाहे वे जहाँ-कहीं भी हों, इस नम्र निवेदन पर ध्यान देने की कृपा करेंगे। नये-पुराने लेखकों कवियों और पत्रकारों का प्रामाणिक परिचय (सचित्र) भेजकर वे अमूल्य सहायता कर सकते हैं। इस विषय में नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करना और सामग्री भेजनी चाहिये—

शिवपूजन सहाय, मंत्री, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, सम्मेलन भवन, पटना-३

मुझे अनुभव होने लगा कि सूचनाओं के प्रकाशन एवं वितरण से उतना लाभ नहीं हो रहा है, जितनी आशा की जाती है और पत्र-व्यवहार से भी अभीष्ट परिणाम नहीं प्रकट होता; पर साक्षात्कारपूर्वक व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने से मनोऽनुकूल कार्य सिद्ध होता है। परिषद् में काम करते समय यह सम्पर्क-स्थापन क्रमशः अधिक होने लगा। मेरे मन में यह धारणा बद्धमूल हो गई कि परिषद् के माध्यम से ही यह काम अच्छी तरह हो सकता है। अतः लगभग एक वर्ष काम कर चुकने पर मैंने परिषद् के संचालक-मण्डल में निम्नांकित आवेदनपत्र दिया—

सेवा में—

श्रीमान् माननीय सभापति, कण्ट्रोलबोर्ड
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

मान्यवर,

सादर सविनय निवेदन है कि मैंने पिछले तीस वर्षों से बिहार के साहित्यिक इतिहास की सामग्री संकलित की है, जो अभी अस्तव्यस्त रूप में पड़ी हुई है। किन्तु उसे सुव्यवस्थित रूप देकर प्रकाशित किये बिना बिहार का साहित्यिक गौरव अन्धकार में ही पड़ा रहेगा। मैं चाहता हूँ कि परिषद् यदि मुझे आदेश देने की कृपा करे तो मैं उसे अपनी देखरेख में क्रमबद्ध करके ग्रन्थ का रूप दे दूँ और समय आने पर परिषद् उसके प्रकाशन के सम्बन्ध में यथोचित विचार करे। इस समय मैं परिषद् के किसी काम में बाधा पहुँचाये बिना ही उसके सम्पादन का काम परिषद् के तत्त्वावधान में कर सकता हूँ और अभी उसके लिए परिषद् को कुछ अतिरिक्त व्यय भी नहीं करना पड़ेगा। अतः मेरी प्रार्थना है कि संगृहीत सामग्री को ग्रन्थाकार में प्रस्तुत करने का आदेश मुझे दिया जाय।

कृपाकांक्षी
ह० शिवपूजन सहाय

पटना, १६-७-५१

मैंने दिनांक २५-७-५१ की जिस बैठक में यह आवेदन-पत्र उपस्थित किया था, उसी में निम्नांकित प्रस्ताव (क्रम सं० ६) सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ—

'बिहार के साहित्यिक इतिहास' के सम्बन्ध में श्री शिवपूजन सहाय का (१६-७-५१) पत्र पढ़ा गया और सर्वसम्मति से निश्चित हुआ कि पत्र में लिखी बातें मंजूर की जायँ और प्रार्थी को आवश्यक सुविधायें भी दी जायँ। परिषद्-मंत्री को आवश्यकतानुसार उचित प्रबंध कर लेने की अनुमति दी जाती है।

मुझे भगवत्कृपा का आभास मिला। उत्साह दिन-दिन बढ़ने लगा। परिषद् के माध्यम से यह काम भी आगे बढ़ता गया। किन्तु परिषद् के अन्यान्य कामों से बहुत कम अवकाश पाने के कारण मैं अपनी क्षुद्र क्षमता इसी कार्य पर केन्द्रित न कर सका। तब भी अत्यधिक अतिरिक्त परिश्रम से मैं अचानक बहुत बीमार हो गया। मुझे पटना के यक्ष्मा-केन्द्र में महीनों शय्याग्रस्त रहना पड़ा। उस समय मेरा परिवार ऐसा व्यग्र रहा कि मेरी संगृहीत सामग्री की देखभाल न कर सका। मैं भी सहसा रोगाक्रान्त होने से अशक्तता के कारण सामग्री-संरक्षण की सुव्यवस्था न कर पाया। परिषद्-कार्यालय में भी जो सामग्री था, वह स्थानसंकोचवश यदा-कदा स्थानान्तरित होते रहने के कारण इतस्ततः अस्त-व्यस्त हो गई। फल यह हुआ कि बिहार के कई प्रमुख वयोवृद्ध साहित्यसेवियों से साक्षात्कार द्वारा पूछताछ करके मैंने जो उनकी जीवनी के विवरण लिखे थे, वे कहीं गुम हो गये। कुछ विद्वान् साहित्यकारों से लिखवाये हुए उनके आत्मपरिचय भी खो गये, केवल पण्डित रामदहिन मिश्र का हस्तलेख ही हस्तगत हुआ, जिसका किञ्चिदंश उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके 'किशोर' के पुण्यस्मृति-अंक में प्रकाशित हुआ था। बाबू शिवनन्दन सहाय के हस्तलेख का हाल पहले ही लिख चुका हूँ।

इस प्रकार, मेरे अज्ञान और दुर्भाग्य से जो हानि एवं ग्लानि के अवसर आये, उन्हें मैंने अपनी अग्निपरीक्षा समझकर राम-राम करते झेला। मुझे यही सोचकर धीरज हुआ कि केवल पुण्यात्मा पुरुष का आरब्ध कार्य ही आद्यन्त निर्विघ्न सम्पन्न होता है और मैं निश्चय ही वैसा नहीं हूँ। यहाँ विपत्तियों और दुर्घटनाओं के उल्लेख का प्रयोजन बस इतना ही है कि अच्छे कामों में होनेवाली विघ्न-बाधाओं का अनुमान करके भविष्य के सत्कार्य में संलग्न होने के लिए साहस-संचय किया जाय। कठिनाइयों से जूझने में जो शक्ति क्षीण होती है, वह संघर्ष-काल में ईश्वरीय सत्ता का ध्यान रखने पर फिर पुष्ट भी हो जाती है। ऐसा कुछ अनुभव इस काम में होता नजर आया है।

अपनी दीर्घकालीन अस्वस्थता के बाद जब सन् १६५४ ई० में, ईश्वरेच्छया पुनः मैंने परिषद्-संचालन का कार्यभार सँभाला, तब पूर्वोक्त स्वीकृत प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया। कुछ महीनों तक श्रीचन्द्रेश्वर 'नीरव' ने बची-खुची सामग्री को सहेजा और नया सामान भी जुटाया। तब एक ऐसे अनुभवी कार्यकर्त्ता की आवश्यकता प्रतीत हुई, जो शोधकार्य में भी निपुण हो। मैंने परिषद् के प्रकाशकाधिकारी श्रीअनूपलाल मण्डल से सलाह की, तो श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ, विद्यालंकार पर ध्यान गया। उनका

स्मरण होने पर संचालक-मण्डल के आदेश को कार्यान्वित करने का प्रबन्ध किया गया। फलस्वरूप, सन् १९५५ ई० में ४ जुलाई से अम्बष्ठजी ने कार्यभार ग्रहण किया।

अम्बष्ठजी बिहार के पुराने साहित्यसेवी और मुँगेर जिले के निवासी हैं। वे गत तीस-पैंतीस वर्षों से बड़ी लगन के साथ हिन्दी-साहित्य की उल्लेखनीय सेवा करते आ रहे हैं। भूगोल, इतिहास, जीवन-चरित आदि के अतिरिक्त वे बिहार-अब्दकोश और भारतीय-अब्दकोश के समान प्रामाणिक आकर-ग्रन्थों का भी निर्माण कर चुके हैं। विशेषतः बिहार के विषय में उनका बहुमुखी शोध और ज्ञान बड़े महत्त्व का माना जाता है। अनुसन्धानात्मक साहित्यिक कार्य का सुव्यवस्थित रीति से सम्पादन करने में वे बड़े कुशल भी हैं। अतः कार्यभार-ग्रहण करते ही उन्होंने समस्त संगृहीत सामग्री को क्रमबद्ध और व्यवस्थित करके बड़े मनोयोग से कार्यारम्भ किया। उनकी कार्यदक्षता से यह काम नियमित रूप से आगे बढ़ने लगा। पहले की संकलित सामग्री अधिकतर उन्नीसवीं और बीसवीं शती की थी, जिसका वर्गीकरण और विश्लेषण करके उन्होंने तत्सम्बन्धी अभाव-पूर्त्ति के निमित्त नवीन सामग्री के संग्रहार्थ तो प्रयत्न किया ही, सुदूर अतीतकाल की सामग्री का अन्वेषण करने में भी बड़ी तत्परता दिखाई। फलतः सातवीं सदी से अठारहवीं सदी तक के अन्धकार-युग की सामग्री का अनुसन्धान करने में निरन्तर संलग्न रहे।

यहाँ इस बात का उल्लेख अत्यावश्यक है कि बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् यदि स्थापित न हुई होती, तो यह इतिहास प्रस्तुत रूप में कदापि प्रकाशित न हो पाता। परिषद् के अनुसन्धान-पुस्तकालय और प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थशोध-विभाग से अतीत युगों की सामग्री का शोध करने में विशेष सुविधा हुई। अम्बष्ठजी ने आधुनिक गवेषणापूर्ण ग्रन्थों और पुरानी दुर्लभ पत्र-पत्रिकाओं तथा प्राचीन हस्तलिखित पोथियों से सामग्री-संकलन करके प्रस्तुत प्रथम खण्ड का ढाँचा तैयार कर दिया। इस कार्य में उन्हें अनुसन्धान-पुस्तकालय के ग्रन्थपाल श्रीपरमानन्द पाण्डेय और प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थशोध-विभाग के प्रमुख कार्याधिकारी श्रीरामनारायण शास्त्री का यथोचित सहयोग प्राप्त हुआ। शास्त्रीजी ने अपने विभाग के पुराने हस्तलेखों से बिहार के दूरातीतकालीन साहित्यकारों का विवरणात्मक परिचय लिख दिया। उन्होंने चैतन्य पुस्तकालय (पटना सिटी), श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया), श्रीशिवनन्दन-संग्रहालय (बालहिन्दी-पुस्तकालय, आरा) आदि से भी सामग्री-संग्रह करने में बड़ा परिश्रम किया। पोथियों की खोज के लिए बिहार-राज्य में भ्रमण करते समय भी उन्होंने इस इतिहास के निमित्त सामग्री-संकलन का ध्यान रखा। काशी-निवासी पण्डित उदयशंकर शास्त्री ने भी अपने निजी संग्रहालय के हस्तलेखों से बिहार के कुछ पुराने कवियों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ तथा विवरण भेजने की कृपा की।

सामग्री-संग्रह के लिए जो पत्र और विवरण-पत्रक छपवाकर हिन्दीप्रेमियों के पास भेजे गये, उसका रूप इस प्रकार का था[1] —

---

१. अधिकांश सज्जनों ने पत्रोत्तर देने और विवरण-पत्रक भरकर भेजने की कृपा नहीं की, उनकी सेवा में अनुस्मारक-पत्र भी भेजे गये, पर तब भी यथेष्ट लाभ न हुआ।—सं०

'बिहार का साहित्यिक इतिहास'

महोदय,

आपको विदित होगा कि बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) की ओर से 'बिहार का साहित्यिक इतिहास' तैयार किया जा रहा है। इसमें आठवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी तक के बिहार के हिन्दी साहित्य-सेवियों के परिचय, उनकी उत्कृष्ट रचनाओं के उदाहरण तथा उक्त कालावधि के हिन्दी-साहित्य की प्रगति के विवरण रहेंगे। अबतक हमें पुराने और नये सैकड़ों साहित्य-सेवियों के परिचय, उनकी रचनाएँ और चित्र प्राप्त हो चुके हैं; किन्तु अभी और भी बहुतों के परिचय मिलना बाकी है। इस कार्य की सफलता सब लोगों के सहयोग और सहायता पर निर्भर करती है। इसलिए यदि सब लोग अपने-अपने क्षेत्रों के पुराने और विस्मृत साहित्य-सेवियों के परिचय दे सकें या कम-से-कम यही बता सकें कि किन साहित्यकारों के परिचय किनसे मिल सकेंगे तो बड़ी कृपा होगी। नये साहित्यकारों के नाम-पते मिलने से हम स्वयं उनके पास छपे परिचय फार्म भेजेंगे। जिन्हें आवश्यकता हो, मँगा लेने की कृपा करें।

साहित्यकारों के परिचय सुचारु रूप से लिखे जा सकें, इसके लिए आवश्यक है कि हम उनकी सभी रचनाओं को पूरी तरह देखें। अतएव हमें उन सबकी प्रतियों की भी आवश्यकता होगी। अतः उन्हें प्राप्त करने में कृपया हमारी सहायता करें।

जिनके पास हिन्दी की बहुत पुरानी मुद्रित या हस्तलिखित पोथियाँ हों, वे उनके नाम, विषय आदि की सूची बनाकर भेजने की कृपा करें।

इस इतिहास में बिहार की पुरानी और नयी पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्यिक एवं प्रकाशन-संस्थाओं के भी परिचय रहेंगे। अतएव इनके सम्बन्ध, में भी जो विवरण दे सकें, देने की कृपा करें। पुरानी पत्र-पत्रिकाओं की प्रतियाँ यदि आप दे सकते हों तो हमें लिखने का कष्ट करें।

हमें आशा और विश्वास है कि आप हमारे इस आयोजन को सफल बनाने में यथाशीघ्र सब प्रकार की सहायता देकर अनुगृहीत करेंगे।

उत्तराभिलाषी

संचालक, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

कदमकुँआ, पटना-३

'बिहार का साहित्यिक इतिहास'

जन्म-संवत् | रचना-काल

१. नाम और उपनाम (घरेलू और साहित्यिक नाम अलग-अलग हों तो दोनों का उल्लेख)—

२. उपाधियाँ (कब और किन संस्थाओं से प्राप्त)—

३. वंश-परिचय (यदि विशेष उल्लेखनीय हो)—

४. पिता का नाम (महिलाओं के लिए पति का नाम आदि देना भी आवश्यक)—

५. जन्म-काल (विक्रम-संवत् या ईसवी सन्, तिथि-बार-सहित। मृत व्यक्तियों की मृत्यु-तिथि भी) —

६. जन्म-स्थान का पूरा पता—

७. शिक्षा और जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्य (काल-क्रम से)—

८. साहित्य-सेवा का आरंभिक वर्ष—

९. प्रकाशित और अप्रकाशित पुस्तकों का पूरा ब्यौरा (पुस्तक के नाम, विषय, प्रकाशक, प्रकाशन-संवत्, पृष्ठ-संख्या, मूल्य आदि)—

१०. स्फुट लेखों और कविताओं के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातें—

११. पत्र-सम्पादन-कार्य का पूरा विवरण (कब, कहाँ के, और किस दैनिक, साप्ताहिक या मासिक आदि पत्र में सहकारी या प्रधान सम्पादक)—

१२. हिन्दी-प्रचार-विषयक और प्रकाशन-सम्बन्धी कार्य—

१३. अन्य विशेष उल्लेखनीय बातें—

१४. गद्य-पद्य-रचनाओं के उत्कृष्ट उदाहरण (संलग्न पत्र पर)—

१५. स्थायी पता (थाना और रेलवे स्टेशन सहित)—

१६. वर्त्तमान पता—

१७. स्पष्ट हस्ताक्षर (तिथि-सहित)—

आवश्यक सूचना—ऊपर दिये हुए शीर्षकों के सामने विवरण भरने में यदि स्थान-संकोच हो तो शीर्षक का नम्बर देकर अलग कागज पर लिखना चाहिए। रचनाओं के उदाहरण चुनने में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक उदाहरण भाव-भाषा की दृष्टि से तो सुन्दर हो ही, वह शिक्षाप्रद, मनोरंजक और ललित भी हो। सब तरह के विवरण भेजने और आवश्यक पत्र-व्यवहार का पता—

संचालक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलन-भवन, कदमकुआँ, पटना-३

सन् १९५६ ई० में १० अक्टूबर से श्रीअजितनारायण सिंह 'तोमर' परिषद्-कार्यालय की व्यवस्था में सहायता करने के लिए शिक्षा-विभाग द्वारा प्रेषित होकर आये। उनके आने पर मैं कुछ अवकाश पाने लगा। अब संकलित सामग्री के संशोधन-सम्पादन में थोड़ा-बहुत समय देने की सुविधा हो गई।

मैंने सामग्री संग्रहार्थ बिहार-भ्रमण के लिए सरकार से आदेश माँगा और वह मिला भी, पर अनिवार्य कारणों से अवसर न मिल सका। केवल आरा नगर के बाल-हिन्दी-पुस्तकालय में 'शिवनन्दन-स्मारक-संग्रह' को देखने के लिए मैं जा सका। वहाँ से मैं कुछ सामग्री संकलित करके ले आया। फिर, श्रीरामनारायण शास्त्री को वहाँ कुछ दिन रह-कर संग्रह-कार्य करने के लिए भेजा। उन्होंने भी पुरानी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से आवश्यक सामग्री चुनने में बड़ा परिश्रम किया।

मेरे बड़े जामाता श्रीवीरेन्द्रनारायण इंगलैण्ड गये थे। मैंने उन्हें लिखा कि लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम और इण्डिया-हाउस में बिहार के साहित्यकारों से सम्बन्ध रखनेवाली जो सामग्री मिल सके, उसे लिख भेजें। उस समय वे परिषद् के लिए सदलमिश्र-ग्रन्थावली की अविकल प्रतिलिपि तैयार कर रहे थे। उसी के साथ उन्होंने इस इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण सामग्री एवं सूचनाएँ भेज दीं।

परिषद् के अनुसन्धान-पुस्तकालय में संगृहीत अलभ्य पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री संग्रह कराने के लिए कुछ दिन श्रीकृष्णनन्दनप्रसाद 'अभिलाषी', एम्० ए० की सेवा का भी उपयोग किया गया। उपर्युक्त सभी संगृहीत सामग्री को श्रीअम्बष्ठजी ने यथास्थान नियोजित कर दिया।

सन् १९५८ ई० में कुछ महीनों के लिए अपने दाहिने पैर के तलवे में घाव हो जाने के कारण मैं शय्याग्रस्त रहा। उस समय बड़ा उद्वेग हुआ कि बार-बार इस काम में विघ्न-बाधा पड़ने से अब यह इतिहास अधूरा ही रह जायगा। श्रीअनूपलालजी और श्रीतोमरजी चिन्तित तथा हताश होकर कहने लगे कि अब निकट भविष्य में यह इतिहास प्रकाशित न हो सकेगा। एक दिन परिषद्-सदस्य श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित और श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी ने मुझे बहुत फटकारा-ललकारा कि शोध ही करते-कराते आपके (मेरे) जीवन का अन्त हो जायगा—कभी यह इतिहास सर्वांगपूर्ण होगा ही नहीं। श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' और पण्डित जगन्नाथप्रसाद मिश्र से भी इस विषय की चर्चा हुई, तो उनलोगों की भी यही राय और सलाह मिली कि जितनी सामग्री अबतक उपलब्ध हो चुकी है, उतनी ही प्रकाशित कर दी जाय; क्योंकि जबतक शोध होता रहेगा, तबतक नई-नई सामग्री मिलती रहेगी और इस प्रकार न शोध का कभी अन्त होगा—न पुस्तक पूरी तैयार होगी। सामान्य परिषद्-सदस्यों की ऐसी तीव्र प्रेरणा से मैं भी यथोपलब्ध सामग्री को प्रकाशित देखने के लिए अधीर हो उठा। मैंने भी सोचा कि इस शोध-समीक्षा-प्रधान युग में कोई साहित्यिक इतिहास सर्वथा निर्दोष और सर्वांगपूर्ण नहीं हो सकता; क्योंकि साहित्यिक अनुसन्धान की प्रगति दिन-दिन प्रखर होती जा रही है और नवीन शोधों के फलस्वरूप पुरानी स्थापनाएँ एवं परम्पराएँ परिवर्त्तित होती जाती हैं, अतः जो कुछ प्राप्त हो चुका है, वह हिन्दी-संसार

के सामने जब उपस्थित कर दिया जायगा, तभी विज्ञ विद्वानों द्वारा त्रुटियों का मार्जन हो सकेगा। यही सोचकर मैंने निश्चय कर लिया कि शोध का क्रम तो चलता रहे, परन्तु प्रस्तुत सामग्री के प्रकाशन में अनावश्यक विलम्ब न किया जाय। जान पड़ा, जैसे इस निश्चय की प्रेरणा भगवत्कृपा के संकेत से मिली है।

गतवर्ष परिषद् के संचालक-मण्डल ने हिन्दी में भारतीय अब्दकोश प्रकाशित करने का निश्चय किया। ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति की आवश्यकता हुई। स्वभावतः श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ की ओर ध्यान गया; क्योंकि वे स्वयं दो अब्दकोश प्रकाशित कर चुके थे। अतः; अब्दकोश का काम उन्हें सौंपकर इस इतिहास की सारी सामग्री मैंने परिषद् के एक अनुसन्धायक श्रीबजरंग वर्मा के हवाले कर दी। यह काम सोमवार, ११ मई (१९५९ ई०) को हुआ था।

श्रीबजरंग वर्मा, एम्० ए० सारन जिले के निवासी एक मेधावी नवयुवक हैं। परिषद् में वे बड़ी योग्यता के साथ साहित्यिक गवेषणा के कार्य गत चार वर्षों से करते रहे हैं। उनकी प्रतिभा, कार्यकुशलता और कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय मिल चुका था। उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति एवं कलात्मक सुरुचि से मेरा पूर्व-परिचय भी था, जब राजेन्द्र कालिज में वे मेरे समय के एक प्रत्युत्पन्नमति विद्यार्थी थे। उक्त तिथि से ही वे इस इतिहास के प्रस्तुत प्रथम खण्ड की प्रेस-कॉपी तैयार करने में तन-मन से संलग्न हो गये। यह काम उनकी प्रकृति, मनोवृत्ति एवं अभिरुचि के अनुकूल प्रतीत हुआ। उनकी लगन और सूझ-बूझ देखकर मेरे हृदय में यह भाव जगा कि जब से वे परिषद् में अनुसन्धानात्मक कार्य करने आये, तभी से यदि मैं उनकी कर्तृत्व-शक्ति का उपयोग इस काम में करता, तो अबतक कम-से-कम यह पहला खण्ड किसी-न-किसी रूप में अवश्य निकल गया होता। फिर भी, उन्होंने अपनी कार्यक्षमता का प्रशंसनीय परिचय दिया और एक मास में ही यह पुस्तक यंत्रस्थ हो गई। इसके प्रूफ-संशोधन में भी वे और श्रीश्रीरंजन सूरिदेव, साहित्याचार्य बड़े मनोयोग से आद्यन्त श्रमशील बने रहे।

पूर्वोक्त तिथि को मैंने इस प्रथम खण्ड की जो पाण्डुलिपि श्रीबजरंगजी को सौंपी थी, उसको पहले उन्होंने मुझे पढ़ सुनाया। मैंने आवश्यकतानुसार जहाँ-तहाँ संशोधन-परिवर्त्तन-परिवर्द्धन आदि कराये। तब फिर उन्होंने नये सिरे से लिख डाला। तदुपरान्त उनकी हस्तलिखित प्रति मैंने टंकित करा दी। टंकन और मुद्रण की व्यवस्था में जो समय व्यतीत हुआ, उस अवधि में पटना के शोधोपयोगी संग्रहालयों में जाकर उन्होंने बहुत-सी नई सामग्री का अन्वेषण किया। यहाँ तक कि उधर पुस्तक छपती रही और इधर उनकी खोज भी जारी रही। उन्होंने कई नये साहित्यस्रष्टाओं को ढूँढ़ निकाला। अँगरेजी की पुरानी और दुर्लभ शोध-पत्रिकाओं की छानबोन में उन्होंने जो अथक परिश्रम किया, वह इस पुस्तक की पाद-टिप्पणियों से स्पष्ट प्रकट होगा। इस पुस्तक को इस रूप में तैयार करने का श्रेय मैं बड़ी हार्दिकता के साथ उन्हें देना उचित समझता हूँ; क्योंकि उनके समान सुयोग्य अनुसन्धान-सहायक मुझे न मिला होता, तो यह पुस्तक हिन्दी-संसार के समक्ष प्रकट न हो सकती। भगवत्कृपा से ही श्रीअम्बष्ठजी और श्रीबजरंगजी के समान सहयोगी मुझे

प्राप्त हो सके, नहीं तो परिषद्-संचालन-सम्बन्धी अपनी कार्यव्यस्तता और शारीरिक स्थिति में यह काम मैं कदापि पूरा न कर पाता।

यद्यपि मेरी दृष्टि में यह इतिहास हिन्दी-संसार को 'शिवसिंह सरोज' के समान भी जँचने योग्य नहीं है, तथापि आधुनिक शोध-युग के अनुसन्धान-परायण सज्जनों के लिए यह आधार-शिला मात्र तो होगा ही। इसी आशा से उपलब्ध सामग्री प्रकाशित की जा रही है। फिर भी, परिषद्-कार्यालय में शोध का काम बराबर जारी रहेगा और जिन बारह शतियों की सामग्री इसमें छपी है, उसके अतिरिक्त और भी जो नई सामग्री मिलती रहेगी, अगले खण्डों के परिशिष्टों में प्रकाशित होती चलेगी।

उन्नीसवीं शती की संगृहीत सामग्री में से पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का विभाजन श्रीअम्बष्ठजी ही कर चुके हैं। अब इस खण्ड के प्रकाशित होने पर श्रीबजरंगजी उसी विभाजन के अनुसार आगे काम बढ़ावेंगे और जो कुछ कमी रह गई होगी, उसकी पूर्त्ति का भी प्रयत्न करेंगे। इस तरह उन्नीसवीं शती का इतिहास सम्भवत: अगले साल तक छप जायगा। उसके बाद ही बीसवीं शती के इतिहास में हाथ लगेगा। किन्तु सामग्री-संकलन तो सभी शतियों के लिए निरन्तर होता ही रहेगा। मुझे आशा और विश्वास है कि इस गुरुतर कार्य में सभी हिन्दी-हितैषी मेरी सहायता करते रहेंगे।

वास्तव में साहित्यिक इतिहास लिखने का अधिकारी मैं नहीं हूँ। किन्तु उपयुक्त पात्र न होने पर भी मैंने यह काम इसलिए ठाना कि मेरी अयोग्यता एवं अनधिकार चेष्टा से इतने बड़े काम को बिगड़ता देखकर उदारमना सहृदय अधिकारी विद्वान् इधर आकृष्ट होंगे और उनके ध्यान देने से मेरी त्रुटियों का तो निवारण होगा ही, प्रामाणिक एवं सर्वांगसुन्दर इतिहास भी तैयार हो जायगा। जबतक किसी वास्तविक अधिकारी विद्वान् का ध्यान इधर नहीं जाता, तबतक मैं ही साहित्य-साधकों और समीक्षकों के सत्परामर्श तथा मार्ग-प्रदर्शन की कामना से यह क्षुद्र प्रयास करने का दुस्साहस कर रहा हूँ। ईश्वरेच्छया भूलों के अन्दर से भी भलाई निकल आती है।

इस इतिहास से पहले ही मुजफ्फरपुर के सुहृद्-संघ से प्रोफेसर कामेश्वर शर्माजी की एक ऐसी पुस्तक (हिन्दी-साहित्य को बिहार की देन) निकल चुकी है। आवश्यक साधनों और सुविधाओं की कमी रहने पर भी श्रीशर्माजी ने बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी है। उसका दूसरा खण्ड भी उन्होंने तैयार कर दिया है। उसके भी प्रकाशित हो जाने पर यह बात विशेष रूप से सिद्ध हो जायगी कि शर्माजी के समान विद्वान् ही ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को विधिवत् सम्पन्न करने के अधिकारी हैं।

दो पुस्तकें और भी निकली हैं, जो दो जिलों से सम्बन्ध रखती हैं—'गया जिले के लेखक और कवि' (श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त) तथा 'चम्पारन की साहित्य-साधना' (श्रीरमेशचन्द्र झा)। यदि बिहार के सभी जिलों से ऐसी पुस्तकें निकली होतीं, तो मेरा काम विशेष सुगम हो जाता। तब भी पूर्णिया जिले के श्रीरूपलालजी, साहित्यरत्न ने मेरे अनुरोध से वहाँ की सारी संगृहीत सामग्री मेरे पास भेज दी और उस पाण्डुलिपि से आवश्यक सहायता लेने की अनुमति भी दे दी। पता चला है कि आरा-जैन-कॉलेज के

हिन्दी-विभाग के प्राध्यापक श्रीरामेश्वरनाथ तिवारी भी शाहाबाद जिले की साहित्य-सेवा का इतिहास तैयार कर रहे हैं, पर वहाँ का संग्रह में न देख सका। हाँ, आरा के साप्ताहिक 'शाहाबाद-समाचार' के सम्पादक श्रीभुवनेश्वर प्रसाद 'भानु' से कुछ उपयोगी सामग्री प्राप्त हुई।

जहाँ-कहीं से अथवा जिस-किसी से किसी प्रकार की सूचना, सामग्री और सहायता प्राप्त हुई है, सबका उल्लेख यथास्थान पाद-टिप्पणियों में कर दिया गया है तथा आगामी खण्डों में भी ऐसा ही किया जायगा। साहित्यिक इतिहास तो हिन्दीप्रेमियों की सहायता से ही तैयार हो सकता है; क्योंकि यह कोई उपन्यास, कहानी या नाटक नहीं है कि स्वेच्छानुसार लिख डाला जाय। अभी तो यह पहले-पहल बन रहा है और इसका पूर्ण विकसित रूप तो कई साल बाद ही प्रकट हो सकेगा। इस तरह बिहार की हिन्दी-सेवा का जो विशाल स्मारक-मन्दिर भविष्य में अधिकारी शब्द-शिल्पियों द्वारा बनेगा, उसकी नींव के रोड़े का काम भी यह कर सका, तो मैं समझूँगा कि भगवत्कृपा से मेरा तुच्छातितुच्छ परिश्रम भी सफल हो गया।

इस इतिहास का नाम पहले 'बिहार का साहित्यिक इतिहास' प्रसिद्ध था। किन्तु बिहार में संस्कृत, अँगरेजी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं के साहित्य की सेवा करनेवाले साहित्य-समाराधक भी बहुत-से हो चुके हैं। यदि उन सबकी जीवनियों और रचनाओं का संग्रह प्रकाशित हो, तो उसका वैसा नामकरण किया जा सकता है। यदि प्रत्येक भाषा के लिए पृथक्-पृथक् प्रयत्न हो, तो भी आशा है कि ऐसी कई पुस्तकें बन जायँगी। बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने हिन्दी में 'उर्दू-शायरी और बिहार' पुस्तक प्रकाशित करके इस दिशा में मार्ग-निर्देश भी किया है। संभव है कि शेष भाषाओं के साहित्य का इतिहास भी भावी प्रगतिशील युग में प्रकट हो जाय। परन्तु यह तो केवल हिन्दी-साहित्य से सम्बद्ध है, इसलिए मैंने इसका प्रचलित नाम बदलकर 'हिन्दी-साहित्य और बिहार' रख दिया और यही उपयुक्त एवं सार्थक भी है।

मेरा अनुभव है कि साहित्यिक इतिहास के लिए शोध और संग्रह करने के उद्देश्य से समस्त बिहार-राज्य में भ्रमण किये विना वह सम्पूर्णता को नहीं प्राप्त हो सकता। मेरी इच्छा थी और अब भी है कि इस काम के लिए बिहार-भर के प्रमुख एवं विशिष्ट स्थानों की यात्रा करके इस इतिहास को यथासंभव पूर्णता प्रदान करूँ, पर ऐसा सुयोग कभी न मिल सका और आगे भी ऐसी सुविधा मिलने की कोई आशा नहीं है। अतः, समय-समय पर सूचनाएँ प्रकाशित करके और पत्र-व्यवहार द्वारा जो कुछ प्राप्त किया जा सका, उसी पर सन्तोष करना पड़ा तथा आगे भी इन्ही साधनों का आश्रय लेना पड़ेगा।

मेरी धारणा है कि बिहार-सरकार की ओर से जब समग्र बिहार-राज्य का साहित्यिक सर्वेक्षण कराया जायगा, तभी बिहार का अभूतपूर्व इतिहास तैयार हो सकेगा। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से योजनाबद्ध रूप में यह काम कराया जा सकता है। राज्य का संरक्षण प्राप्त हुये विना अब यह कार्य साध्य नहीं है। कोई साहित्यिक संस्था भी सरकारी सहायता के सहारे से ही यह काम कर सकती है। नहीं तो फिर साहित्यिक परिव्राजकों से ही यह काम पूरा होगा।

मेरा सुझाव है कि हाइ स्कूलों और कॉलेजों के सयाने छात्र तथा साहित्यानुरागी अध्यापक अपने निवास-स्थान और उसके आसपास के साहित्यकारों एवं कलाकारों की खोज में अपने अवकाश का सदुपयोग किया करें और साथ ही अपनी खोज का परिणाम स्कूल-कॉलेज की पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते रहें, तो बहुत लाभ होगा। स्कूल, कॉलेज की साहित्य-सभाएं और प्रत्येक जिले के साहित्य-सम्मेलन भी इस काम में सहायता पहुँचा सकते हैं। यह हर्ष का विषय है कि इधर बिहार में विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर-वर्ग के विद्यार्थी अपनी परीक्षा के पाठ्यक्रम के निमित्त, प्राचीन एवं अज्ञात साहित्यकारों के संबंध में शोध करने की ओर प्रवृत्त हुए हैं। ऐसे एक-दो विद्यार्थियों से इस पुस्तक में भी सहायता ली गई है, जिसका उल्लेख यथास्थान द्रष्टव्य है।

इस पुस्तक में लगभग ढाई सौ साहित्यकारों का परिचय और नामोल्लेख है। मेरा अनुमान है कि इतने ही अथवा इतने से भी अधिक ही और भी साहित्यकार होंगे, जिनका पता अबतक की खोज में नहीं मिला है। किन्तु खोज का काम अभी जारी है और आगे भी बराबर होता रहेगा तथा विगत शताब्दियों की जो नई सामग्री मिलती जायगी, वह आगामी खण्डों के परिशिष्टों में प्रकाशित होती रहेगी। खोज के इस काम में हिन्दीप्रेमियों और उदाराशय विद्वानों की सहायता की सदा अपेक्षा रहेगी। इस खण्ड के परिशिष्टों में कितने ही साहित्यकार ऐसे हैं, जिनके सम्बन्ध में संभव है कि भावी शोध से कुछ विशेष विवरण प्राप्त हो सकें। यों तो मूल पुस्तक में जो परिचय और उदाहरण प्रकाशित हैं, उनमें भी संभव है कि भविष्य के शोध से संशोधन-परिवर्त्तन करना पड़े। संभावनाएं विविध प्रकार की हो सकती हैं।

अब रही प्रस्तावना की बात। उसकी रूपरेखा पहले अम्बष्ठजी ने खड़ी की थी। मैंने जब उसका निरीक्षण-परीक्षण किया, तब निजी दृष्टिकोण से नई प्रस्तावना लिखने का विचार किया। प्रस्तावना जब नये सिरे से लिखी जाने लगी, तब संस्कृत-सम्बन्धी प्रमाणों के अन्वेषण एवं संग्रह में विद्यापति-विभाग के पण्डित शशिनाथ झा, व्याकरण-साहित्याचार्य और परिषद् के सहकारी प्रकाशनाधिकारी पण्डित हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', साहित्याचार्य से अमूल्य सहायता प्राप्त हुई। त्रिपाठीजी ने बौद्ध सिद्धों के सम्बन्ध में भी बड़े महत्त्व के परामर्श दिये। यदि इन दोनों विद्वानों का सद्भावपूर्ण सहयोग सुलभ न होता, तो मेरी धारणा के अनुकूल प्रस्तावना तैयार न हो पाती। इसी तरह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी का क्रम-विकास प्रदर्शित करने के लिए समानार्थक अथवा समान-रूप शब्दों की तालिका तैयार करने में परिषद् के लोकभाषा-विभाग के श्रीश्रुतिदेव शास्त्री, व्याकरण-पालि-साहित्याचार्य तथा प्राचीन हस्तलिखित-ग्रन्थशोध-विभाग के व्याकरण-साहित्याचार्य श्रीविधाता मिश्र, एम्० ए० (चतुष्टय) ने भी परिश्रम किया, उसके अभाव में भी प्रस्तावना अधूरी रह जाती। फिर, श्रीबजरंग वर्मा ने भी प्रस्तुत खण्ड में प्रकाशित उदाहरणों से चुनाव करके जो शब्द सूची तैयार की, उससे भी इस प्रस्तावना की अंगपूर्त्ति ही हुई है। श्रीवर्मा तो मेरे दाहिने हाथ ही रहे, उनकी आद्यन्त सहायता अनिर्वचनीय है।

परम सौभाग्यवश पटना-विश्वविद्यालय के हिन्दी-प्राध्यापक और हिन्दी-जगत् के समर्थ साहित्य-समीक्षक आचार्य नलिनविलोचन शर्मा ने मेरे सविनय अनुरोध को स्वीकृत करके प्रस्तावना को देखकर और यथोचित परामर्श देकर मुझे कृतज्ञ करने की कृपा की है।

अब अन्त में उपर्युक्त सभी सहायक सज्जनों और सहानुभूतिशील बन्धुओं तथा सहायिका संस्थाओं के प्रति मैं सर्वान्तःकरण से अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। विश्वास है कि भविष्य में भी उन सभी के सौहार्द एवं साहाय्य का मैं भागी बना रहूँगा। सर्वतोऽधिकभावेन मैं बिहार-सरकार के प्रति आन्तरिक आभार व्यक्त करना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझता हूँ, जिसकी छत्रच्छाया में यह साहित्यिक महायज्ञ सविधि सम्पन्न हुआ है और आगे भी होगा।

जब उदाहरणों के प्रथम चरण की अनुक्रमणी बनने लगी, तब यह भ्रम सूझ पड़ा कि अठारहवीं शती के 'प्रतापसिंह' (पृ० १४०) और 'मोदनारायण' (पृ० १५०) तथा उसी शती के चतुर्भुज मिश्र (पृ० ११८) और पन्द्रहवीं शती के चतुर्भुज (पृ० ४८) क्रमशः एक ही कवि हैं। वस्तुतः, चतुर्भुज नाम के कवि पन्द्रहवीं शती में ही हुए हैं। इसके अतिरिक्त पृ० १३८-३९ के कवि 'निधि उपाध्याय' की रचना के उदाहरण नं० १ की कुछ पंक्तियाँ पृ० १६९-७० के कवि श्रीपति के नाम पर भी छप गई हैं। वास्तव में श्रीपति की रचना का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार, पृ० ११०-११ के कवि केशव की रचना का उदाहरण पृ० १५०-५१ के कवि 'रघुनाथदास' के नाम पर भी (उदाहरण नं० २) भ्रमवश छप गया है। अब इन भ्रमों का संशोधन तो अगले संस्करण में ही संभव है। मुझे इन भ्रमों के लिए स्वयं बड़ा खेद है। आशा है कि पाठक इन्हें सुधार लेने की कृपा करेंगे।

तुलसी-जयन्ती, शकाब्द १८८१, शिवपूजनसहाय

विक्रमाब्द २०१६

प्रस्तावना

प्रस्तुत इतिहास का भौगोलिक आधार

रामराज्य-काल या रामायण-काल में आज का बिहार-प्रान्त कई भागों में विभक्त था। करूष[१], मगध[२] और अंग नामक खण्ड गंगा के दक्षिण में अवस्थित थे। इनका विस्तार चुनार (उत्तर-प्रदेश) से गिद्धौर (बिहार) तक था। इन तीनों का संयुक्त नाम 'कीकट'[३] था। इसी तरह गंगा के उत्तर में मलद, वैशाली, मिथिला और पुण्ड्र[४] नामक खण्ड थे। ये खण्ड महाभारत काल में भी विद्यमान थे। इनमें से मगध, अंग, मिथिला, वैशाली आदि खण्डों का अस्तित्व बौद्धकाल में भी था। इनमें अंग तो मगध के अन्तर्गत था और मिथिला वैशाली गणतंत्र के अधीन। मौर्य-काल में ये मगध-साम्राज्य के अन्तर्गत थे। गुप्तवंश और पालवंश के राज्य काल में भी मगध-साम्राज्य की ही चर्चा मिलती है। इस समय तक स्वतंत्र प्रान्त के रूप में 'बिहार' का नाम नहीं मिलता। इस काल तक 'विहार' शब्द का प्रयोग केवल 'बौद्धमठ' के लिए ही होता था।

पालवंशी राजाओं के शासन-काल के बाद जब मुसलमानी आक्रमण हुआ, तब उदन्तपुरी[५] के विहार (बौद्धमठ) को नष्ट-भ्रष्ट करके मुसलमानों ने उसके ध्वंसावशेष पर अपनी राजधानी स्थापित की और 'विहार' के साथ मुसलमानी तीर्थसूचक 'शरीफ' शब्द जोड़कर राजधानी का नाम 'विहार-शरीफ' और शासन की सुविधा के लिए राजधानी के चारों ओर के पड़ोसी प्रदेशों का नाम 'बिहार' रखा।

---

१. श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ यस्यैतद्दारुणं वनम्। एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम ॥
मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ। पुरा वृत्रवधे राम मलेन समभिप्लुतम् ॥
—श्रीवाल्मीकिरामायण सटीक (श्रीवासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, चतुर्थ सं०) १९३० ई०, बालकाण्ड, सर्ग २४), श्लोक १७-१८, पृ० ५२।

२. सुमागधी नदी रम्या मागधान्विश्रुता यया। पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते ॥
सैषा हि मागधी राम वसोस्तस्य महात्मनः। पूर्वाभिचरिता राम सुक्षेत्रा सस्यमालिनी ॥
—वही, (बा० का०, सर्ग ३२), श्लोक ९-१०, पृ० ६३।

३. चरणाद्रिं समारभ्य गृद्ध्रकूटान्तकं शिवे। तावत्कीकटदेशः स्यात्तदन्तर्मगधो भवेत् ॥
—शब्दकल्पद्रुम (शक्तिसंगमतंत्र, स्यार-राजा राधाकांतदेव बहादुर, १८०८ शकाब्द, प्रथम काण्ड), पृ० १३०।

४. मागधांश्च महाग्रामान्पुण्ड्रांस्त्वङ्गांस्तथैव च। भूमिं च कोशकाराणां भूमिं च रजताकराम् ॥
—श्रीवाल्मीकिरामायण सटीक (वही, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ४०), श्लोक २३, पृ० ५३९।

५. देखिए—पुस्तकभंडार रजतजयन्ती-स्मारक-ग्रंथ में प्रकाशित श्रीसूर्यनारायण व्यास का 'उदन्तपुरी' शीर्षक लेख, पृ० १५३—५५।

महाकवि विद्यापति-लिखित 'कीर्त्तिलता'[१] के तृतीय पल्लव में प्रायः सर्वप्रथम बिहार शब्द का उल्लेख स्वतंत्र प्रान्त के रूप में हुआ है—

"...... गएनराए तो वधिअ, तौन सेर बिहार चापिअ, चलइ तें चामर परइ, धरिअ छत्त तिरहुति उगाहिअ ।"[२]

(उसने गणेश्वर राय का वध किया, उस शेर ने बिहार पर कब्जा कर लिया, उसके चलने पर चँवर डोलता है, छत्र धारण करके तिरहुत से कर वसूल करता है ।)

शेरशाह के समय में शासन की सुविधा के लिए बिहार के कुछ विभाग किये गये थे, जिन्हें अकबर के अर्थमंत्री टोडरमल ने पुनः सुव्यवस्थित किया । उसी समय के विभाजन के आधार पर अँगरेजी-शासन-काल[३] में भी कमिश्नरियों, जिलों, सब-डिवीजनों, परगनों और थानों का पुनर्निर्माण हुआ ।

सन् १९४७ ई० में, १५ अगस्त को, भारत के स्वतंत्र होने पर, कुछ वर्षों के बाद, शासन सम्बन्धी सुविधा के विचार से दो नये जिले बने—सहरसा और धनबाद ।[४] इसके अतिरिक्त पूर्णिया और मानभूमि नामक पूर्वी जिलों के कुछ अंश पश्चिम-बंगाल में मिला दिये गये ।

इस इतिहास में वर्त्तमान नये-पुराने सोलह जिलों के अतिरिक्त पश्चिम-बंगाल में मिलाये गये भागों के भी हिन्दी-साहित्यकारों के परिचय दे दिये गये हैं ।

भाषा-विचार

भाषा-विज्ञान के कतिपय विशेषज्ञों ने यह ठीक ही माना है कि वैदिक भाषा या पुरानी-संस्कृत ही भारत की सबसे प्राचीन भाषा है ।[५] उनका यह भी मत है कि वह वैदिक युग से ईसा के छह सौ वर्ष पूर्व तक भारतीय जनता की भाषा थी ।[६] किन्तु मेरा अपना मत है कि वही वैदिक भाषा या पुरानी संस्कृत लौकिक संस्कृत के परिष्कृत रूप में परिवर्त्तित और उत्तरोत्तर विकसित होती हुई आज भी आसेतु-हिमाचल वर्त्तमान है ।

---

१. कीर्त्तिलता की रचना सन् १४०२ से १४०४ ई० के बीच हुई थी । देखिए—विद्यापति (मित्र-मजूमदार, २०१० वि०, भूमिका), पृ० ४६ ।

२. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सक्सेना, द्वितीय सं०, २०१० वि०), पृ० ५८ ।

३. अँगरेजी-शासन-काल में बिहार, बंगाल और उड़ीसा सम्मिलित प्रान्त थे । सन् १९१२ ई० में बंगाल से बिहार अलग हुआ और सन् १९३६ ई० में बिहार से उड़ीसा भी अलग हो गया ।

४. सुनने में आया है कि शासन की सुविधा के लिए ८ और नये जिलों का निर्माण पुनः होनेवाला है ।

५. "महर्षि यास्क ने 'निरुक्त' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है, जिसमें कठिन वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति दिखलाई गई है । इस ग्रंथ का प्रमाण 'भाषिकेभ्यो धातुभ्यो नैगमाः कृतो भाष्यन्ते' (—निरुक्त २/२) संस्कृत को बोलचाल की भाषा सिद्ध कर रहा है ।"

—संस्कृत-साहित्य का इतिहास (पं० बलदेव उपाध्याय, परिवर्द्धित सं०, १९४५ ई०), पृ० १३ ।

६. "पाणिनि के समय में (विक्रम-पूर्व पाँच सौ) संस्कृत का यह रूप बना ही रहा । पाणिनि भी इसी बोली को भाषा के ही नाम से पुकारते हैं ।"—वही, पृ० १३ ।

भाषावैज्ञानिकों ने वैदिक भाषा को 'छन्दस्' नाम से भी अभिहित किया है। इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक भाषा एक व्यापक भाषा थी और वही 'छन्दस्' कहलाई। जो लोग यह मानते हैं कि वैदिक भाषा छन्दोबद्ध होने के कारण 'छन्दस्' कहलाई उनका मत स्वीकार करने पर यह प्रश्न उठता है कि छन्दोबद्ध भाषा लोक-व्यापक कैसे हुई ?

यद्यपि हमारा अधिकांश उपलब्ध प्राचीन वाङ्मय पद्यबद्ध ही है, तथापि यह तर्कसंगत नहीं कि जनता की व्यावहारिक भाषा पद्यबद्ध ही रही हो। यदि जनता की भाषा छन्दोबद्ध ही होती, तो वैदिक भाषा में प्रयुक्त नाना प्रकार के छन्दों का अभिधान 'विनियोग'[1] में नहीं होता और उनके विभिन्न मंत्रद्रष्टा ऋषि भी नहीं होते।

वेदों का उद्गम-स्थान यद्यपि ब्रह्मावर्त्त ही है, उनके मंत्रद्रष्टा ऋषि भी प्रायः हिमालय और विन्ध्य के बीच में ही रमते रहे, सबसे पहले अगस्त्य ऋषि के ही दक्षिण में प्रवेश करने का प्रमाण मिलता है, तथापि भारत के और उसके समीपवर्त्ती द्वीपों के जिस किसी भाग में आर्य गये, वहाँ अपने साथ अपनी शिष्ट-भाषा भी ले गये। जो लोग उनके सम्पर्क में आना चाहते थे, वे भी उनकी भाषा का ही सहारा लेते थे। किष्किन्धा (दक्षिण-भारत) में जब राम-लक्ष्मण से हनुमान् की भेंट हुई, तब हनुमान् ने जनपदीय या स्थानीय भाषा में बातचीत न कर संस्कृत में ही सम्भाषण किया, जिससे प्रभावित होकर भगवान् रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—यह वटुरूपधारी व्यक्ति जो कुछ बोल गया है, उसमें कहीं भी कोई अशुद्धि नहीं हुई है। इससे यह जान पड़ता है कि इसने शब्द-शास्त्र का अच्छा अध्ययन किया है।[2]

इससे यह भी प्रकट होता है कि उस समय संस्कृत ही भारत की राष्ट्रभाषा[3] थी,

---

१. (क) 'अनेनेदं तु कर्त्तव्यं विनियोगः प्रकीर्त्तितः'—आह्निकतत्त्वम्—देखिए शब्दकल्पद्रुम (वही, चतुर्थ काण्ड), पृ० ४०३।

यथा—'अघमर्षणसूक्तस्याघमर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृतो देवताश्वमेधावभृथे विनियोगः।'
—सन्ध्याविधिः।

(ख) किसी वैदिक कृत्य में मंत्र का प्रयोग, किसी फल के उद्देश्य से किसी वस्तु का उपयोग, प्रयोग।
—हिन्दी-शब्दसागर (श्यामसुन्दर दास, १९२७ ई०), पृ० ३१६२।

२. (क) श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं बटुरूपिणम्।
शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम्॥
—अध्यात्मरामायण (मुनिलाल, सप्तम सं०, २००८ वि०, किष्किन्धा कांड, सर्ग १), श्लोक १७, पृ० १६८।

(ख) नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्। बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
—श्रीवाल्मीकिरामायण सटीक (वही, कि० कां०, सर्ग ३), श्लोक २९, पृ० ४७०।

३. संस्कृतं हि पूर्वं न केवलं धर्मभाषा साहित्यभाषैव वाभूत्, किन्तु बहुकालं लोकभाषा, शासनभाषा चाभूत्। राज्ञो भोजस्य काले भारवाहोऽपि भाषते—"भारो न बाधते राजन् यथा 'बाधति' बाधते।"
तात्कालिकस्तन्तुवायोऽपि ब्रूते—"काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि
यत्नात् करोमि यदि चारुतरं करोमि।
भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ
हे साहसांक कवयामि वयामि यामि।"
—बिहारसंस्कृतसमितेः समावर्त्तनमहोत्सवे मिथिलेशमहेशरमेशव्याख्यानात्मकं दीक्षान्तभाषणम् (पं० श्रीआदित्यनाथ झा, उपकुलपति, वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय, १९५९ ई०), पृ० ८।

और आज भी जैसे उसका भारतव्यापी प्रचार है, वैसे ही प्राचीनकाल में भी वह कश्मीर से कन्याकुमारी तक बोली और समझी जाती थी तथा विभिन्न प्रान्तों के लोग जब आपस में मिलते-जुलते थे, तब विचार-विनिमय के लिए संस्कृत को ही माध्यम बनाते थे।

नीचे दिये गये उद्धरणों से भी मेरे ही मत का समर्थन होता है—

(१) "ईसा के पहले, चौथी शताब्दी में, पाणिनि के समय, भारतीय भाषा संस्कृत नाम से पुकारी जाती थी। यह नाम प्रचलित भाषा से भिन्न अर्थ का बोधक है। महर्षि यास्क आदि प्राचीन वैयाकरण केवल इसको 'भाषा' कहकर पुकारा करते थे, ताकि वैदिक से भिन्न समझी जाय जिसको 'पतंजलि' 'विश्वव्यापक' कहा करते थे। इसका भी पता लगता है कि पहले संस्कृत में भी देशानुकूल अन्तर था। यास्क और पाणिनि ने पूर्वीय तथा उत्तरीय इन दो भेदों का उल्लेख किया है। महर्षि 'कात्यायन' प्रान्तिक भेदों का वर्णन करते हैं और पतंजलि ने तो ऐसे शब्दों के नाम दिये हैं, जिनका व्यवहार केवल एक ही नगर में होता था। अतएव, देखने से जान पड़ता है कि ख्रीष्ट के पूर्व द्वितीय शताब्दी में समस्त आर्यावर्त्त के अभ्यन्तर ब्राह्मणों की बोल-चाल की भाषा संस्कृत थी। यही नहीं, अत्यन्त साधारणजन भी इसका व्यवहार करते थे। उस काल में सामान्य श्रेणी के लोग भी संस्कृत समझ सकते थे, यह बात नाटकों द्वारा भी प्रमाणित होती है, जिनमें देखा जाता है कि जो व्यक्ति संस्कृत में भाषण नहीं कर सकते थे, वे कम-से-कम उसे समझते अवश्य थे। अस्तु; यह सिद्ध होता है कि प्राचीन भारतवर्ष में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी।"[1]

(२) "रामायण-महाभारत-काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा के रूप में प्रचलित थी। रामायण में इल्वल राक्षस, ब्राह्मण का रूप धारण कर संस्कृत बोलकर ही ब्राह्मणों को निमंत्रित करता था। हनुमान् ने भी सर्वप्रथम अशोक-वाटिका में पहुँचकर सीता से किस भाषा में वार्त्तालाप किया जाय, इस विषय में बड़ा सोच-विचार किया और अन्त में संस्कृत में ही भाषण करने का निश्चय किया। प्राचीन व्याकरण-शास्त्रों से भी संस्कृत का प्रचार सिद्ध होता है। यास्क (७ वीं शताब्दी ईसवी पूर्व) ने वैदिक-संस्कृत से इतर संस्कृत को 'भाषा' कहा है, जिससे उसका बोली जानेवाली भाषा होना सूचित होता है। पाणिनि (४०० ई० पू०) ने संस्कृत को 'लौकिक', अर्थात् 'इस लोक में व्यवहृत' कहा है। उन्होंने दूर से बुलाने, प्रणाम और प्रश्नोत्तर करने में कुछ स्वर-सम्बन्धी नियम भी बतलाये हैं, जिनसे संस्कृत का प्रचलित होना प्रमाणित होता है। यास्क और पाणिनि ने संस्कृत बोली की 'पूर्वी' और 'उत्तरी' विशेषताएँ बताई हैं। इससे मालूम होता है कि संस्कृत केवल साहित्यिक भाषा ही नहीं थी, भिन्न-भिन्न स्थानों में बोली जाने के कारण उसमें स्थानीय विशेषताएँ भी आ गई थीं। कात्यायन का भी यही कथन है। इन प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि ई० पू० द्वितीय शताब्दी में हिमालय और विन्ध्य पर्वतों के मध्यवर्त्ती समूचे प्रदेश में संस्कृत बोली जाती थी। ब्राह्मणों के सिवा अन्य वर्णों में भी इसका प्रचार था। 'महाभाष्य' में एक सारथी एक वैयाकरण के साथ 'सूत'

---

१. संस्कृत-साहित्य का इतिहास (महेशचन्द्रप्रसाद, प्रथम सं०, १९२२ ई०, भाग १), पृ० १९-२०।

शब्द की व्युत्पत्ति पर विवाद करता है। संस्कृत बोलनेवाले 'शिष्ट' (सभ्य) कहलाते थे। न बोलनेवाले भी इसे समझते अवश्य थे। नाटकों के निम्न पात्र प्राकृतभाषी होते हुए भी संस्कृत में कही हुई उक्तियों का उत्तर-प्रत्युत्तर देते हैं। संस्कृत-नाटकों से भी प्रमाणित होता है कि ये नाटक तभी खेले जाते होंगे, जब साधारण जनता संस्कृत समझती होगी। हाँ, यह अवश्य है कि प्राचीन काल में संस्कृत उसी प्रकार शिक्षित एवं शिष्टवर्ग की भाषा थी, जैसे आजकल खड़ीबोली है। साहित्यिक प्रसंगों में संस्कृत व्यवहृत होती थी। राजकार्य में भी बहुधा इसी का व्यवहार होता था। भारत के अन्य उपनिवेशों में भी संस्कृत का प्रचार हो गया था। प्राचीन चम्पा-उपनिवेश (आधुनिक फ्रांसीसी हिन्द-चीन) में तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक संस्कृत राजभाषा के रूप में बरती जाती रही। सारांश यह कि उस समय संस्कृत राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन थी।"[१]

(३) "प्रोफेसर ई० जे० रॉप्सन कहते हैं - संस्कृत भी वैसी ही बोलचाल की भाषा थी, जैसे साहित्यिक अँगरेजी है, जिसे कि हम बोलते हैं। संस्कृत उत्तर-पश्चिम भारत की बोलचाल की भाषा थी, जिसके विकास का पता सम्पूर्ण साहित्य दे रहा है। जिसकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ उत्तर-पश्चिम भारत के शिलालेखों में बहुत सीमा तक सुरक्षित है। ....प्रारम्भ में एक जिले की, फिर एक वर्ण तथा धर्म की, अन्त में सारे भारतवर्ष में एक धर्म, राजनीति और संस्कृति की भाषा बन गई। समय पाकर तो यह एक विशाल राष्ट्रीय भाषा बन गई और केवल तभी यह पदच्युत हुई, जब मुसलमानों ने हिन्दू राष्ट्रीयता को तबाह किया। ....साहित्य में ऐसे भी उल्लेख पाये जाते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि रामायण और महाभारत जनता के सामने मूल मात्र पढ़कर सुनाये जाते थे। तब तो जनता वस्तुतः संस्कृत के श्लोकों का अर्थ समझ लेती होगी। ....इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमालय और विन्ध्य के बीच फैले हुए सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। इसका व्यवहार ब्राह्मण ही नहीं, अन्य लोग भी करते थे।"[२]

(४) "संस्कृत का साहित्य सबसे अधिक सम्पन्न है। उस समय संस्कृत ही राजकीय भाषा थी। राज्य-कार्य इसी में होता था। शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी प्रायः इसी में लिखे जाते थे। इसके अतिरिक्त संस्कृत सम्पूर्ण भारतवर्ष के विद्वानों की भाषा थी, इस कारण भी संस्कृत का प्रचार प्रायः सम्पूर्ण भारत में था।"[३]

क्रमशः काल और स्थान के भेद से आर्यों की भाषा के रूप में परिवर्त्तन होने लगा और रामायण-काल तक आते-आते संस्कृत के दो रूप स्पष्ट हो गये—(क) संस्कृत और

---

१. संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा (स्व० पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय शास्त्री तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास, तृतीय सं०, १९५१ ई०), पृ० २—४।

२. संस्कृत-साहित्य का इतिहास, (डॉ० लक्ष्मणस्वरूप तथा हंसराज अग्रवाल, प्रथम सं० १९५० ई०), पृ० १५, १६ तथा १८।

३. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति : ६०० ई०—१२०० ई० (म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, प्रथम सं०, १९५४ ई०), पृ० ५७।

(ख) जनभाषा। इसी जनभाषा के लिए महर्षि वाल्मीकि ने 'मानुषवाक्य'[१] या 'अपशब्द' का प्रयोग किया है और संस्कृत को द्विजातियों, अर्थात् आर्यों की भाषा कहा है। आगे चलकर मानुषवाक्य'के भी पृथक्-पृथक् दो रूप हो गये—(क) प्राकृत और (ख) अपभ्रंश। अर्थात्, संस्कृत से प्राकृत-भाषा निकली और उसीका विकृत रूप 'अपभ्रंश, कहलाया। 'शब्दानुशासन' (हेमचन्द्र) और 'प्राकृत-चन्द्रिका' से भी इसी मत का समर्थन होता है।[२] महर्षि वाल्मीकि और पतंजलि ने भाषा के लिए 'प्राकृत' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने संस्कृत-भिन्न भाषा के लिए 'अपशब्द' (अपभ्रंश)[३] का ही व्यवहार किया है। कारण यह है कि उन दोनों के मतानुसार प्राकृत' भी 'अपभ्रंश' का ही एक भेद है। दण्डी ने भी सभी अशास्त्रीय भाषाओं को 'अपभ्रंश' ही कहा है।[४]

महर्षि पतंजलि ने भी भाषा के दो भेद माने हैं—(क) वैदिक और (ख) लौकिक। यहाँ 'वैदिक' और 'लौकिक' शब्द का प्रयोग संस्कृत के दो भिन्न रूपों के लिए ही हुआ है। इसी लौकिक संस्कृत के, जनता में प्रचलित अपभ्रष्ट रूपों को दिखलाते हुए उन्होंने 'अपभ्रंश' शब्द का भी सोदाहरण प्रयोग किया है।[५] तात्पर्य यह कि संस्कृत-समुद्भूत विकृत 'मानुषवाक्य'-नामधेय जनभाषा का आगे चलकर 'लोकभाषा' या 'अपभ्रंश' नाम प्रचलित हुआ। किन्तु इसके सभी उपकरण—शब्दराशि, वाक्य-विन्यास आदि बहुलांश में संस्कृत-शब्दानुशासन के अनुकूल रहे।

---

१. यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्। रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्। मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥
—श्रीवाल्मीकिरामायण सटीक (वही, सुन्दरकांड, सर्ग ३०), श्लोक १८-१९, पृ० ६४२।

२. (क) प्रकृतिः संस्कृतं, तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्।
—हेमचन्द्र, शब्दानुशासनवृत्ति, अ० ८, पाद ४।

(ख) प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात्प्राकृतं स्मृतम्।
तद्भवं तत्समं देशीत्येवमेतत्त्रिधा मतम्॥
—प्राकृत-चन्द्रिका—देखिए 'शब्दकल्पद्रुम' (वही, तृतीय काण्ड), पृ० ३०५।

३. अपभ्रंशोऽपशब्दः स्या (च्छास्त्रे) शब्द (स्तु) वाचकः।
—अमरकोष (१९७५ वि०, प्रथम कांड), पृ० ४८।
(अर्थात् व्याकरण-शास्त्र से जो निष्पन्न है, वह 'शब्द' है। उससे जो अधः पतित है, वह 'अपशब्द' अर्थात् 'अपभ्रंश' है।)

४. आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृतः।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम्॥
—दण्डी, शब्दकल्पद्रुम (वही), पृ० ६६।

५. भूयांसो ह्यपशब्दा अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य शब्दरूपस्य बहवोऽपभ्रंशाः।
तद्यथा गौरित्यस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः।
—महाभाष्य, अध्याय १, पाद १, आह्निक १।

'प्राकृतपिङ्गलम्' में संस्कृत 'देववाणी' कही गई है और उसी से प्राकृत की उत्पत्ति मानी गई है। फिर प्राकृत से 'अपभ्रष्ट'[१] का उद्भव बतलाते हुए उसी को 'अपभ्रंश' नाम दिया गया है। इसके बाद ही, उसमें लिखा है कि कोई-कोई विद्वान् देशी भाषा को ही 'अपभ्रंश' मानते हैं; क्योंकि संस्कृत और प्राकृत में शब्दों के रूप सूत्रानुसारी होते हैं पर अपभ्रंश में नहीं। कारण, संस्कृत और प्राकृत में परस्पर सामीप्य अधिक है और लौकिक भाषा होने से 'अपभ्रंश' उन दोनों से दूर है।[२] निष्कर्ष यह कि 'संस्कृत', प्राकृत और 'अपभ्रंश' की क्रम-परम्परा के अनुसार सभी देशी भाषाओं की जननी संस्कृत ही है।[३]

---

१. महाकवि विद्यापति ने इसे ही 'अवहट्ठ' कहा है।— 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तें तैसन जम्पओं अवहट्ठा"।—देखिए, कीर्त्तिलता (वही), पृ० ६।

२. संस्कृतं नाम दैवी वाक् तद्भवं प्राकृतं विदुः।
अपभ्रष्टा तु या तस्मात्सा ह्यपभ्रंशसंज्ञिता॥
तिङन्ते च सुबन्ते च समासे तद्धितेऽपि च।
प्राकृतादल्पभेदैव ह्यपभ्रष्टा प्रकीर्त्तिता॥
देशभाषां तथा केचिदपभ्रंशं विदुर्बुधाः।
तथाहि—
संस्कृते प्राकृते वापि सूपंसूत्रानुसारतः।
अपभ्रंशः स विज्ञेयो भाषा यत्रैव लौकिकी॥
—प्राकृतपिङ्गलम्—देखिए, 'रागतरंगिणी' (पं० बलदेव मिश्र, प्रथम सं०, १९९१ वि०, प्राक्कथन) पृ० ञ।

३. 'मार्कण्डेय' ने भी अपने 'प्राकृत सर्वस्वम्' के आरम्भ में ही लिखा है—
प्रकृतिः संस्कृतम्। त भवं प्राकृतम् उच्यते।'
'दशरूपक' की टीका में 'धनिक' ने २-६० में लिखा है—
प्रकृतेरागतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्।
'वाग्भटालङ्कार' २-२ की टीका में 'सिंहदेवगणि' ने लिखा है—
प्रकृतेः संस्कृताद्द आगतं प्राकृतम्।
'पीटर्सन' की तीसरी रिपोर्ट के ३४३-७ में 'प्राकृतचन्द्रिका' में आया है—
प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्।
'नरसिंह' ने 'प्राकृतशब्दप्रदीपिका' के आरम्भ में कहा है—
प्रकृतेः संस्कृतायास्तु तु विकृतिः प्राकृती मता।
'कर्पूरमञ्जरी' के बम्बई-संस्करण में 'वासुदेव' की सञ्जीवनी टीका में लिखा है—
प्राकृतस्य तु सर्वम् एवं संस्कृतं योनिः।—९/२
'गीतगोविन्द' ५-२ की नारायण-कृत 'रसिकसर्वस्व' टीका में लिखा है—
'संस्कृतात् प्राकृतम् इष्टं ततोऽपभ्रंशभाषणम्।'
—डॉ० रिचर्ड पिशल का 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' (डॉ० हेमचन्द्र जोशी, प्रथम सं०, १९५९ ई०, विषय-प्रवेश), पृ० १-२

निम्नांकित शब्द-तालिका से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी का विकास-क्रम स्पष्ट प्रकट होता है—

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	हिन्दी
भ्रातृ	भाई	भाई	भाई
भगिनी	भइणी, बहिणी	भइणी, बहिणी	बहिन, बहन
भ्रातृजाया	भाउजाया, भाउज्जाइआ	भाउज्जाइआ	भौजाई
श्यालक	सालअ, सारअ	सालअ, सारअ	सार, साला
भगिनीपति	बहिणीवइ	बहिणीवइ	बहनोई
पितृव्य	पितिव, पितिअ	पितिव, पितिअ	पितिया (स्थानीय)
स्वक	सग ,सग्ग	सग, सग्ग	सगा
लघुक	लहुअ, हलुअ	लहुअ, हलुअ	हलका, हलुक (स्थानीय)
मिष्टक	मिट्ठअ	मिट्ठअ	मीठा
कटुक	कडुअ	कडुअ	कडुआ
तिक्तक	तित्तअ	तित्तअ	तीता
तुच्छ	चुच्छ, छुच्छ	चुच्छ, छुच्छ	छूछ, छूछा
गो	गावी, गाई,	गावी, गाई	गाय
घोटक	घोडअ	घोडअ	घोड़ा
हस्तिन्	हत्थि	हत्थि	हाथी
गर्दभ	गद्दह	गद्दह	गदहा
नृत्य	णच्च	णच्च	नाच
मृत्यु	मच्चु, मिच्चु	मिच्चु	मीचु, मीच
पत्र	पत्त	पत्त	पात पत्ता
उपाध्याय	उवज्झाअ	उवज्झाअ, उअज्झाअ	ओझा, झा
भद्र	भद्द, भल्ल	भद्द, भल्ला	भद्दा, भला
साक्षी	सक्खि	सक्खि	साखी
पितृगृह	पिउहर	पिउहर	पीहर
लवण	लोण	लोण	नोन

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	हिन्दी
उत्थान	उट्ठान	उट्ठान	उठान, उठाना
भू	भो, हो (भोहि, होहि) (भोअण, होअण)	भो, हो	होना
स्वप् (स्वपन)	सो, सोअ (सोअन)	सो, सोअ	सोना
व्यञ्जन	वेअन	बेअन	बेना (स्थानीय)
केदार	केआर	केआर	कियार, कियारी
पुस्तक	पुत्थअ, पोत्थय	पोत्थअ	पोथा, पोथी
बाष्प	बप्फ	बप्फ	भाफ
वत्सक	वच्छअ	बच्छअ	बाछा, बच्चा
आश्चर्य	अच्छरिअ, अच्छरिज्ज, अच्चरीअ, अच्छेर	अच्छरिअ	अचरज
अर्ध	अड्ढ, अद्ध	अड्ढ, अद्ध	आधा
कांस्य	कंस, कांस	कंस	काँसा
कार्त्तिक	कत्तिअ	कत्तिअ	कातिक
स्कन्ध	खंध	खंध	कंधा
स्थान	ठाउ	ठाउ	ठाँव, थान
नाथ	णाह	णाह	नाह (नाथ)
दृष्टि	दिट्ठि	दिट्ठि	दीठ
दरिद्र	दलिद्द	दलिद्द	दरिद्दर, दलिद्दर (स्थानीय)
निम्ब	लिम्ब	लिम्ब	नीम
व्याघ्र	बग्घ	बग्घ	बाघ

अपि च, पहले सभी देशी भाषाओं के लिए 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग होता था।

समस्त भारत की अति प्राचीन भाषा संस्कृत आगे चलकर शिष्ट रूप में शिक्षित समाज द्वारा साहित्य-रचना का माध्यम बनी और जन-साधारण में उसके विकृत रूप का का प्रचलन रह गया। जनता में प्रचलित इस विकृत रूप में स्थान और समय की आवश्यकता के अनुसार बहुत से नये शब्द आ मिले। इस प्रकार, अनेक लोक-भाषाएँ बन गईं।

कालक्रम से संस्कृत में भी लोक-भाषाओं के बहुत-से शब्द खप गये। पारस्परिक आदान-प्रदान से संस्कृत के शब्द-भांडार में कुछ नये शब्द आये, किंतु अतिशय समृद्धिशालिनी[१] होने के कारण संस्कृत ने ही लोक-भाषाओं को विशेष प्रभावित किया। उनकी आवश्यकता-पूर्त्ति बराबर संस्कृत से ही होती रही। इसीलिए समग्र भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत ही कहलाई। अनेक विदेशी विद्वानों के मत में तो संसार को कितनी ही प्रमुख भाषाओं की भी जननी संस्कृत ही है।[२] आज भी भारत की प्रान्तीय बोलियों के असंख्य शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत के धातु-प्रत्ययों से ही सिद्ध होती है।

पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि का भी जनभाषा के रूप में भारतव्यापी प्रचलन कभी नहीं था। संस्कृत के नाटकों में भी प्राकृत और अपभ्रंश के विभिन्न रूप पाये जाते हैं। इसलिए, उनके किसी एक सार्वदेशिक रूप की कल्पना नहीं की जा सकती।

---

१. अतो गत (फरवरी) मासस्य त्रयोविंशे दिनांके दिल्लीनगरे विज्ञानभवने आज़ादव्याख्यानमालायाः सातत्ये प्रधानमन्त्रिणा श्रीनेहरूमहोदयेन सर्वथा यथार्थमेवोक्तं यत् 'संसारस्य जातीयेतिहासेषु कदाचिदेव कयाचित् भाषया तावन्महत्त्वपूर्णं कार्यं कृतं भवेत् यावत् संस्कृतभाषया भारतवर्षे कृतम्। संस्कृतम् उच्चविचाराणामभिव्यक्तेः सर्वोत्तमस्य साहित्यस्य च माध्यममात्रमेव नाविष्यत। किन्तु राजनीतिकदृष्ट्या विभक्तस्यापि भारतस्य एकत्वरक्षायाः महनीयं साधनमप्यवर्त्तत। सहस्र वर्षेभ्यो लक्षाणां व्यक्तीनां जीवनक्रमे रामायणमहाभारतेऽनुस्यूते स्तः। यदा कदा इदमनुचिन्तयतो मे महत्कष्टं जायते यत् यदि अस्माकं जातिः बुद्धविनयान्, उपनिषदः, संस्कृतस्य महान्ति काव्यानि च व्यस्मरिष्यत् तदा अस्याः कीदृशं रूपमभविष्यत्? तदा इयं समूलं नष्टा तैः असाधारणैः गुणैः रहिता च अभविष्यत् यैरियं युगेभ्यो विश्रुता आसीत्। संस्कृतं विस्मृत्य भारत भारतमेव नावर्त्तिष्यत।'

—बिहारसंस्कृतसमितेः समावर्त्तनमहोत्सवे मिथिलेशमहेशरमेशव्याख्यानात्मकं दीक्षान्तभाषणम् (वही), पृ० १८-११।

२. डॉ० वैलेण्टाइन की सम्मति में संस्कृत अखिल इण्डो-योरिपियन, अर्थात् आर्य-भाषाओं की जननी है।

मोशियो डूबो के विचार में संस्कृत योरोप की आधुनिक समस्त भाषाओं का मूल कारण है।

एक जर्मन विद्वान् का कहना है कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन और जर्मन भाषाओं की माता है।

मिस कार्पेण्टर कहती हैं कि यद्यपि संस्कृत का आदिस्थान आर्यावर्त्त है, तथापि अब यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि प्राचीन समय में आधुनिक योरोप के अधिकांश देशों की यह भाषा रही। बॉप साहब ने तो यहाँ तक लिखा है कि किसी समय में केवल संस्कृत ही संसार-मात्र की बोलचाल की भाषा थी।

प्रोफेसर मैक्समूलर ने संस्कृत को भाषाओं की भाषा कहा है। साथ ही, उनकी यह भी सम्मति है कि भाषा-विज्ञान के साथ संस्कृत का वही संबंध है, जो गणित-विद्या का ज्योतिष के साथ।... ...

सर विलियम जोन्स ने लिखा है कि 'देवनागरी का मूल स्रोत वहीं से है, जहाँ से पश्चिम एशिया की वर्णमाला निःसृत हुई।'

भारतवर्ष की प्रायः समस्त जीवित भाषाओं की आत्मा संस्कृत ही है। संस्कृत के ज्ञान द्वारा प्रान्तीय भाषाओं का ज्ञान और भी उन्नत, पूर्ण और यथार्थ हो जाता है।

—संस्कृत-साहित्य का इतिहास (महेशचन्द्र प्रसाद, वही), पृ० ७४-७६।

पालि-भाषा का जो गद्य-रूप 'त्रिपिटक' के ग्रन्थों में मिलता है, वह भी लोक-भाषा का परिमार्जित रूप ही जान पड़ता है क्योंकि समस्त भारत की जनभाषा की तो बात ही क्या, भगवान् बुद्ध के चंक्रमण-क्षेत्र—मगध और कोसल—की भी जनभाषा यदि पालि रही होती, तो त्रिपिटक-ग्रंथों में मिलनेवाले पालि के गद्य-रूप की छाया भी उक्त क्षेत्रों की बोलियों पर अवश्य पाई जाती।

भारत की जितनी प्रान्तीय भाषाएं हैं और उनके अन्तर्गत जो जनपदीय उपभाषाएँ हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा अनुमान होता है कि संस्कृत के मूल स्रोत से विभिन्न धाराओं के फूटने के बाद साहित्य की भाषा से जनता की भाषा पृथक् हो गई। विभिन्न क्षेत्रों की लोकभाषाएं देश में समय-समय पर घटित ऐतिहासिक और सामाजिक उथल-पुथल के प्रभाव से किंचित् परिवर्त्तित होती हुई आज भी अपने मौलिक रूप में विद्यमान हैं। पालि-भाषा का जो रूप, 'धम्मपद' आदि ग्रंथों में मिलता है, वह जनभाषा का असली रूप नहीं है। बौद्ध सिद्धों की कविताएँ जिस भाषा में लिखी गई हैं, वह भी मगध की जनभाषा नहीं थी। सूर, बिहारी, घनानंद आदि कवियों की ब्रजभाषा और जायसी, तुलसी आदि कवियों की अवधी-भाषा भी वास्तविक लोक-भाषा नहीं है। यद्यपि उनमें लोक-भाषा के ही उपकरण—शब्द, मुहावरे, कहावत आदि प्रयुक्त हुए हैं, तथापि वे लोक-भाषा के परिष्कृत रूप ही हैं। सभी लोक-भाषाओं का मौलिक रूप केवल लोक-गाथाओं और लोक-गीतों में ही पाया जाता है।

हिन्दी-भाषा

हिन्दी-साहित्य के कई इतिहासकारों के मतानुसार अपभ्रंश में हिन्दी का प्राचीन रूप पाया जाता है। अपभ्रंश को ही कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर और महाकवि विद्यापति ने ने 'अवहट्ट' कहा है। किन्तु 'अपभ्रंश' या 'अपभ्रष्ट' अथवा 'अवहट्ट' से हिन्दी निकली है, ऐसा क्रम बुद्धिगम्य नहीं जँचता। कारण, हिन्दी का स्वरूप-संघटन संस्कृत के शब्दानुशासन के अनुसार है, इसलिए हिन्दी का मूल उद्गम-स्थल संस्कृत ही है। हाँ, संस्कृत से उद्भूत होने के पश्चात् आरम्भिक अवस्था में उसे प्राकृत, अपभ्रंश आदि अन्तर्दशाओं का उपभोग करना पड़ा। इस प्रकार प्राकृत, अपभ्रंश आदि उसकी आदिकालीन अन्तर्दशाएं मात्र हैं, जननी नहीं। प्राकृत और अपभ्रंश को हम हिन्दी की धात्री कह सकते हैं, जननी कदापि नहीं। जननी तो संस्कृत ही है। यही कारण है कि संस्कृत के बाद समस्त भारत में सबसे बढ़कर हिन्दी ही व्यापक भाषा है। इसीलिए, इसको सदैव प्रादेशिक और जनपदीय भाषाओं का संयोग एवं सहयोग मिलता रहा और आज भी मिल रहा है। इसका नाम 'हिन्दी', 'हिन्दुई' या 'हिन्दवी' भी इसीलिए हुआ कि इसके बोलने और समझनेवाले समस्त 'हिन्द' या 'हिन्दुस्तान' में प्राचीन काल से ही पाये जाते हैं। भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं के नाम उन प्रान्तों के नामानुसार हैं। केवल हिन्दी ही ऐसी भाषा है, जिसका नाम किसी एक प्रान्त पर अवलम्बित न होकर समस्त भारत (हिन्द) पर आश्रित है। भारतव्यापी होने के कारण ही संस्कृत का एक नाम 'भारती' है। इसी तरह 'हिन्दी' नाम ही इसकी व्यापकता का दिग्दर्शन करा रहा है।

हमारे तीर्थों और संतों ने हिन्दी को देशव्यापी बनाने में विशेष योगदान किया है। दक्षिण के संतों ने भी अपने मत का प्रचार करने के लिए हिन्दी के माध्यम को अपनाया। तीर्थयात्रियों ने सदा से दक्षिण और उत्तर के तीर्थों में पारस्परिक भाव-प्रकाश के लिए हिन्दी का ही सहारा लिया। यह क्रम आज भी चालू है।

यद्यपि चौदहवीं सदी में ही अमीर खुसरो[१] ने खड़ीबोली[२] में काव्य-रचना की, तथापि अमीर खुसरो के बहुत दिनों बाद तक हिन्दी और रेखता इन दो नामों का व्यवहार नहीं मिलता। किन्तु, उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में लल्लूलालजी द्वारा खड़ीबोली का हिन्दी-भाषा के अर्थ में प्रयोग होने पर यह नाम विशेष प्रचलित हो गया। अठारहवीं सदी से 'रेखता' शब्द का प्रयोग भी ऐसी हिन्दी के लिए होने लगा, जिस हिन्दी में अरबी-फारसी के शब्दों की बहुलता होती थी। भारतेन्दु-युग में व्रजभाषा और खड़ीबोली के विवाद का जो आरम्भ हुआ,

---

१. "खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही व्रजभाषा के साथ-साथ खालिस खड़ीबोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। औरंगजेब के समय से फारसी-मिश्रित खड़ीबोली या रेखता में शायरी भी शुरू हो गई और उसका प्रचार फारसी पढ़े-लिखे लोगों में बराबर बढ़ता गया।"
—हिन्दी-साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संशोधित और प्रवर्द्धित सं० १९९७ वि०), पृ० ४८४।

२. "..........खड़ीबोली का गद्य अपने स्थान में पल्लवित होने के बदले दक्षिण में हुआ, जहाँ उसके लिए कोई उपयुक्त वातावरण नहीं था। जो मुसलमान दक्षिण में फैलते गये, उन्हीं के प्रयास द्वारा खड़ीबोली का गद्य अपने पैरों पर खड़ा हुआ। साहित्य में असंगति का सबसे स्पष्ट उदाहरण खड़ीबोली-गद्य के विकास में स्पष्ट रूप से दीख पड़ रहा है। वह उत्पन्न तो हुआ दिल्ली में और उसका विकास हुआ दक्षिण में। अमीर खुसरो ने खड़ीबोली का प्रयोग पद्य में तो अवश्य किया था, पर गद्य में नहीं। दक्षिण में ही उसका विकास हुआ, जो एक साहित्यिक कौतूहल है।

खड़ीबोली-गद्य का सबसे प्रथम लेखक था गेसूदराज बन्दानवाज शहबाज बुलन्द। उसका जन्म सं० १३७८ में हुआ और मृत्यु सं० १४७९ में। लेखक पन्द्रह वर्ष की उम्र में दक्षिण छोड़कर दिल्ली में आया और वृद्धावस्था से पहले दक्षिण नहीं लौटा। अतएव, उसके गद्य को तत्कालीन दिल्ली की भाषा का सच्चा रूप समझना चाहिए। उसने दो छोटी-छोटी पुस्तकों की रचना की—'मिराज उल आशकीन' और 'हिदायतनामा'। इनमें प्रथम पुस्तक प्राप्त हुई है और वह प्रकाशित भी हो गई है। उसमें केवल १९ पृष्ठ हैं, जिनमें सूफी सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। भाषा का रूप खड़ीबोली है। उसमें फारसी शब्द भी हैं, व्रजभाषा के रूप और कारकचिह्न भी। इस भाषा को 'दकनी उर्दू' कहा गया है, जिसे 'मिराजउल आशकीन' के सम्पादक मौलाना अब्दुल हक साहब बी० ए० ने हिन्दी भी कहा है।"
—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डॉ० रामकुमार वर्मा, द्वितीय सं० १९४८ ई०), पृ० ८७४।

डॉ० वर्मा के उद्धृत मत से भी यही ध्वनित होता है कि दिल्ली की ओर से जो मुसलमान दक्षिण में गये, उन्होंने ही वहाँ खड़ीबोली का विकास किया और गेसूदराज बन्दानवाज भी १५ वर्ष की उम्र में दिल्ली आकर खड़ीबोली सीखी तथा खड़ीबोली के विकास में सहयोग किया। इस प्रकार, यह सिद्ध होता है कि खड़ीबोली के विकास का क्षेत्र उत्तर-भारत ही है।—संपादक

उसका अन्त द्विवेदी-युग में हो गया। और, उसके उपरान्त हिन्दी के लिए खड़ीबोली जैसा कोई नाम नहीं रह गया तथा 'रेखता' की जगह भी 'हिन्दुस्तानी' शब्द ने ले ली। हिन्दी-भाषा का हिन्दुस्तानी नाम भी उन विदेशियों का दिया हुआ है, जो हिन्दी में अरबी-फारसी के शब्द अधिक संख्या में मिलाकर बोलते और इस देश के समाज में अपना व्यवहार चलाते थे। महात्मा गांधी के समय तक साम्प्रदायिक एकता की दृष्टि से 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रचार रहा; पर भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी ही स्वीकृत होने पर अब केवल 'हिन्दी' नाम की ही प्रधानता रह गई है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को भारत में सबसे अधिक व्यापक भाषा समझकर ही अपने मत का भारतव्यापी प्रचार करने के लिए हिन्दी में अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' लिखा। उनके पहले भी राजा राममोहन राय ने अपने मत का भारतव्यापी प्रचार करने के उद्देश्य से ही 'वंगदूत' (सन् १८२९ ई०) में हिन्दी को भी स्थान दिया था। उससे भी पहले जब अँगरेजों ने इस देश का शासन-सूत्र सँभाला, तब कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलिज से, अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट ने जो 'वर्नाकुलर-मैगजीन' निकाला, उसमें भी अँगरेजी के साथ-साथ हिन्दी को स्थान दिया।

इसी समय, अर्थात् उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में, आधुनिक हिन्दी-गद्य के आदि लेखक पं० सदलमिश्र ने हिन्दी में पुस्तकें लिखी थीं। पं० सदलमिश्र से भी सत्तर वर्ष पूर्व का एक शिलालेख बंगाल के मुर्शिदाबाद नामक स्थान में मिला है, जिसका सचित्र परिचय 'वंगीय साहित्य-परिषद्-पत्रिका' में श्रीसुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है।[1] वह विक्रमाब्द १७९१ (१८३४ ई०) का है। उसमें ऊपर हिन्दी के पाँच दोहे और नीचे उन्हीं का रूपान्तर बँगला और फारसी-लिपि में है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय भी अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी की ही प्रधानता थी।

---

१. संवतु १७९१ वैसाष मास सुदि तीजा।
श्रीनृप गंधर्वसिंघ भुव मोल ले क्यौ धर्म को बीजा॥
देवपुरी अस्थाँनु यह बागु गंग के तीर॥
जर षरीद लीनो सोई श्रीहरि सुम्रन कौं वीरा॥
रतनेपुर की नारि नें दयौ षुसी करि मोला।
थरि रोपी महाराज नें धर्मपुरी अडोला॥
उत्तर देवीपुर बसे पछिम गंगा आलि।
मैरु बहादुरपुर लगी दहिन पूरब षालि॥
बीघा बीस पर दोय हैं आठ बिसे परिमाना।
हरिमंदिल कीन्हों तहाँ बाँध्यो कूप निबाना॥ ५॥

—'वंगीय साहित्य-परिषद्-पत्रिका' (त्रैमासिक, भाग ३१, सं० १), पृ०। ४३-४४

उक्त शिलालेख से तीस वर्ष पहले और पं० सदलमिश्र से एक सौ वर्ष पूर्व भगवान् मिश्र मैथिल के अठारहवीं-शताब्दी (सन् १७०३ ई०) के शिलालेख[1] (बस्तर-राज्यान्तर्गत दन्तावारा ग्राम, मध्यप्रदेश) में हिन्दी का जो प्राचीन रूप मिलता है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अठारहवीं शताब्दी से पूर्व ही हिन्दी भारतीय जन-जीवन में अपना प्रमुख स्थान बना चुकी थी।

बिहार की भाषा

भाषा के सम्बन्ध में अखिलभारतीय दृष्टि से विचार कर चुकने के बाद अब यह देखना है कि हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य का जो क्रम-विकास हुआ, उसमें बिहार का योग-दान कितना है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बत-यात्रा करके बौद्ध सिद्धों की रचनाओं का जब उद्धार किया, तब १२वीं शताब्दी के महाकवि चन्दबरदाई के समय से ही

---

१. "दन्तवाला देवी जयति। देववाणी मह प्रशस्ति लिखाए राजा दिक्पालदेव के कलयुग महँ संस्कृत के वचवैया थोर ही हैं ते पाइ भाषा लिखे हैं। सोमवंशी पांडव अर्जुन के संतान तुवकान हस्तिनापुर छाड़ि ओरंगल के राजा भए। ते वंश महँ काकती प्रतापरुद्र नामा राजा भए जे राजा शिव के अंश नउ लाख धानुक के ठाकुर जे के राज्य सुवर्न वर्षा भै ते राज के माई अन्नमराज बस्तार महँ राजा भए ओरंगल छाड़ि कै। ते के संतान हंमीरदेव राजा भए। ताके पुत्र भैरव राजदेव राजा। ताके पुत्र पुरुषोत्तमदेव महाराजा ताके पुत्र जैसिंहदेव राजा ताके पुत्र नरसिंहराय देव महाराजा जेकर महारानी लछिमा देई अनेक ताल बाग करि सोरह महादान दीन्हें। ताके पुत्र जगदीशराय देव राजा। ताके पुत्र वीरसिंहदेव नाम धर्मअवतार, पंडितदाता, सर्वगुन-सहित, देव-ब्राह्मन-पालक चंदेलिन बदन कुमारी महारानी विषै दंतावली के प्रसाद तें दिक्पालदेव पुत्र पाए। शतसाठि वर्ष राज्य करि दिक्पालदेव कहँ राज सौपि कै वैसाषी पूर्णिमा महँ प्राणायाम समाधि बैकुंठ गए। ताके पुत्र स्वस्ति श्री महाराजाधिराज सक प्रशस्तिसहित पृथुराज के अवतार, बुद्धि-गणेश, बलभीम, सोमाराम, पन परशुराम, दान-कर्ण,......सीलसागर, रीझे कुबेर, खीझे यम, प्रताप आगिनी, सेना सरदार इन्द्र.........आचार ब्रह्मा, विद्या सेसनाग एहूँ भाँति दस दिक्पाल के गुण जानि 'पंडित वामन' दिक्पालदेव नाम धरे। तें दिक्पालदेव बिआह कीन्हें बरदी के चंदेलराव रतनराजा के कन्या अजब कुमारि महारानो विषै अठारहवें वर्ष रक्षपालदेव नाम युवराज पुत्र भए। तब हल्ला तें 'नवरंगपुर' गढ़ तोरि-फारि सकल बन्द करि जगन्नाथ बस्तर पठै के फेरि 'नवरंगपुर' दै के ओड़िया राजा थापे.......। पुनि सकल पुरवासी लोग समेत दंतवाला के 'कुटुम जात्रा' संवत सत्रह सै साठि १७६० चैत्र सुदी १४ आरंभ वैशाख वदी इते संपूर्ण भै जात्रा। कते कौ हजार भैंसा बोकरा मारे तेकर रकत प्रवाह बह पाँच दिन संषिनी नदी लाल कुसुम बर्न भए। ई अर्थ मैथिल भगवान मिश्र राजगुरु पंडित भाषा और संस्कृत दोउ पाथर महि लिखाए। अस राजा श्रीदिक्पालदेव समान। कलयुग न हो है आन राजा।"

—मिश्रबन्धु-विनोद (मिश्रबन्धु, द्वितीय भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ५३६-३७। तथा 'सरस्वती' (भाग १७, खंड २, संख्या ५), पृ० २८५।

हिन्दी का उद्गम माननेवाले इतिहासकार आठवीं शताब्दी में बौद्ध सिद्धों द्वारा रचित कविताओं में हिन्दी के प्राचीन रूप का आभास पाने लगे। इस प्रकार राहुलजी की खोजों से हिन्दी के उद्गम का समय पहले के अनुमित समय से लगभग ४०० (चार सौ, वर्ष अधिक बढ़ गया। किन्तु, यह विचारणीय विषय है कि आठवीं सदी में हिन्दी के आदिकवि सिद्ध सरहपाद ने अपनी रचना के लिए जिस भाषा को अपनाया, उसमें उस समय से पहले कोई रचना थी या नहीं; क्योंकि सातवीं सदी के आरम्भ में ही महाकवि 'बाणभट्ट' के 'परममित्र भाषाकवि ईशान' ने भाषा' में—संस्कृत और प्राकृत से भिन्न भाषा में, अर्थात् लोकप्रचलित भाषा में—कविता की थी। 'हर्षचरित' के प्रथम उच्छ्वास में प्राकृत-कवि और भाषा-कवि का अलग-अलग उल्लेख है।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि उस समय केवल 'ईशान' ही भाषा कवि नहीं रहे होंगे, बल्कि जिस लोक-प्रचलित भाषा में वे कविता करते थे, उसी में उस समय के अन्य कवि भी कविता करते रहे होंगे। इसके प्रमाण में वही प्रकरण देखा जा सकता है, जिसमें बाणभट्ट ने अपने परममित्र ईशान के साथ-साथ 'वर्ण कवि वेणी भारत'[1] का उल्लेख किया है। वहाँ कवि का नाम 'वेणी भारत' और 'वर्ण कवि' उनका विशेषण है। 'हर्षचरित' के टीकाकार और १२वीं शताब्दी से पहले होनेवाले 'शंकर' ने 'वर्ण कवि की व्याख्या करते हुए लिखा है—'भाषा में गाने योग्य विषयों को वाणी का रूप देकर कविता करनेवाला—अर्थात् गाथा रचकर गानेवाला।'[2] इससे भी स्पष्ट है कि 'ईशान की तरह 'वेणी भारत' भी भाषा के ही गाथा गानेवाले कवि थे।

इसी तरह सरहपाद ने भी अपनी रचना के लिए कोई नई भाषा नहीं गढ़ी होगी। जिस भाषा को उन्होंने अपने भावों के वहन करने में समर्थ पाया, उसका अस्तित्व निश्चय ही उनके पहले से था। अनिश्चित काल से ही बहती आती हुई नदी में ही घाट बाँधा जाता है, घाट बाँधने के लिए नई नदी नहीं खोदी जाती।

जिस तरह राहुलजी के अनुसन्धान से हिन्दी की प्राचीनता का समय ४०० वर्ष अधिक बढ़ गया, उसी तरह उपर्युक्त प्रमाणों से ही यह सिद्ध हो जाता है कि राहुलजी द्वारा निर्णीत समय ४०० वर्ष के बदले लगभग ६०० वर्ष होना चाहिए। संभव है, भविष्य के किसी अप्रत्याशित नये अनुसन्धान से यह समय और भी अधिक बढ़ जाय, जैसे 'मोहनजोदड़ो' और 'हरप्पा' के उत्खनन से भारतीय सभ्यता की प्राचीनता का समय कई हजार वर्ष अधिक बढ़ गया।

---

१. "अमर्वश्चास्य सवयसः समानाः सुहृदः सहायाश्च। तथा च भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ विद्वांसौ वारबाणवासबाणौ वर्णकविः वेणी भारतः।"

—हर्षचरितम् (बाणभट्ट, प्रथम उच्छ्वास)

२. शंकर की टीका—'भाषागेयवस्तुवाचस्तेषु वर्णकविः। गाथादिषु गीतद इत्यर्थः।'—वही।

शंकर की टीका के समर्थन में यह वाक्य भी है—"वर्ण'—··the order or arrangement of a song or poem", W. (M. M. W. Sanskrit English Dictionary 1951), P. 924.

चौदहवीं सदी में भी अमीर खुसरो ने जिस भाषा में मुकरियाँ और पहेलियाँ लिखीं, उस भाषा का अस्तित्व उनके समय में अथवा उनके समय से पहले भी अवश्य रहा होगा; क्योंकि उन्होंने अपनी ओर से कोई बिलकुल नई भाषा नहीं गढ़ी, बल्कि उस समय के समाज में जिसका प्रचलन देखा, उसी का कुछ परिष्कार किया। प्रायः अधिकांश समर्थ कवि जब अपनी कविता के भावों को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए जनभाषा को अपनाते हैं, तब उसके रूप को आवश्यकतानुसार परिष्कृत भी करते हैं। इस बात के प्रमाण हिन्दी के कई महाकवि हैं।

दक्षिण-बिहार और उत्तर-बिहार, अर्थात् मगध, अंग मिथिला की जनभाषा मगही, अंगिका और मैथिली बहुत प्राचान काल से ही रही। बिहार के पश्चिम खंड में भोजपुरी भी सुदूर अतीत काल से जनभाषा थी और आजतक है। बिहार की इन चार प्रमुख जनभाषाओं में पुरानी और नई रचनाएँ पाई जाती हैं। विशेषतः मैथिली की पुरानी रचनाएँ साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान पा चुकी हैं। भोजपुरी का साहित्य भी जिसकी प्राचीनता की सीमा मैथिली-साहित्य की तरह निर्धारित नहीं की जा सकी है, प्रचुर मात्रा में प्रकाश में आ चुका है। मगही और अंगिका का साहित्य भी शनैः शनैः प्रकाश में आता जा रहा है।

यह मानना युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि जिस पुरानी भाषा में बौद्ध सिद्धों ने और मैथिली में विद्यापति तथा उनके समकालीन मैथिली-कवियों ने कविता रची, उसमें पहले कोई रचना हुई ही नहीं। आज की खोज में विद्यापति से भी ३०० वर्ष पहले राजा मल्लदेव की जो कविता मिली है, उसकी भाषा विद्यापति की मैथिली से विशेष भिन्न नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि हिन्दी की तरह जनभाषाओं का निर्झर भी संस्कृत-गोमुख से निकलकर प्राकृत, अपभ्रंश आदि घाटियों को पार करता हुआ देश में फैला आर स्थान-विशेष की प्रकृति तथा काल की गति के प्रभाव से उसमें अनेकरूपता आई।

उन भाषाओं में जो क्रियाएँ, विशेषण और संज्ञाएँ हैं, सबको व्युत्पत्ति देखने से सहज ही ऐसा अनुमान होता है कि संस्कृत, पालि. प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं से अनेकानेक शब्द हमारी लोक-भाषाओं में आये हैं और आते रहे हैं। साथ ही, जो विदेशी यात्री, विद्वान्, व्यापारी और आक्रमणकारी समय-समय पर इस देश में, और खासकर बिहार में आते रहे हैं उनके संसर्ग से भी हमारी जनभाषाओं में अनेक शब्द घुल-मिल गये हैं, जिनमें से बहुत-से शब्द शिष्ट हिन्दी में भी खपे हुए हैं।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य-संसार में यह मान्यता सप्रमाण प्रतिपादित हो चुकी है कि बिहार के बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में हिन्दी का सबसे प्राचीन रूप है। किन्तु, बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, वह जनसाधारण की भाषा न होकर शिष्ट-सम्प्रदाय की भाषा थी; क्योंकि बौद्ध सिद्धों में से कई कवि भारत के अन्य प्रान्तों के भी थे और उन्होंने बिहार में आकर एकाएक यहाँ की जनभाषा में रचना कर डाली, यह सहसा विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता।

भाषातत्त्वविद् इतिहासकारों ने अबतक भाषा के सम्बन्ध में विचार करते समय अधिकतर अनुमान और परम्परागत धारणाओं के आधार पर ही अपने मत व्यक्त किये हैं। इसलिए निश्चित रूप से कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हो सका है। एक तो भाषा-सम्बन्धी विचार-विमर्श के लिए प्रामाणिक प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं, दूसरे यह कि जो उपलब्ध हैं, उनके सहारे किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना अथवा अन्तिम निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है। किन्तु, बुद्धिगम्य प्रमाणों के बल पर ही इतना कहना संभव है कि बिहार की जनभाषा का नाम, समय और स्थान के भेद से, पालि, प्राकृत आदि रहा, जिसके चार प्रधान रूप मैथिली, भोजपुरी, मगही और अंगिका वर्त्तमान हैं।

जो लोग बौद्ध सिद्धों की भाषा को जनभाषा मानते हैं, उन्हें यह सोचना चाहिए कि कविता की भाषा से जनभाषा का ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन है। इतना ही कहा जा सकता है कि बौद्ध सिद्धों ने अपने मत अथवा सिद्धान्त का जनता में प्रचार करने के उद्देश्य से अपनी कविता में जनभाषा के भावोद्बोधक शब्द ले लिये हैं।

भाषा के प्रकृत रूप अथवा भाषा की प्रकृति की परख करते समय यह बात ध्यान में आती है कि जनभाषा की तरह शिष्टों की भाषा पर भी स्थान और समय का प्रभाव होता है। आज जिस प्रकार हिन्दी की कविता की भाषा के रूप में पचास वर्षों की अवधि में स्पष्ट परिवर्त्तन लक्षित होता है, उसी प्रकार प्राचीन हिन्दी सदियों से परिवर्त्तित होती हुई वर्त्तमान रूप में अवस्थित है।

जबतक बिहार के बौद्ध सिद्धों की रचना के अतिरिक्त प्राचीन हिन्दी के रूप का दूसरा कोई पुष्ट आधार नहीं मिलता, तबतक यह मानना असंगत न होगा कि हिन्दी का उद्गम-स्थल बिहार ही है।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि तिब्बत के बौद्ध विहारों में असंख्य हस्तलिखित भारतीय पोथियाँ संगृहीत और सुरक्षित हैं, जिनका अध्ययन आजतक नहीं हुआ है। अतः, सम्भव है कि भविष्य में उनके अनुशीलन से प्राचीन भारतीय साहित्य और बिहार की अपार साहित्यिक निधि के सम्बन्ध में बहुत-सी नई परम्पराओं और नये तथ्यों का उद्घाटन हो।

सिद्ध-काल

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार ८४ सिद्धों में ३६ बिहारी हैं, जिनमें से कई सिद्धों की रचनाएँ नहीं मिलतीं और कुछ का तो परिचय भी संक्षिप्त ही मिलता है। उन सिद्धों ने जिस अपभ्रंश में कविता की, उसके सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है कि साहित्यिक इतिहासकार उसी में पुरानी हिन्दी की छाया देखते हैं। कहा जाता है कि पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश-भाषाओं में जो जैनों और बौद्धों का साहित्य मिलता है, उसमें भी हिन्दी के प्राचीन रूप के दर्शन होते हैं। जैनधर्म और बौद्धधर्म का मुख्य केन्द्र होने के कारण बिहार की तत्कालीन भाषा का प्रचार धर्म-प्रचारकों द्वारा भारत के विभिन्न स्थानों के अतिरिक्त भारत के पड़ोसी देशों में भी हुआ। जैन नरेशों और बौद्ध सम्राटों के प्रभाव से प्राकृत और पालि को उनके राज्यों में राजभाषा होने का भी गौरव मिला।

किन्तु, अपभ्रंश-भाषा बिहार में या भारत के अन्य प्रान्तों में यद्यपि राजभाषा के रूप में कभी प्रचलित न हुई, तथापि संस्कृत भाषा का विकृत रूप होने के कारण भारत की जनपदीय भाषाओं से उसका सम्पर्क समझकर तात्कालिक साहित्यकारों ने अपनी पद्य-रचना के लिए उसे अपनाया। उसमें जो रचना की परम्परा चली, वह कालक्रम से विकास पाती हुई विद्यापति के काल तक चली आई। उसके बाद की रचनाओं में भी कहीं-कहीं उसकी छाया प्रतिबिम्बित हुई है।

चूंकि हिन्दी की आदि-कविता केवल बिहार के ही बौद्ध सिद्धों की मिलती है, इसलिए उसके सबसे प्राचीन रूप को बिहार की ही देन कहना युक्तिसंगत होगा।

सिद्धों की भाषा में बहुत-से ऐसे शब्द हैं, जो आज की हिन्दी में प्रचलित तत्सम शब्दों के विकृत रूप जान पड़ते हैं, और बहुत-से शब्द ऐसे भी हैं, जो आज भी अपने प्रकृत रूप में ही प्रचलित हैं। उनकी भाषा से यह भी प्रकट होता है कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द और वाक्य संस्कृत की परंपरा से ही आये हैं। उनकी भाव-व्यंजना-शैली में भी संस्कृत की अन्तर्मुखी धारा प्रवाहित दीख पड़ती है। स्पष्टीकरण के लिए प्रत्येक शती के उपलब्ध उदाहरणों से यहाँ कुछ शब्दों की तालिका उपस्थित की जा रही है, जिसमें चार प्रकार के शब्द हैं—

(१) तत्सम शब्दों के विकृत रूप।
(२) तत्सम शब्दों के आधुनिक प्रचलित रूप।
(३) तद्भव या देशज शब्दों के विकृत रूप।
(४) तद्भव या देशज शब्दों के आधुनिक प्रचलित रूप।

तत्सम शब्दों के विकृत रूप	**तत्सम शब्दों के आधुनिक प्रचलित रूप**	**तद्भव या देशज शब्दों के विकृत रूप**	**तद्भव या देशज शब्दों के आधुनिक प्रचलित रूप**
आठवीं शती			
सअल (सकल)	करुणा	जिम (जिमि)	पइसइ
दिढ (दृढ़)	पंच	अप्पण (अपन)	छाडिअ
महासुह (महासुख)	परिमाण	जोइआ (जोगिया)	अहेरी
पवेस (प्रवेश)	आकाश	काआ (कागा)	लेहु
तित्थ (तीर्थ)	चित्त	सुणउ (सुनउ)	कहिअ
नवीं शती			
तत (तत्त्व)	सद्गुरु	दहिणा (दहिना)	चउदिस
जउना (यमुना)	पवन	आग्गी (आगी, आगि)	बहइ
चन्द-सुज्ज (चन्द्र-सूर्य)	निरंजन	उएखी (उपेखी)	जाइब
मेरु-सिहर (मेरु-शिखर)	कमल कुलिश	बिआपेउ (व्यापेउ)	गेल
अणहअ (अनहद)	निरंतर	—	आइल
दसवीं शती			
जथा (यथा)	धाम	जबें (जबे)	करहु

तत्सम शब्दों के विकृत रूप	तत्सम शब्दों के आधुनिक प्रचलित रूप	तद्भव या देशज शब्दों के विकृत रूप	तद्भव या देशज शब्दों के आधुनिक प्रचलित रूप
तपोवण (तपोवन)	सर्व	तबें (तबे)	पावा
बह्मा-बिह्णु-महेसुर (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर)	सेवा	अराहहु (अराधहु)	पुजहू
बोहिसत्व (बोधिसत्त्व)	अविकल	चित्तें (चित्ते)	काज
मोक्ख (मोक्ष)	कारण	पुन (पुनु)	बोलथि
ग्यारहवीं शती			
जइ (यदि)	मोह	तूटइ (टूटइ)	—
माआ (माया)	अन्तराले (अन्तराल)	भणइ (भनइ)	होइ
बारहवीं शती			
संबेअण (संवेदन)	रवि	चान्दा (चन्दा)	आध
आन्त (अन्त)	सम	ताबें (तबे)	राती
तेरहवीं शती			
सुद्ध (शुद्ध)	हंस	पुणि (पुनि)	किअ
कित्ति (कीर्त्ति)	कमल	भण (भन)	तुअ

वस्तुतः, साहित्य में बौद्ध सिद्धों की रचनाओं का महत्त्व केवल उनकी भाषा के कारण ही है। उनकी रचनाओं में ऐसा कुछ काव्य-तत्त्व नहीं है, जिससे वे वास्तविक कवि के रूप में स्वीकृत किये जायँ; क्योंकि उन्होंने केवल धर्म-प्रचार के उद्देश्य से ही पद्य-बद्ध रचनाएँ की थीं।

चौरासी बौद्ध सिद्धों में जो बिहार के निवासी थे, उनका परिचय पुस्तक के मूल विषय के अन्तर्गत अंकित है, और जो बिहार के निवासी नहीं थे, पर जिनका कर्मक्षेत्र बिहार था, उनका परिचय परिशिष्ट भाग में दिया गया है। किन्तु ऐसा अनुमान है कि बिहार के नालंदा और विक्रमशिला-विद्यापीठों से चौरासी सिद्धों का घनिष्ठ सम्पर्क रहा होगा। और, बिहार से बाहर के जितने भी बौद्ध सिद्ध रहे होंगे, उन सबकी साधना का केन्द्र-स्थान नालन्दा और विक्रमशिला में ही होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि चौरासी सिद्धों की साहित्य-सेवा का मूल स्रोत बिहार ही रहा है। इस पुस्तक में कुछ सिद्धकालीन साहित्यकार ऐसे भी हैं, जिनकी गणना चौरासी सिद्धों में नहीं होती, किन्तु उनका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार चौरासी सिद्धों से रहा है और वे पाण्डित्य तथा साहित्य-रचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं।

सिद्ध-काल में शान्तिरक्षित[१] नामक एक सुप्रसिद्ध विद्वान् बिहार में हो चुके हैं। संस्कृत में उनकी अनेक रचनाएँ हैं। अपने समय के वे अत्यन्त प्रतिष्ठित सिद्धाचार्य हुए हैं, किन्तु उनकी कोई रचना पुरानी हिन्दी में नहीं मिलती। इसलिए उनके

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से प्रकाशित श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'-लिखित 'बौद्धधर्म और बिहार' नामक पुस्तक (पृ० २११-१२) में महात्मा शान्तिरक्षित का सचित्र परिचय प्रकाशित है।

समान सिद्ध-काल के परम प्रसिद्ध विद्वान् का यहाँ उल्लेख-मात्र किया गया है। संभव है कि भावी शोध में उनकी कोई रचना पुरानी हिन्दी में भी मिल जाय।

यह बात सिद्ध-युग में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि आठवीं से तेरहवीं शती तक के समय में कुछ विद्वानों के मतानुसार एकमात्र 'चौरंगीपा' ही गद्यकार दृष्टिगत होते हैं, जिनकी 'प्राणसंकली' नामक गद्य-रचना पिण्डी के जैनग्रंथ-भण्डार में सुरक्षित है और जिसके कुछ अंश का उदाहरण भी इस पुस्तक की एक पाद-टिप्पणी में दिया गया है। उनके गद्य में भोजपुरी भाषा की झलक मिलती है और ऐसा अनुमान होता है कि उनके समय से पहले भी गद्य-रचना होती थी। संभव है कि उनके अतिरिक्त अन्य बौद्ध सिद्ध भी गद्यकार रहे हों, पर उनके रचे ग्रंथों के नाममात्र से ठीक पता नहीं लगता कि वे ग्रंथ गद्य के हैं या पद्य के। चौरंगीपा के गद्य-ग्रंथ के सम्बन्ध में भी मतभेद है। अतः, निश्चित रूप से उनको गद्यकार मानने में शंका हो सकती है।

उपलब्ध और प्रकाशित रचनाओं के आधार पर भी विचार करने से ऐसा स्पष्ट लक्षित होता है कि सिद्ध-काल की भाषा-परम्परा महाकवि विद्यापति तक चली आई है।[1] बारहवीं शती तक मुख्यतः सिद्धों की रचनाएँ अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी में हैं; पर १३वीं शती के कवि 'हरिब्रह्म' की रचना में भी पुरानी हिन्दी की छाप स्पष्ट है। चौदहवीं शती के विद्यापति की रचनाओं में भी अपभ्रंश (अवहट्ठ) अथवा पुरानी हिन्दी के उदाहरण मिलते हैं। हरिब्रह्म और विद्यापति की अपभ्रंश-रचनाओं में बहुत-कुछ साम्य दीख पड़ता है।

सिद्धोत्तर काल

चौदहवीं शती—सिद्धोत्तर काल का आरम्भ चौदहवीं शती से होता है। इस शती के जिन साहित्यकारों के परिचय इस पुस्तक में दिये गये हैं, वे सभी मिथिला-निवासी हैं। मिथिला अत्यन्त प्राचीन काल से विद्वानों की जन्मभूमि रही है। पौराणिक युग से ऐतिहासिक युग तक उसमें देशविख्यात विद्वानों की गौरवमयी परम्परा मिलती है। विद्याध्ययन और ग्रन्थ-प्रणयन की परम्परा भी वहाँ पाई जाती है। वहाँ कितने ही ऐसे वंश और परिवार पुराकाल में थे और आज भी हैं, जिनमें विद्वत्ता और ग्रंथ-लेखन का क्रम निरन्तर चलता रहा है। इसलिए प्राचीन हस्तलेखों के युग में भी वहाँ के साहित्यकारों की रचनाएँ सुरक्षित रह सकीं।

मिथिला की तरह भोजपुरी, मगही आदि भाषाओं के क्षेत्रों में भी बहुत-सी रचनाएँ हुई होंगी, पर उनकी खोज और रक्षा का प्रयत्न मिथिला की तरह कभी नहीं हुआ। ऐतिहासिक युग के राजनीतिक विप्लवों का प्रभाव दक्षिण-बिहार पर इतना अधिक पड़ा कि बहुत से ग्रंथ-भाण्डारों और प्रजा के विपुल धन का ध्वंस हो गया। यहाँ तक

---

१. "अपभ्रंश की यह परम्परा विक्रम की १५वीं शताब्दी के मध्य तक चलती रही। एक ही कवि विद्यापति ने दो प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है—पुरानी अपभ्रंश भाषा का और बोलचाल की देशी भाषा का।" —हिन्दी-साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल, संशोधित और परिवर्द्धित सं०, १९९७ वि०), पृ० ५।

कि मुसलमानी शासन-काल के आक्रमणों के अतिरिक्त सन् १८५७ ई० के सैनिक-विद्रोह में भी अनेक गाँव और संग्रहालय नष्ट हो गये। जान पड़ता है कि इसी कारण दक्षिण-बिहार के प्राचीन साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का पता नहीं चलता।

चौदहवीं शती में जिन मिथिला-निवासी साहित्यकारों की रचनाएँ मिली हैं, उनकी भाषा मैथिली है। मैथिली को भी मैं अवधी, व्रजभाषा, राजस्थानी आदि की तरह हिन्दी का ही अंग मानता हूँ। वास्तव में हिन्दी-प्रधान प्रान्तों की क्षेत्रीय भाषाएँ हिन्दी के ही अवयव के समान हैं। संस्कृत-संतति होने के कारण हिन्दी भारतीय भाषाओं के साथ सांस्कृतिक संबंध और अपनापन रखती है। जैसे हिन्दी-जगत् में यह बात सर्वमान्य है कि व्रजभाषा और अवधी की रचनाओं से हिन्दी-साहित्य धन-कुबेर और निधि-निधान हुआ है, वैसे ही बिहार के सम्बन्ध में भी यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि यहाँ भी मैथिली से हिन्दी की समृद्धि-वृद्धि हुई है! इसीलिए पूर्वकाल से ही हिन्दी-साहित्य-संसार के विद्वानों ने मिथिला के साहित्यकारों को भी हिन्दी का साहित्यकार माना है। यों तो कवितागत भाषा का अध्ययन-मनन करने से प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि मैथिली-रचनाओं में तत्सम और तद्भव शब्दों के ही रूप सुरक्षित हैं, केवल क्रियाओं और कारकों में ही मैथिली-क्षेत्र के प्रयोग दीख पड़ते हैं।

इस काल की रचनाएँ अधिकतर शृंगार-रस-सम्बन्धिनी और भक्तिपरक हैं। भक्तिपरक रचनाओं में भगवान् कृष्ण और शिव के प्रति पूज्य भाव प्रदर्शित हैं। प्रकृति-वर्णन-संबंधी एकमात्र कविता तत्सम-प्रधान मैथिली की है। यों, अवहट्ठ (अपभ्रंश) में कुछ नीति-सम्बन्धी रचनाएँ भी प्राप्य हैं। काव्यत्व की दृष्टि से महाकवि विद्यापति, उमापति और दामोदर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कवित्व-कला के अतिरिक्त इनमें भाषा की सरसता और स्वच्छता भी पर्याप्त है।

यह शती कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है—

१. इसमें अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी की परम्परा समाप्त होकर आधुनिक हिन्दी की परम्परा का आरम्भ होता नजर आता है।

२. इसमें उमापति जैसे नाटककार[१], ज्योतिरीश्वर जैसे गद्यकार[२] और विद्यापति के समान महाकवि का आविर्भाव हुआ है। उमापति के नाटक की देखादेखी बहुत-से नाटक[३] आगे लिखे गये। ज्योतिरीश्वर भी हिन्दी के प्रथम गद्यकार माने जाते हैं, और विद्यापति भी महाकवि चन्दबरदाई के बाद, प्रमुखता की दृष्टि से, सर्वप्रथम हिन्दी-कवि माने गये हैं। इस प्रकार, इस युग में बिहार की साहित्य-सेवा बड़े महत्त्व की जान पड़ती है।

३. इसमें एक छन्दोग्रंथ के रचयिता दामोदरमिश्र भी हुए हैं, जिन्होंने 'वाणी-भूषण' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ किस भाषा में है, यह कहना कठिन है।

---

१. उमापति का नाटक 'पारिजातहरण' संस्कृत और प्राकृत में है। केवल उसके गीत मैथिली में हैं।

२. चौदहवीं शती में महाकवि विद्यापति की गद्य-रचना भी मिलती है। उनकी 'कीर्त्तिलता' तथा 'कीर्त्तिपताका' नामक प्रसिद्ध पुस्तकों में पुरानी हिन्दी के गद्य के उदाहरण पाये जाते हैं।

३. महाकवि विद्यापति की भी दो नाटिकाएँ—'गोरक्षविजय' और 'मणिमंजरी' उमापति की परम्परा में ही आती हैं।

यदि दक्षिण-बिहार के तात्कालिक साहित्यकारों की रचनाएँ प्राप्त होतीं, तो यह विश्वास दृढ़ हो जाता कि उत्तर-बिहार में साहित्य-रचना की जो प्रवृत्ति थी, वह न्यूनाधिक मात्रा में दक्षिण-बिहार में भी रही होगी।

पन्द्रहवीं शती—पन्द्रहवीं शती में सत्रह साहित्यकारों का पता चला है। वे सभी मिथिला-निवासी ही हैं। १४वीं और १५वीं शती के साहित्यकारों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि मिथिला जैसे महामहोपाध्यायों और महापंडितों की खान है, वैसे ही कवियों की भी। जगज्जननी जानकी की जन्मभूमि और मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की विनोद-भूमि होने के कारण मिथिला यदि चिरकाल से विद्याधिष्ठात्री वागीश्वरी की भी विलास भूमि रही, तो यह विस्मय या विवाद का विषय नहीं। जिसप्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी की क्षेत्रीय भाषाओं में व्रजभाषा, अवधी और राजस्थानी की रचनाओं से हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ा है, उसी प्रकार बिहार में मैथिली की रचनाओं ने भी उसका मान बढ़ाया है।

इसी शती के सभी कवियों की भाषा मैथिली है, किन्तु उनकी रचनाओं में मैथिली क्रियाओं और कारकों के अतिरिक्त तत्सम और तद्भव शब्दों का भी बाहुल्य है। उदाहरण के लिए 'चन्द्रकला' की भाषा तुलसी की 'विनय-पत्रिका' के संस्कृत-बहुल पदों का स्मरण कराती है। भाषा की सफाई और भाव की मिठास के विचार से माधवी, कंसनारायण, गजसिंह, लक्ष्मीनाथ, गोविन्द ठाकुर, मधुसूदन, दशावधान और हरपति के नाम क्रमशः उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं। इस शती के कवियों में एकमात्र कृष्णदास ही ऐसे मिलते हैं, जिन्होंने अवधी-भाषा में रचना की है।

इस शती की रचनाएँ भी शृंगार-रसात्मक और भक्ति-प्रधान ही हैं। भक्ति-संबंधिनी कविताओं में भगवान् कृष्ण और शिव के प्रति अनुराग प्रदर्शित है।

आलोच्य शती का महत्त्व विशेषतः निम्नांकित बातों के कारण प्रकट होता है—

१. इसमें दो कवयित्रियाँ—चन्द्रकला और माधवी—अपनी प्रतिभा-प्रभा से साहित्य-क्षेत्र को आलोकित कर रही हैं।

२. इसमें दो धर्मपंथ-प्रवर्त्तक साहित्यकार भी मिलते हैं—कृष्णदास और विष्णुपुरी। कृष्णदास ने कबीर-पंथ में 'कबीर-वचन वंशीय' नामक एक नई शाखा चलाई थी। इसी प्रकार, विष्णुपुरी की गणना बंगाली वैष्णवधर्म के प्रवर्त्तकों में हाती है।

३. इसमें दो टीकाकार—कृष्णदास और गोविन्द ठाकुर—भी हुए। यह कहना संभव नहीं कि इनकी टीकाएँ हिन्दी में ही हैं।

४. इसमें अनेक साहित्यकारों के एक आश्रयदाता—कंसनारायण—भी हुए। साहित्यिकों के संरक्षक के रूप में, महाराज शिवसिंह के बाद इनका ही स्थान माना जाता है।

इस शती की उपलब्ध रचनाओं से भी उत्तर-बिहार की ही साहित्य-साधना के दर्शन होते हैं। किन्तु, मिथिला की तरह मगह में भी विद्वानों और साहित्यकारों की परम्परा प्राचीन काल से ही रही है। इसलिए संभव है कि भावी शोध में दक्षिण-बिहार के

साहित्यकारों की उत्कृष्ट रचनाएँ भी प्राप्त हों। फिर भी, मिथिला के साहित्यकारों ने इस शती में भी अपनी सुन्दर रचनाओं से बिहार के गौरव को अक्षुण्ण रखा है।

सोलहवीं शती—इस शती में कुल उन्नीस कवि हैं, जो उत्तर-बिहार के ही हैं। एकमात्र 'सविता' ही भोजपुरी के प्रथम कवि के रूप में मिले हैं। कहा जाता है कि इन्होंने खड़ी-बोली में भी कविता की थी; पर इनकी रचनाओं के उदाहरण मिले ही नहीं। अन्य अठारह कवियों में केवल दो कवि—'सोन' और 'हेम'—व्रजभाषा के हैं, जिनमें से 'सोन' ने अवधी-भाषा में भी कविता की थी। शेष सोलह कवि मैथिली के हैं। इनमें 'गोविन्ददास' की भाषा सूर-तुलसी की परम्परा में परिगणित होने योग्य प्रतीत होती है। गोविन्ददास के अतिरिक्त कुछ कवियों की रचनाओं में मैथिली के पुट के साथ-साथ तत्सम और तद्भव शब्द भी हैं।

भाषा की प्रांजलता और भाव-सौष्ठव की दृष्टि से इस शती के उल्लेखनीय कवियों का क्रम इस प्रकार समझ पड़ता है—गोविन्ददास, महेश ठाकुर, सोन, हेम भूपतिसिंह, भीषम, रतिपति मिश्र पुरन्दर, रामनाथ, दामोदर और गदाधर।

इनकी रचनाएँ अधिकतर शृंगार-रसविषयक और भक्ति-भावनामूलक हैं। भक्ति-भावनामूलक रचनाओं में भगवान् कृष्ण और शिव के अतिरिक्त भगवती के प्रति भी श्रद्धा समर्पित की गई है। केवल व्रजभाषा की रचनाओं में, एक में आश्रयदाता 'नरेन्द्र' का, प्रताप-वर्णन है और दूसरी में युद्ध-वर्णन। प्रकृति-वर्णन-सम्बन्धी एकमात्र कविता अवधी की है।

युग-महत्त्व की दृष्टि से यहाँ निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१. इस काल में बिहार के प्रसिद्ध राज्यों में बनैली-राज्य के संस्थापक राजा दुलारचन्द्र चौधरी के पूर्वज गदाधर हुए।

२. इसमें भारत-प्रसिद्ध दरभंगा-राज्य के संस्थापक महामहोपाध्याय महेश ठाकुर और उनके अग्रज दामोदर ठाकुर का आविर्भाव भी हुआ।

३. इस युग को गोविन्ददास के समान यशस्वी महाकवि ने अलंकृत किया। मैथिली-साहित्य में तो इनका स्थान महाकवि विद्यापति के बाद ही आता है। पर उत्कृष्ट हिन्दी-कवियों के समकक्ष भी ये बड़े आदर का आसन पाने योग्य हैं।

४ इसी युग में रतिपति मिश्र ने 'गीतगोविन्द' का मैथिली में पद्यबद्ध अनुवाद किया। इसके पहले अनुवाद का कोई ग्रंथ नहीं मिला है।

५. इस युग में रूपारुण ने अयोध्या में स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजी के श्रीमुख से श्रीरामचरितमानस का सर्वप्रथम श्रवण किया था।

६. इसी युग में ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी, शनिवार (सन् १६६६ ई० : वि० १७२३) की अर्धरात्रि में, सिक्खधर्म के दसवें गुरु श्रीगोविन्दसिंह[1] का जन्म पटना नगर में हुआ;

---

१. इनके परिचय तथा रचनाओं के उदाहरण के लिए देखिए, 'कविता-कौमुदी' (रामनरेश त्रिपाठी, प्रथम-भाग, सप्तम सं०, १९४९ ई०), पृ० ३८०-३८२।

पर इनकी साहित्य-सेवा का क्षेत्र बिहार से बाहर रहा। ये संस्कृत और फारसी के विद्वान् तथा हिन्दी के कवि थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं- जाय, सुनीतिप्रकाश, ज्ञानप्रबोध, प्रेम, सुमार्ग, बुद्धिसागर, विचित्रनाटक और ग्रंथसाहब के कुछ अंश। इस पुस्तक में इनका परिचय न देने का कारण यह है कि ये बचपन में ही अपने पूर्वजों के देश पंजाब चले गये और वहीं इनका सारा जीवन व्यतीत हुआ। बिहार केवल इनके जन्म-ग्रहण मात्र से गौरवान्वित है। पटनासिटी में इनका जन्मस्थान 'हरमंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है और वहाँ अब एक अत्यन्त विशाल, दर्शनीय एवं भव्य मंदिर का निर्माण हो गया है।

पिछली दो शताब्दियों की तरह इस शताब्दी में भी दक्षिण-बिहार का कोई साहित्यकार नहीं मिला। इसके लिए पर्याप्त शोध की अपेक्षा है। इसी शती से व्रजभाषा और अवधी की रचना-परम्परा का श्रीगणेश होता है।

सत्रहवीं शती—इस शती में सत्ताईस साहित्यकार हैं। इनमें १५ उत्तर-बिहार और १२ दक्षिण-बिहार के हैं। इसमें जिन कवियों की रचनाओं के उदाहरण मिले हैं, उनमें आठ की भाषा मैथिली है। इनमें से दो—कृष्ण और लोचन कवि—ने व्रजभाषा में भी रचना की है। इन दो के अतिरिक्त व्रजभाषा में रचना करनेवाले चार कवि और हैं तथा अवधी के भी नौ हैं। व्रजभाषा के कवियों में एक 'धरणीदास' ने भोजपुरी में भी रचना की है। भाषा और भाव की सुन्दरता की दृष्टि से इस शती के उल्लेखनीय कवियों का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है—दलेलसिंह, धरणीदास, प्रबलशाह, मंगनीराम, महिनाथ ठाकुर, लोचन, दरिया साहब, हलधरदास और धरणीधर।

पूर्व शतियों की अपेक्षा प्रस्तुत शती की रचनाओं में, शृंगाररस की रचनाएँ कम हैं। देवस्तुति-सम्बन्धी भक्तिपक्ष की और आध्यात्मिक विचारों की तथा उपदेशात्मक कविताएँ अधिक हैं। भक्तिपक्ष की रचनाओं में भगवान् कृष्ण, शिव आर दुर्गा के अतिरिक्त भगवान् के निर्गुण स्वरूप के प्रति भी भक्ति-भाव निवेदित है। वीर-रस के एकमात्र कवि 'कृष्ण' हैं। इनकी भाषा में महाकवि भूषण की शैली की झलक मिलती है।

युगव्यापी साहित्यिक प्रवृत्ति के विचार से इस शती का महत्त्व निम्नांकित बातों से प्रकट होता है—

१. इसमें निर्गुणी—संतमत के तीन—दरिया साहब, धरणीदास और रामचरणदास—कवि हैं, जिनमें अंतिम प्रेममार्गी हैं। इसके पहले किसी शती में कोई निर्गुणी या प्रेममार्गी कवि नहीं मिला है। वस्तुतः, दरियासाहब और धरणीदास से ही बिहार में निर्गुणवादी संत-सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन होता है। दोनों ने अपने-अपने नाम से नये पंथों का प्रवर्त्तन किया। दरियासाहब को तो बिहार में सर्वश्रेष्ठ संत कवि होने का श्रेय प्राप्त है।

२. इसमें तीन नाटककार—गोविन्द, देवानन्द और रामदास[1] और एक गद्यकार—भगवान् मिश्र तथा एक अनुवादक—पदुमनदास भी हैं।

---

१. इनके नाटक भी उमापति की परम्परा में ही परिगणित हैं।—सं०

३. इसमें संगीत-संबंधी दो पुस्तकों का पता चला है—भूधरमिश्र की 'रागमंजरी' और लोचन की 'रागतरंगिणी'। लोचन तो मध्यकालीन भारतीय संगीत-कला के मर्मज्ञ माने गये हैं, और उनकी प्रकाशित पुस्तक 'रागतरंगिणी' से बहुत-से प्राचीन कवियों के परिचय मिले हैं।

४. इसमें साहित्यकारों के दो आश्रयदाता भी हुए—दलेलसिंह और महीनाथ ठाकुर। इनमें प्रथम के आश्रय में अनेक प्रसिद्ध कवि थे।

उपर्युक्त विवेचन से प्रत्यक्ष होता है कि इस शती में दक्षिण-बिहार के साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं से बिहार की साहित्यिक प्रगति का परिचय दिया। इनकी रचनाओं में भाषा-भाव की परिपक्वता देखकर ऐसा अनुमान करना असंगत न होगा कि इनके पहले की शतियों में भी दक्षिण-बिहार में साहित्य-रचना की सहज प्रवृत्ति रही होगी।

अठारहवीं शती—इस शती में साहित्यकारों की संख्या ९९ है, जिनमें ६८ उत्तर-बिहार के और ३१ दक्षिण-बिहार के निवासी हैं। इनमें सबसे अधिक कवियों की भाषा मैथिली है, किन्तु व्रजभाषा आर अवधी में रचना करनेवाले कवि भी कम नहीं हैं। कुछ कवियों ने खड़ीबोली और भोजपुरी में भी कविता की है। अधिकांश कवियों की भाषा में मिश्रण की न्यूनाधिक मात्रा पाई जाती है। बिहार की शेष भाषाओं की कोई रचना इस शती में भी नहीं मिली है। सम्भव है कि मगही, अंगिका आदि भाषाओं के क्षेत्र में भावी शोध से कुछ ऐसी रचनाएँ प्राप्त हों, जिनसे उन क्षेत्रों की साहित्यिक प्रगति का परिचय मिल सके।

भाषा की स्वच्छता, भाव की मधुरता और छंद-प्रवाह में सुगमता की दृष्टि से इस शती के व्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली, मैथिली और भोजपुरी के कवियों में जो उल्लेख्य हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं।

व्रजभाषा—चन्द्रमौलिमिश्र, दयानिधि, दिनेश द्विवेदी, राधाकृष्ण, रामनारायण प्रसाद, रामप्रसाद, वंशराज शर्मा 'वंशमणि' और हरिचरणदास।

अवधी—किफायत, कुंजनदास, जगन्नाथ, जयरामदास, तुलाराम मिश्र, बेनीराम, राम-रहस्य साहब और रामेश्वरदास।

खड़ीबोली—ईशकवि, गुमानी, चन्द्रकवि, जॉन क्रिश्चियन, ब्रह्मदेव नारायण 'ब्रह्म', वृन्दावन और साहब रामदास।

मैथिली—अनिरुद्ध, कुलपति, केशव, चक्रपाणि, जयानन्द, नंदीपति, निधि उपाध्याय, भंजन, भवेश, मनबोध, रमापति उपाध्याय, रामेश्वर, लाल, वेणीदत्त, व्रजनाथ और श्रीकान्त।

भोजपुरी—अजबदास, छत्तरबाबा, टेकमनराम, देवाराम, बालखंडी और भिनकराम।

प्रस्तुत शती में भी आदिरस और भक्ति-पक्ष की हा रचनाएँ अधिक प्राप्त हुई हैं। निर्गुणोपासना-पद्धति की रचनाएँ भी मिली हैं, जिनमें कुछ प्रेममार्गी कवियों की रचनाएँ भी हैं। इसमें भी एक ही कविता 'देवीदास' की प्राकृतिक-दृश्य-चित्रण संबंधी मिली है।

युग की महत्ता पर विचार करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में आती हैं :—

१. इस शती में निम्नांकित आठ टीकाकार बड़े महत्त्व के हुए हैं—

(क) इसवी खाँ—'बिहारी-सतसई' की टीका—(रसचन्द्रिका)।
(ख) उदयप्रकाश सिंह—'विनय-पत्रिका' की टीका।
(ग) गणेश प्रसाद—'भगवद्गीता' की टीका।
(घ) गोपालशरण सिंह—'रामचरित-मानस' की टीका (मानस-मुक्तावली)।
(च) जीवाराम चौबे—'भक्तमाल' की टीका (रसिक-प्रकाश-भक्तमाल)।
(छ) वंशराज शर्मा 'वंशमणि'—'बिहारी-सतसई' की टीका (रसचंद्रिका)।
(ज) श्रीपति—'रघुवंश' की टीका।
(झ) हरिचरनदास—'रसिकप्रिया', 'कवि-प्रिया', 'बिहारी सतसई' तथा 'भाषा-भूषण' की टीकाएँ।

२. निम्नांकित सात नाटककार, चार अनुवादक, छह साहित्य-शास्त्रज्ञ एवं रीति-ग्रंथों के रचयिता और दो संगीत-विषयक पुस्तक के प्रणेता इस शती की 'शोभा' बढ़ा रहे हैं—

(क) गोकुलानन्द—मानचरित।
(ख) जयानन्द—रुक्मांगद।
(ग) नन्दीपति—श्रीकृष्णकलिमाला।
(घ) रमापति उपाध्याय—रुक्मिणी-परिणय।[1]
(च) लाल झा—गौरीस्वयंवर नाटक।
(छ) शंकरदत्त—हरिवंश-हंस-नाटक।
(ज) श्रीकान्त-कृष्ण-जन्म।

(क) मनबोध—'हरिवंश' का अनुवाद।
(ख) रामजीभट्ट—'अद्भुत-रामायण' का अनुवाद।
(ग) शम्भुनाथ त्रिवेदी—'बहुलाकथा' का अनुवाद।
(घ) सदलमिश्र—'नासिकेतोपाख्यान, तथा 'अध्यात्मरामायण' का अनुवाद।[2]

(क) गोपाल—काव्यमंजरी और काव्यप्रदीप।
(ख) चन्द्रमौलिमिश्र—उदवन्त-प्रकाश।
(ग) जयरामदास—छन्दविचार।
(घ) दिनेश द्विवेदी—रस-रहस्य आर नखशिख।
(च) रामप्रसाद—आनन्दरसकलपतरु।
(छ) वृन्दावन—छन्दशतक।

(क) आनन्दकिशोरसिंह—रागसरोज।
(ख) राधाकृष्ण—राग-रत्नाकर।

---

१. यह नाटक 'रुक्मिणी-हरण' और 'रुक्मिणी-स्वयंवर' आदि नामों से भी प्रसिद्ध है।
२. लक्ष्मीनाथ परमहंस ने भी कुछ ग्रंथों का अनुवाद किया है। किन्तु, निश्चित मूल ग्रंथों के नाम अनुपलब्ध होने के कारण यहाँ उनका नामोल्लेख नहीं हुआ है।

३. इस शती में साहित्य और कला के आराधकों के आश्रयदाता के रूप में तीन साहित्यिक नरेश उल्लेख्य हैं—

(क) आनन्दकिशोर सिंह—(बेतिया, चम्पारन)।
(ख) नवलकिशोर सिंह—(„ „)।
(ग) प्रतापसिंह—(मिथिला)।

इस युग में उपर्युक्त नरेशों के अतिरिक्त कई आर भी ऐसे आश्रयदाता नरेन्द्र रहे होंगे, जिनका दरबार साहित्यकारों और कलाकारों का केन्द्र होगा। दक्षिण-बिहार में डुमराँव, टेकारी, सूर्यपुरा, बनैली, रामगढ़ आदि और उत्तर-बिहार में हथुआ, माझा, रामनगर आदि के राजा अपने दरबार में कवियों और कलावंतों को आश्रय देने के कारण पुराने समय से ही प्रसिद्ध हैं। इन राज्यों के केन्द्र-स्थानों में अनुसंधान अपेक्षित है। बहुत ंभव है कि अनुसंधायकों की तत्परता से कई नये कवियों और कलाकारों का परिचय मिल जाय। यद्यपि इस काल में कवियों और गुणियों को सार्वजनिक रूप में प्रोत्साहन देनेवाली संस्थाओं का पता नहीं चलता, तथापि साहित्यानुरागी और कलाप्रेमी नरेशों की उदारता एवं गुणग्राहकता से बहुत-से साहित्य-स्रष्टाओं और कलाकारों को सरस्वती-समाराधन की सुविधा मिलती थी।

४. इस शती के महत्त्व को आकर्षक बनानेवालों में कबीर-पंथ के आचार्य रामरहस्य साहब, बिहार के सिद्धपुरुष लक्ष्मीनाथ परमहंस, शीर्षस्थानीय भक्त-कवि साहब रामदास, सन्तमत के सरभंग-सम्प्रदाय के आदि-कवि छत्तरबाबा, सरभंग-सम्प्रदाय में अपने नाम से एक नया पंथ चलानेवाले भिनकदास और हिन्दी की आधुनिक गद्य-शैली के निर्माताओं में अन्यतम पं० सदलमिश्र विशेष गण्यमान्य हैं। इनमें दक्षिण-बिहार के शास्त्र-पारंगत विद्वान् रामरहस्य साहब अपने समय के विद्वान्-संतों में मूर्द्धन्य समझे गये। इन्होंने अपनी विद्वत्ता के प्रताप से कबीर-पंथ को बहुत अधिक लोकप्रिय बना दिया। इसी प्रकार उत्तर-बिहार के महात्मा लक्ष्मीनाथ गोसाईं, मिथिला के भक्त-शिरोमणि कवि साहब रामदास के बाद, सबसे बड़े भक्त-कवि हुए। मिथिला की कवि-गणना में महाकवि विद्यापति, गोविन्ददास और उमापति के बाद इनका ही स्थान माना जाता है।

प्रस्तुत काल की उपस्थित रचनाओं से ऐसा विदित होता है कि इस शती में भक्ति-काल और रीति-काल की प्रवृत्तियाँ ही प्रमुख रहीं। गद्य-रचना की प्रवृत्ति में भी प्रखरता आई। हिन्दी-संसार में प्रचलित काव्य-शैलियों का भी पोषण हुआ। भावी शोध में इस शती के साहित्यिक उत्कर्ष पर विशेष प्रकाश पड़ने की संभावना है।

उपसंहार

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने युगव्यापी साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए जो काल-विभाजन किया है, वह इस प्रकार है—

आदिकाल (वीरगाथाकाल, संवत् १०५०-१३७५, अर्थात् सन् ९९३-१३१८ ई०)।
पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल, „ १३७५-१७००, अर्थात् „ १३१८-१६४३ ई०)।
उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल, „ १७००-१९००, अर्थात् „ १६४३-१८४३ ई०)।
आधुनिककाल (गद्यकाल, „ १९००-१९८४, अर्थात् „ १८४३-१९२७ ई०)।

इस पुस्तक में ईसवी सन् की शतियों का ही व्यवहार किया गया है। उनके अनुसार उपर्युक्त काल-विभाजन की संगति इस प्रकार बैठती है—

आदिकाल—सिद्धयुग (सातवीं से तेरहवीं शती तक)

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)
उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) } —सिद्धोत्तर-युग (चौदहवीं से अठारहवीं शती तक)

यहाँ यह काल-विभाजन का संकेत केवल जिज्ञासु पाठकों की सुविधा के लिए किया गया है। प्रत्येक शती की साहित्यिक प्रगति का विवरण देते समय उस काल की प्रवृत्तियों पर भी विचार किया जा चुका है। वास्तव में युगव्यापी प्रवृत्तियों पर विचार करने के लिए प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रचनाओं का अध्ययन आवश्यक है। किन्तु, इस पुस्तक में जिन साहित्यकारों के परिचय हैं, उनमें से अधिकांश की रचनाओं के उदाहरण अत्यल्प ही प्राप्त हुए हैं। फिर भी, प्रत्येक शती पर जो मत प्रकाश किया गया है, उसमें किसी प्रकार का आग्रह नहीं है।

भाषा-भाव के अनुसार कवियों का जो क्रम निर्धारण हुआ है, उसमें भी मतभेद की संभावना है। संभव है कि भविष्य के शोधों से इस पुस्तक की अनेक स्थापनाएँ परिवर्त्तित हो जायँ।

बिहार में साहित्यिक इतिहास-संबंधी शोध-कार्य पूर्व काल में कभी नहीं हुआ। इसलिए इस पुस्तक में जो बारह सौ वर्षों का इतिहास दिया गया है, वह वास्तव में अन्धकार-युग का इतिहास है। साहित्यकारों के नाम और काम के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए कितना अधिक अंधेरे में टटोलना पड़ा है, यह बतलाना कठिन है। इ[illegible] विवश होकर साहित्यकारों के जन्म-मरण-काल की अनिश्चितता के कारण सबके ना[illegible]क्षरानुक्रम से ही रखे गये हैं। रचनाकाल का भी ठीक पता न लगने के कारण प्रत्येक साहित्यकार उसी शती का माना गया है, जिसमें उसका जन्म हुआ है।

यहाँ इस इतिहास के संबंध में एक लोकोक्ति का स्मरण होता है- [illegible] टाँकी खाकर पत्थर महादेव होता है।' सम्प्रति, यह इतिहास भी एक अनगढ़ शिला[illegible]खण्ड के समान है। जब अनुसंधान-परायण और साहित्य-कला-मर्मज्ञ विद्वानों की कि[illegible]द्र-रूपी टाँकी इस पर पड़ेगी, तभी सुडौल होकर इसका रूप निखरेगा।

शकाब्द १८८१, विक्रमाब्द २०१६ शिवपूजनसहाय

हिन्दी-साहित्य और बिहार

सातवीं शती[1]

ईशानचन्द्र

आपकी उपाधि 'चिन्तातुराङ्क' थी।[2]

सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल (६०६-६४८ ई०) में वर्त्तमान संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट का निवास-स्थान बिहार-राज्य के शाहाबाद जिले में, सोन नदी के पश्चिमी किनारे पर, 'प्रीतिकूट' नामक ग्राम बतलाया जाता है। बाण के परम मित्र[3] होने के कारण आपका निवास-स्थान प्रीतिकूट के ही आसपास गया या शाहाबाद जिले में रहा होगा।

ईशान के पुत्र का नाम 'हरिश्चन्द्र भिषक्' था, ऐसा 'चतुर्भाणी' ग्रंथ में संगृहीत 'पादताडितकम्' नामक भाण से ज्ञात होता है।[4]

स्वयंभूदेव ने अपने 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठनेमिचरिउ' में अपने पूर्ववर्त्ती कवियों के साथ आपका भी स्मरण किया है।[5] अपभ्रंश के ही दूसरे कवि महाकवि पुष्पदन्त के 'अपभ्रंश-महापुराण' में भी आपका उल्लेख मिलता है।[6] इन उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आप निश्चय ही अपभ्रंश अथवा तत्कालीन लोकभाषा के महान् कवि थे। श्रीलोचनप्रसाद पाण्डेय का कहना है कि "इनकी रचना रायपुर तथा नागपुर के संग्रहालयों में सुरक्षित शिलालेखों में है। ईशान बड़े शानदार कवि थे, ऐसा उनकी पद्य-रचना व्यक्त करती है। वे महाशिव बालार्जुन की माता, मौखरी-नरेश श्रीसूर्यवर्मा की पुत्री तथा 'प्राक्-परमेश्वर' विशेषण से विभूषित कोसलाधिप श्रीहर्षगुप्त महाराज की महारानी को अपनी प्रतिभा से अमर कर गये हैं।"[7] श्रीनाथूराम प्रेमी ने आपको सप्तशती की २७५ और ८४ गाथाओं का रचयिता कहा है।[8]

आपकी रचना का हमें कोई उदाहरण नहीं मिला।

❋

---

१. इस पुस्तक में 'शती' शब्द का प्रयोग सर्वत्र सन्-ईसवी को ध्यान में रखकर किया गया है।

२. इति वः प्रशस्तिकारः कविः स चिन्तातुराङ्क ईशानः।
यत्पालनार्थमर्थयति पार्थिवस्तां स्थितिं शृणुत॥
—शुक्ल-अभिनन्दन-ग्रन्थ (कलकत्ता, सन् १९५५ ई०, इतिहास-पुरातत्त्व-खण्ड)—पृ० २००।

३. 'भाषाकविरीशानः परंमित्रम्'—हर्षचरितम् (बाणभट्ट), प्रथम उच्छ्‌वास।

४. हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रथम सं०, १९५३ ई०)—पृ० ६।

५. जैन-साहित्य और इतिहास (नाथूराम प्रेमी, द्वितीय सं०, १९५६ ई०)—पृ० २०९-१०।

६. वही, पृ० २४६ की पाद-टिप्पणी।

७. 'शुक्ल-अभिनन्दन-ग्रंथ (वही, इतिहास-पुरातत्त्व-खण्ड)—पृ० १९९-२००।

८. जैन-साहित्य और इतिहास (वही)—पृ० २४६ की पाद-टिप्पणी।

आठवीं शती

कर्णरीपा

आपके नाम 'कनेरिन', 'आर्यदेव' [१], 'वैरागीनाथ' आदि भी मिलते हैं। कुछ लेखक 'आर्यदेव' और 'कर्णरीपा' को अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं। आपका निवास-स्थान नालंदा बतलाया गया है।[२] आपके गुरु सिद्ध सरहपाद के शिष्य नागार्जुन थे। सिद्धों की परम्परा में आपका स्थान १८वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके २६ ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित केवल एक 'निर्विकल्प-प्रकरण' नामक ग्रंथ ही है।

उदाहरण

जहि मण इन्दिअ (प) वण हो ण ठा।
ण जाणमि अपा कँहि गइ पइठा ॥ध्रु०॥
अकट करुणा डमरुलि बाजअ
आजदेव णिरासे राजइ ॥ध्रु०॥
चान्दरे चान्दकान्ति जिम पतिभासअ
चिअ विकरणे तहि टलि पइसइ ॥ध्रु०॥
छाडिअ भय घिण लोआचार
चाहन्ते चाहन्ते सुण विआर
आजदेवें सअल विहरिउ
भय घिण दुर णिवारिउ[३]॥ध्रु०॥

❀

---

१. एक 'आर्यदेव' शून्यवाद के आचार्य नागार्जुन के शिष्य भी हो गये हैं, किन्तु वे इनसे भिन्न व्यक्ति थे।

२. गंगा-पुरातत्त्वांक, (जनवरी, १९३३ ई०)—पृ० २२२।

३. वही, पृ० २२२।

कंकालीपा

आपके नाम 'कोंकलिपा', 'कंकलिपा', 'कंकरिपा' भी मिलते हैं।[१] आप मगध-निवासी शूद्र थे।[२] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान सातवाँ है। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में लिखे आपके एक ही ग्रंथ 'सहजानन्तस्वभाव' का पता चलता[३] है।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

भुसुकपा

भुसुकपा के अतिरिक्त 'भुसु', 'भुसुकुपा' और 'शान्तिदेव' भी आपके नाम मिलते हैं। अपनी रचना में आपने एक स्थान पर अपनेको 'राउत' (राजकुमार) भी कहा है। "शान्तिदेव किसी राजा के पुत्र थे। राजा का नाम मंजुवर्मा था।........शिक्षा की समाप्ति पर गुरु ने मध्यदेश जाने का आदेश किया। वहाँ वह अचलसेन नाम रखकर 'राउत' हो गया।"[४] कहते हैं, एक बार मगध-नरेश देवपाल ने आपको अस्तव्यस्त वेष-भूषा को देखकर आपको 'भुसुक' कह दिया था, तभी से आप 'भुसुकपा' कहलाने लगे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि भूमि में बिल बनाकर शयन करने के कारण आपका यह नाम पड़ा।[५] आचार्य नरेन्द्रदेव ने भी आपका नाम भुसुक लिखा है।[६] आचार्य द्विवेदीजी का अनुमान है कि नाथ-सिद्धों के 'विलेशयनाथ' बिल

---

१. पुरातत्त्व-निबन्धावली (श्री राहुल, १९३७ ई०)—पृ० १४८ की पाद-टिप्पणी।
२. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही)—पृ० २२१।
३. वही—पृ० २६०।
४. बौद्ध-धर्म-दर्शन (आचार्य नरेन्द्र देव, प्रथम सं०, १९५६ ई०)—पृ० १७३।
५. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के सप्तम वार्षिकोत्सव के सभापति-पद से किया गया डॉ० ह० प्र० द्विवेदी का भाषण (मार्च १९५८ ई०)—पृ० १
६. बौद्ध-धर्म-दर्शन (वही)—पृ० १७३।

में शयन करनेवाले प्रभु) आपका ही दूसरा नाम है।[१] कुछ विद्वानों ने तिब्बती अनुश्रुतियों के आधार पर आपका जन्म-स्थान सौराष्ट्र या महाराष्ट्र बतलाया है। आचार्य नरेन्द्रदेवजी के अनुसार तारानाथ का कहना है कि आप सुराष्ट्र के राजा के लड़के थे।[२] म० म० हरप्रसाद शास्त्री आपके पदों की भाषा-परीक्षा करके इस निष्कर्ष पर आये हैं कि आपका जन्म बंगाल में किसी स्थल पर हुआ होगा।[३] किन्तु महापण्डित राहुल सांकृत्यायन इन सारे अनुमानों में विश्वास नहीं करते और कहते हैं कि वस्तुतः आपका जन्म नालन्दा के पास के प्रदेश में एक क्षत्रिय-राजवंश में हुआ था।[४] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी इसी मत का समर्थन करते हैं।[५] म० म० हरप्रसाद शास्त्री स्वयं भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि भुसुक ने बहुत दिनों तक मगध और नालंदा में रहकर मंजुवज्र के निकट उपदेश पाया था।[६] आचार्य नरेन्द्रदेवजी के लेखानुसार "जब उनका भुसुक का) युवराज-पद पर अभिषेक हुआ, तब उनकी माता ने बताया कि राज्य केवल पाप में हेतु है। माँ ने कहा—तुम वहाँ जाओ, जहाँ बुद्ध और बोधिसत्त्व मिलें। मंजुवज्र के पास जाने से तुम को निःश्रेयस् की प्राप्ति होगी। ·········१२ वर्षों तक वह गुरु के समीप रहा और मंजु श्रीज्ञान का प्रीति-लाभ किया।"[७]

चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ४१वाँ है। 'पुरातत्त्व-निबन्धावली' में श्रीराहुल ने भुसुकपा के समकालीन राजा देवपाल का समय ८०९-४९ ई० माना है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके लिखे दस ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें छह शान्तिदेव के नाम से और शेष भुसुकपा के नाम से हैं। अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में आपकी एक ही रचना 'सहजगीति' मिलती है।

उदाहरण

काहेरि घेणि मेल्लि अच्छहू कीस।
बेढिल हाक पडअ चउदीस॥
अप्पणा मांसे हरिणा बइरी।
खणह ण छाडअ भूसुकु अहेरो।[८]
णिशि अंधारी मूसा करअ अचारा।
अमिअ-भखअ मूसा करअ अहारा॥
मार रे जोइया! मूसा-पवना!
जेण तूटइ अवणा-गवणा॥[९]

❀

---

१. आचार्य द्विवेदीजी का उक्त भाषण—पृ० २।
२. बौद्धधर्म-दर्शन (वही)—पृ० १७३।
३. बौद्धगान ओ दोहा (म० म० हर प्रसाद शास्त्री, द्वितीय सं० माद्र १३५८ पदकर्त्तादेर परिचय—पृ० २३।
४. गंगापुरातत्वांक (वही)—पृ० २४९ और पुरातत्त्व-निबन्धावली, (वही)—पृ० १७५।
५. आचार्य द्विवेदीजी का उक्त भाषण—पृ० २।
६. बौद्धगान ओ दोहा (वही), (पदकर्त्तादेर परिचय)—पृ० २३।
७. बौद्धधर्म-दर्शन, (वही)—पृ० १७३।
८. हिन्दी-काव्यधारा (राहुल, प्रथम सं०, १९४५ ई०)—पृ० १३२।
९. वही—पृ० १३२।

लीलापा

आपका नाम 'लीलावज्र' भी मिलता है। आपका निवास-स्थान मगध बतलाया गया है।[१] आप सिद्ध सरहपा के शिष्य और जाति के कायस्थ थे। श्रीविनयतोष भट्टाचार्य ने लीलावज्र नाम के एक सिद्ध की चर्चा करते हुए उन्हें भगवती लक्ष्मीङ्कर और विलासवज्र का शिष्य तथा दारिकपा और प्रसिद्ध कवि करुणाचल को लीलावज्र का शिष्य माना है।[२]

श्रीभट्टाचार्य द्वारा उल्लिखित लीलावज्र यदि आपही हैं, तो आपकी प्रसिद्धि 'वज्राचार्य' के रूप में थी और आपने बहुतेरे ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें लगभग नौ के अनुवाद तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में सुरक्षित हैं। इनमें अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में लिखा एकमात्र 'विकलपरिहार-गीति' ग्रंथ है।

चौरासी सिद्धों में आपका स्थान दूसरा है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❋

लुइपा

लुइपा के अतिरिक्त लूहिपा' और 'मत्स्यान्त्राद'[३] आदि भी आपके नाम मिलते हैं। तिब्बती 'स्तन् ग्युर्' में आपको 'भंगलदेशवासी'[४] कहा गया है। म० म० हरप्रसाद शास्त्री[५] तथा डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य[६] ने उसी उल्लेख के आधार पर आपको बंगाली (राढ़देश-निवासी) माना है। किन्तु महापण्डित राहुल सांकृत्यायन आपको मगधदेशवासी ही मानना उचित समझते हैं।[७] उन्होंने लिखा है कि आप महाराज धर्मपाल (७७०-८०६ ई०) के दरबार में लेखक के रूप में नियुक्त थे। आप जाति के कायस्थ थे।

आपके गुरु शबरपा बतलाये गये हैं। कहते हैं, एक बार जब धर्मपाल अपने राज्य वारेन्द्र प्रदेश में थे, तब सिद्ध शबरपाद भी विचरण करते हुए उधर जा निकले और एक दिन राजा के यहाँ भिक्षा के लिए पहुँचे। आपको वहीं शबरपा के दर्शन हुए और

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही)—पृ० २२१।
२. Budhist Esoterism (Benoytosh Bhattacharya, 1932), P. 78
३. नाथ-सम्प्रदाय (आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९५० ई०)—पृ० ४१।
४. डॉ० धर्मवीर भारती ने अपने 'सिद्ध-साहित्य' में लिखा है—'तंजूर में इन्हें भांगाली कहा गया है—पृ० ५१।
५. बौद्धगान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर परिचय)—पृ० २१,।
६. Budhist Esoterism (वही)—P. 69
७. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही)—पृ० २२१।

उनसे प्रभावित होकर आप उनके शिष्य हो गये। आपके शिष्यों में प्रमुख दारिकपा और डोंगीपा कहे गये हैं, जो क्रमशः उत्कल (उड़ीसा) के राजा और मंत्री थे। सिद्धों की परम्परा में आपका स्थान सर्वप्रथम माना जाता है आर आप 'आदिसिद्धाचार्य' कहे जाते हैं। आप ही 'योगिनी-सहचर्या' के प्रवर्त्तक भी कहे गये हैं।

'स्तन् ग्युर्' में आपके सात ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें पाँच अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में हैं। इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं - (१) अभिसमय-विभङ्ग, (२) तत्त्वस्वभाव दोहाकोष, (३) बुद्धोदय, (४) भगवदभिसमय और (५) लुइपाद-गीतिका।

उदाहरण

काआ तरुवर पञ्च बिडाल।
चञ्चल चीए पइट्ठो काल॥
दिढ करिअ महासुह परिमाण।
लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण॥
सअल समाहिहि काह करिअइ।
सुख-दुखे तेँ निचित मरिअइ॥
छडिअउ छंद् बांध करण कपटेर आस।
सुणण-पक्ख भिडि लेहु रे पास॥
भणइ लुई आम्हे झाणे दिट्ठा।
धमण-चमण वेणि उपरि बइंठा॥[१]

❋

शबरपा

आपके नाम 'शबरापा', 'महाशबर', 'शबरेश्वर' या 'शबरीश्वर, 'नव-सरह' आदि भी मिलते हैं। कहते हैं, शबरों (कोल-भीलों) की तरह वेश-भूषा होने के कारण आप 'शबरपा' कहे जाने लगे। 'लोकी' (पद्मावती) और 'गुना' (ज्ञानवती) नामकी आपकी दो बहनें थीं, जिनसे आपने महामुद्रा की साधना की थी। आप जाति के क्षत्रिय थे।

'सिद्ध-साहित्य' के लेखक आपका जन्म-स्थान बंगाल मानते हैं।[२] किन्तु महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आपका जन्म-स्थान एक स्थान पर विक्रमशिला[३] और दूसरे स्थान पर मगध[४] बतलाया है। वस्तुतः आप इन्हीं में से किसी स्थान के निवासी होंगे। सिद्ध कण्हपा ने आपका स्मरण बड़े सम्मान और श्रद्धा के साथ किया है।

---

१. हिन्दी-काव्य-धारा (वही)—पृ० १३६—१३८।
२. सिद्ध-साहित्य (धर्मवीर भारती, प्रथम सं०, १९५५ ई०)—पृ० ५०।
३. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही)—पृ० १४८।
४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही)—पृ० २२१।

सरहपा

आपका नाम 'राहुलभद्र' था। सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् आप 'सरहपा' कहलाये। सरहपा के अतिरिक्त 'सरोजवज्र', 'सरोरुहवज्र', 'पद्म' तथा 'पद्मवज्र' भी आपके नाम मिलते हैं।[१] कहते हैं, आपने शर (वाण) बनानेवाली किसी कन्या को 'महामुद्रा' बनाकर सिद्धि-लाभ किया और स्वयं भी शर बनाने का काम करने लगे थे। इसी कारण आप 'सरह' कहलाये। एक दूसरी तिब्बती अनुश्रुति के आधार पर आपका जन्म-स्थान उड़ीसा बतलाया गया है।[२] महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने आपका निवास-स्थान नालंदा और प्राच्य देश की 'राज्ञी नगरी'[३] दोनों बतलाया है। आपका जन्म एक ब्राह्मण और डाकिनी के योग से हुआ था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'दोहा-कोश'[४] में ही 'राज्ञी-नगरी' के 'भंगल'[५] या 'पुंड्रवर्द्धन'[६] प्रदेश में होने का अनुमान किया है। उक्त स्थान बिहार-राज्य के ही अन्तर्गत है।

यद्यपि बाल्य काल से ही आप वेदादि के ज्ञाता हो गये थे, तथापि अनेक वर्षों तक आप नालन्दा-विहार के छात्र रहे। यहाँ शान्तिरक्षित के शिष्य हरिभद्र भी आपके अध्यापक थे। अध्ययन की अवधि समाप्त होने पर वहीं प्रधान पुरोहित के रूप में आपकी नियुक्ति हो गई। नालन्दा से अवकाश प्राप्त कर आपने अपना प्रमुख केन्द्र 'श्रीपर्वत' (जि० गुण्टूर, आन्ध्र) नामक एक स्थान पर बनाया।

आपने बौद्धधर्म की प्राचीन परम्पराओं एवं रूढिगत धारणाओं के विरुद्ध विद्रोह किया और सहज-जीवन यापन करने का उपदेश दिया। श्री राहुलजी ने आपके सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—"आप (सरह) उन चौरासी सिद्धों के आदिपुरुष हैं, जिन्होंने लोक-भाषा की अपनी अद्भुत कविताओं तथा विचित्र रहन सहन और योग-क्रियाओं से वज्रयान को एक सार्वजनीन धर्म बना दिया। इसके पूर्व वह, महायान की भाँति,

---

१. बौद्ध गान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर परिचय)—पृ० २६।
२. सिद्ध-साहित्य (वही)—पृ० ४।
३. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही)—पृ० १४८।
४. दोहाकोश (श्री राहुल, प्रथम सं०, १९५७ ई०)—पृ० १०।
५. (वही) भागलपुर।
६. (क) पूर्वोत्तर बिहार और पश्चिमोत्तर बंगाल।
   (ख) देखिए 'साहित्य', वर्ष १, अंक १, मार्च, १९५० ई० में श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित का 'पुण्ड्रवर्द्धन और उसकी राजधानी' शीर्षक लेख—पृ० ४३ से ५३ तक।

संस्कृत का आश्रय ले, गुप्त रीति से फैल रहा था।'[1] इस प्रकार, आप सहजयान-सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन कर चौरासी सिद्धों में आदि-सिद्ध कहलाये। यद्यपि सिद्धों की प्रचलित तालिका के अनुसार आपका स्थान छठा है।

आपने प्राच्यदेश के राजा चन्दनपाल और उनकी पाँच हजार प्रजा को अपने मत में दीक्षित किया था। यों आपके शिष्यों में शबरपाद तथा नागार्जुन[2] प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में आपके ३२ ग्रन्थ संगृहीत हैं। इनमें निम्नलिखित १६ ग्रन्थ अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में हैं, जिनके अनुवाद भोट-भाषा में मिलते हैं—(१) दोहाकोश-गीति, (२) दोहाकोश नाम-चर्यागीति, (३) दोहाकोशोपदेश-गीति, (४) क. ख. दोहानाम, (५) क. ख. दोहा-टिप्पण, (६) कायकोशामृतवज्र गीति, (७) वाक्कोशरुचिरस्वरवज्र-गीति, (८) चित्तकोशअजवज्र-गीति, (९) कायवाक्‌चित्तामनसिकार, (१०) दोहाकोश महामुद्रोपदेश, (११) द्वादशोपदेशगाथा, (१२) स्वाधिष्ठानक्रम, (१३) तत्त्वोपदेशशिखर-दोहागीतिका, (१४) भावनादृष्टिचर्याफल-दोहागीति, (१५) वसन्ततिलकदोहाकोश-गीतिका, (१६) महामुद्रोपदेशवज्रगुह्य-गीति। उक्त रचनाओं में सबसे अधिक प्रसिद्धि 'दोहाकोश' को ही मिली है।

उदाहरण

जहि मण पवण ण संचरइ, रवि-ससि णाहिं पवेस।
तहिं बढ चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस॥[3]

एक्क करु मा वेणिण करु, मा करु विणिण विसेस।
एक्कें रंगे रंजिया, तिहुअण सअलासेस॥[4]

एथु से सरसइ सोवणाह, एथु से गङ्गासाअरु।
वाराणसि पआग एथु, से चान्द - दिवाअरु॥[5]

खेत्त पिट्ठ उअपिट्ठ, एथु मइ भमिअ सिमट्ठउ।
देहासरिस तित्थ, मइ सुणाउ ण दिट्ठउ॥[6]

❀

1. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १४७।
2. महायान के प्रवर्त्तक और सम्राट् सातवाहन के 'सुहृद्' नागार्जुन से ये भिन्न हैं। वे ईसवी-सन् के आरम्भ में हुए थे।
3. दोहाकोश (वही), पृ० १२।
4. वही, पृ० १२।
5. वही, पृ० २२।
6. वही, पृ० २२।

नवीं शती

कम्बलपा

आप 'कम्बलाम्बरपा', 'कामरीपा', 'कमरिपा' आदि नामों से भी प्रसिद्ध हैं। म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने आपको बँगला-कवि माना है।[1] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आपका निवासस्थान 'ओडिविश'[2] (उड़ीसा) बतलाया है। किन्तु डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार आप वस्तुतः मगध के ब्राह्मण थे और दीर्घकाल तक उड्डियान में रहे थे।[3]

आपके गुरु नालंदा के 'वज्रघण्टापा' थे, जो अनेक वर्षों तक उड़ीसा में रहकर अपने धर्म का प्रचार करते रहे। कहते हैं, अपने गुरु के साथ आप भी बहुत दिनों तक वहीं रहे, जहाँ उड़ीसा के राजा इन्द्रभूति ने आपका शिष्यत्व ग्रहण किया। इन्द्रभूति के अतिरिक्त आपके शिष्यों में 'जालंधरपा' की भी गणना की जाती है। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ३०वाँ है।

आप बौद्ध-दर्शन के एक अच्छे पण्डित थे। भोट-भाषा में 'प्रज्ञापारमिता'-दर्शन पर आपके चार ग्रंथ प्राप्य हैं। तंत्र पर आपके ग्यारह ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें निम्नलिखित तीन प्राचीन हिन्दी में हैं—(१) असम्बन्ध दृष्टि, (२) असम्बन्ध सर्ग-दृष्टि, (३) कम्बल-गीतिका।

उदाहरण

सोने भरिती करुणा नावी, रूपा थोइ महिके ठावी॥ ध्रु०॥
वाहतु कामलि गअण उवेंसें, गेली जाम बहु-उइ काइसें॥ ध्रु०॥
खुन्टि उपाड़ी मेलिलि काच्छि, वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि॥ ध्रु०॥
माङ्गत चाल्हिले चउदिस चाहअ, केडुआल नहिं कें कि बाहब के पारअ॥ ध्रु०॥
वाम दाहिणा चापा मिलि मागा, बाटत मिलिल महासुह सङ्गा॥ ध्रु०॥[4]

❀

---

१. बौद्धगान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर परिचय), पृ० २७।
२. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५२।
३. नाथ-सम्प्रदाय (वही), पृ० १४१।
४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५२।

घण्टापा

आपका नाम 'वज्रघण्टापा' भी मिलता है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आपको 'वारेन्द्र' (उत्तर-बंगाल) का निवासी क्षत्रिय बतलाया है। किन्तु 'चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्ति' नामक ग्रंथ (तन्जूर ८६/१) में आपको नालन्दा-निवासी कहा गया है।[१]

आपके गुरु का नाम 'दारिकपा' था।[२] आपके शिष्यों में प्रमुख थे—कूर्मपाद और कम्बलपाद।[३] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ५२वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' (४८/७८) में अपभ्रंश या पुरानी-हिन्दी में आपका एक ग्रंथ 'आलिकालिमंत्र-ज्ञान' संगृहीत है।[४] आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

चर्पटीपा

आपका नाम 'पचरीपा' भी मिलता है। श्रीराहुलजीने आपको बँहगी बेचनेवाला 'कहार' लिखा है। उन्होंने ही आपका निवास स्थान चम्पा (भागलपुर) बतलाया है और आपको मीनापा का गुरु कहा है।[५] मीनापा पालवंशी नरेश देवपाल के समय में थे, अतः आपका समय भी उसी के आस-पास होगा।

'नाथ-परम्परा' में आप गोरखनाथ के शिष्य माने जाते हैं।[६]

चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ५९वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' (४८।८५) में अपभ्रंश या पुरानी-हिन्दी में लिखा आपका एक ग्रंथ 'चतुर्भूतभवाभिवासनक्रम'[७] संगृहीत है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।
२. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १८०।
३. वही, पृ० १८२-१८३।
४. वही, पृ० २००।
५. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।
६. नाथ-सम्प्रदाय (वही), पृ० १४४।
७. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० २००।

चौरंगीपा[1]

आचार्य डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि पूरन भगत जब योगी हुए, तब चौरंगीनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए ।[2]

आपके पिता राजा शालिवाहन, गुरु 'मत्स्येन्द्रनाथ' तथा गुरुभाई 'गोरखनाथ' थे। आपके शिष्यों में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान १०वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में हिन्दी में आपका एक ग्रंथ 'वायुतत्त्वभावनोपदेश' मिलता है। अपभ्रंश या पुरानी-हिन्दी में आपकी चार छोटी-छोटी 'सबदियाँ' मिलती हैं। पिंडी के जैनग्रन्थ-भण्डार में 'प्राणसंकली' नाम का भी एक हिन्दी ग्रंथ है[3], जिसके रचयिता आपही कहे जाते हैं। इसी ग्रन्थ के अनुसार आपके पिता का नाम राजा 'शालिवाहन' था और आप की विमाता ने आप के हाथ-पैर कटवा डाले थे, जिससे आपका नाम 'चौरंगीपा' हुआ। 'राजेन्द्र-अभिनन्दन ग्रंथ' में डॉ० बड़थ्वाल ने और 'नाथ-सम्प्रदाय' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शालिवाहन को स्यालकोट (पंजाब) का राजा माना है। किन्तु श्रीराहुलजी ने आपको मगध-निवासी माना है[4]। यह भी बहुत प्रसिद्ध किंवदन्ती है कि बिहार के शाहाबाद जिले के चनपुर गाँव (भभुआ-प्रमण्डल) में राजा शालिवाहन के महल का अत्यन्त प्राचीन खँड़हर है, जिसके सिंहद्वार पर राजा के पुरोहित 'हरसू' ब्रह्म का बहुत ही प्रसिद्ध मंदिर है। आपकी रचना की भाषा में भोजपुरी का पुट देखने से यह अनुमान होता है कि आप इसी शालिवाहन के पुत्र थे। आज भी लँगड़े-लूले को भोजपुरी में 'चौरंगी' ही कहते हैं।

उदाहरण

मारिबा तौ मन मीर मारिबा,
लूटिबा पवन भँडार ।
साधिबा तौ पंच तत साधिबा,
सेइबा तौ निरंजन निराकार ।।

---

१. देखिए राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रंथ (२००६ वि०) में डॉ० बड़थ्वाल का 'चौरंगीनाथ' शीर्षक लेख, पृ० ८६ से ६४।

२. नाथ-सम्प्रदाय (वही), १६१।

३. वही, पृ० १३७।

४. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १४८।

माछी लौ भल माछी लौ,
सींचै सहज कियारी।
उनमनि कली एक पहूपन पाई
ले आवागवन निवारी ॥[1]

❀

डोम्भिपा

आप 'डोम्भिपा' और 'डोम्बीहेरुक'[2] के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। आपका निवास-स्थान मगध बतलाया गया है[3]। आप मगध के राजा भी कहे गये हैं।[4] श्रीराहुलजी आपको मगध के एक क्षत्रिय-वंश का बतलाते हैं। जब आपने सिद्ध 'विरूपा' से दीक्षित होकर महामुद्रा की साधना प्रारम्भ की, तब राजकाज से विरक्त देखकर आपकी प्रजा तथा आपके मंत्रियों ने आपको राज्य से निर्वासित कर दिया। कुछ ही दिनों के पश्चात् जब मगध-देश में अकाल पड़ा, तब उस समय अपनी सिंहिनी-रूपिणी शक्ति के साथ, जिसका वाहन याक था, आप अपने राज्य में पधारे। आपको पहचानकर इस बार सभी ने आपका स्वागत किया। कितनों ने तो आपका शिष्यत्व तक स्वीकार कर लिया।[5]

आप विरूपा के तो शिष्य थे ही, आपने लूहिपा[6] और वीणापा से भी दीक्षा ली थी। डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य ने आपको

१. (क) योग-प्रवाह (पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, प्रथम सं०, २००३ वि०), पृ० ६६।
(ख) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने चौरंगीपा की रचना का एक दूसरा उदाहरण 'प्राणसंकली' से उद्धृत किया है। किन्तु 'प्राणसंकली' चौरंगीपा की रचना है, इसमें लोगों का एक मत नहीं है। डॉ० द्विवेदी द्वारा उद्धृत उदाहरण इस प्रकार है—

"सत्य वदंत चौरंगीनाथ आदि अन्तरि सुनो ब्रितांत सालवाहन घरे हमारा जनम उतपति सतिमा झुट बोलीला ॥१॥ ह अम्हारा भइला सासत पाप कलपना, नहीं हमारे मने हाथ पाव कटाय रलायला निरंजन बने सोष सन्ताप मने परमेव सनमुख देषीला श्री मछंद्रनाथ गुरुदेव नमसकार करीला नमाइला माथा ॥२॥ आसीरबाद पाइला अम्हे मने भइला हरषित होठ कंठ तालुका रे सुकाईला धर्मना रूप मछंद्रनाथ स्वामी ॥३॥ मन जाने पुन्य पाप मुष बचन न आवै मुषे बोलव्या कैसा हाथ रे दीला फल मुषे पीलीला ऐसा गुसाईं बोलीला ॥४॥ जीवन उपदेस आविला फल आदम्हे विसाला दोष बुध्या त्रिषा बिसारला ॥५॥ नहीं माने सोक धर धरम सुमिरला अम्हे भइला सचेत के तम्ह कहारे बोले पुछीला ॥६॥"

—नाथ-सम्प्रदाय (वही), पृ० १३८।

२. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५२।
३. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही) पृ० २२१।
४. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५२।
५. वही, पृ० ५२।
६. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२१।

सहयोगिनी चिंता का शिष्य बतलाया है।[1] आपके शिष्यों में प्रमुख थे कण्हपा। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान चौथा है। आपने 'कौल-पद्धति' का भी विशेष प्रचार किया था।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में डोम्भिपाद के नाम से २१ ग्रंथ संगृहीत हैं, जिनमें केवल तीन ही अपभ्रंश या प्राचीन हिन्दी के हैं। राहुलजी के मतानुसार दो डोम्भिपा हुए हैं, अतः ये ग्रन्थ किसके हैं, कहना कठिन है। इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—(१) अक्षरद्विकोपदेश, (२) डोम्बिगीतिका और (३) नाड़ी-बिन्दुद्वारे योगचर्या। इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'सहज-सिद्धि' नामक आपका एक और ग्रंथ ओरिएण्टल इंस्टिच्यूट (पूना) में सुरक्षित है।[2]

उदाहरण

गंगा-जउँना-माँझे बहइ नाई। तँह बुडिली मातंगी पोइआ लीलैं पार करेइ ॥
बाहतु डोम्बी बाहलो डोम्बी, बाट भइल उछारा। सदगुरु पाअ-प(सा)ए जाइब पुनुजिनउरा ॥
पाँच केडुआल पडन्ते माँगे पीठत काच्छी बाँधी। गअण-दुखोले सिञ्चहू पाणी न पइसइ साँधी ॥
चंद-सूज्ज दुइ चक्का सिठि-संहार-पुलिन्दा। वाम दहिन दुइ भाग न चेवइ वाहतु छंदा ॥
कवडी न लेइ वोडी न लेइ सुच्छडे पार करई। जो एथे चढिया बाहब न जा(न)इ कूलें कूल बुड़ाई ॥[3]

धामपा

आपके नाम 'धर्मपा' और 'गुण्डरीपाद'[4] भी मिलते हैं। किन्तु सिद्ध-साहित्य (पृ० ५६) के अनुसार डॉ० बागची गुण्डुरीपाद नाम को भ्रमात्मक बतलाते हैं। श्रीराहुलजी भी पुरातत्त्व-निबंधावली (पृ० १८६) में गुण्डुरीपाद को एक अलग सिद्ध मानते हैं, जिनका सिद्धों में ५५वाँ स्थान है।

आपका निवास-स्थान विक्रमशिला (भागलपुर) बतलाया गया है। आप ब्राह्मण-कुल के थे और पाल-नरेश विग्रहपाल और नारायणपाल के समकालीन कहे गये हैं।[5] श्रीराहुलजी के अनुसार आपके गुरु कण्हपा तथा जालंधरपा थे। डॉ० सुकुमार सेन ने 'चाटिलपा' को भी आपका गुरु माना है, पर कोई प्रमाण नहीं दिया है।[6] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ३६वाँ है।

---

१. Buddhist Esoterism (वही), P. 79.
२. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५२।
३. हिन्दी-काव्यधारा (वही), पृ० १४०।
४. बौद्ध गान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर परिचय), पृ० २५।
५. हिन्दी-काव्यधारा (वही), पृ० १६६।
६. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५६।

अपभ्रंश या पुरानी-हिन्दी में लिखित आपके तीन ग्रंथ मिले हैं[1] –(१) कालिभावना-मार्ग, (२) सुगतदृष्टि-गीतिका और (३) हुँकार-चित्त-बिन्दु-भावनाक्रम।

उदाहरण

कम-कुलिश मौंभे भमई लेली।
समता-जोएं जलिब चणडाली॥
डाह डोम्बिघरे लागेलि आग्गी।
ससहर लइ सिंचहु पाणी॥
णउ खरे जाला धूम ण दीसइ।
मेरु-सिहर लइ गअण पईसइ॥
दाढ़इ हरि-हर-ब्रह्मण नाडा (भट्टा)।
दाढ़इ नव-गुण-शासन पाडा (पट्टा)॥
भणइ धाम फुड लेहुरे जाणी।
पञ्चनाले उठे (ऊध) गेल पाणी॥[2]

❀

महीपा

आपके नाम 'महिलपा' और 'महीधरपा' भी हैं। 'महित्ता', 'माहीन्दा' तथा 'महिआ' नाम सिद्ध-साहित्य (पृ० ५६) के अनुसार, लिपि-भेद के कारण, हैं। आपका जन्म-स्थान मगध बतलाया गया है।[3] आप जाति के शूद्र थे।

आप गृहस्थावस्था से ही सत्संग की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त थे। पीछे आपने सिद्ध 'कण्हपा' का शिष्यत्व ग्रहण कर सिद्धि प्राप्त की। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ३७वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में आपके बहुत-से ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें एक 'वायुतत्त्व-दोहागीतिका' ही अपभ्रंश या पुरानी-हिन्दी में है।

उदाहरण

तीनिए पाटें लागेलि अणहअ सन घण गाजइ।
ता सुनि मार भयंकर विसअ-मंडल सअल भाजइ॥
मातेल चीअ गअन्दा धावइ।
निरंतर गअणंत तुसे (रवि-ससि) घोलइ॥

---

१. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० २०१।
२. हिन्दी-काव्यधारा (वही), पृ० १६६-१६८।
३. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १५१।

पाप-पुण्ण बेणिण तोडिअ सिंकल मोडिअ खम्भा-ठाणा ।
गअण-टाकली लागेलि रे चित्त पइट्ठ णिबाणा ।।
महरस पाने मातेल रे तिहुअन सअल उपखो ।
पंच विसअ-नायक रे विपख कोबि न देखो ।।
खर रवि-किरण संतापे रे गअणाङ्गण जइ पइठ ।
भणन्ति महिआ मइ एथु बुडन्ते किम्पि न दिठ ।।[१]

मेकोपा

आप 'भंगल' (भागलपुर , के निवासी वणिक् बतलाये गये हैं ।[२] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ४३वाँ है ।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में लिखित एक ग्रंथ 'चित्त-चैतन्य-शमनोपाय' मिलता है । आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला ।

विरूपा

आपके नाम 'विरूपाक्ष', 'कालविरूप' और 'धर्मपाल' भी मिलते हैं ।[३] आपका निवास-स्थान 'त्रिउर' बतलाया गया है । महापण्डित राहुल सांकृत्यायन 'त्रिउर' को देवपाल का देश 'मगध' मानते हैं ।[४] कुछ लेखकों ने 'त्रिपुर' को 'त्रिपुरा' माना है ।[५]

यह ठीक नहीं ज्ञात होता ।

आपने गुरु सिद्ध नागबोधि से 'श्रीपर्वत' पर दीक्षा ली थी ।[६] आपके शिष्यों में प्रमुख थे सिद्ध डोम्बिपा और कण्हपा । आपकी शिक्षा नालन्दा, बिहार में हुई थी । शिक्षा के उपरान्त आप ने श्रीपर्वत, देवीकोट, उड़ीसा, चीन आदि कई स्थानों का पर्यटन किया । आपके जैसे पर्यटक कम ही 'सिद्ध' हुए हैं । चौरासी सिद्धों में आपका स्थान तीसरा है । आप 'यमारितन्त्र' के भी प्रवर्त्तक कहे जाते हैं ।

---

१. हिन्दी-काव्यधारा (वही), पृ० १६४ ।
२. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३ ।
३. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५८ ।
४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२१ ।
५. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५८ ।
६. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १७८ ।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके १८ ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें आठ ही अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी के हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) अमृतसिद्धि, (२) दोहाकोश, (३) दोहाकोश-गीति-कर्मचण्डालिका, (४) विरूप-गीतिका, (५) विरूप-वज्रगातिका, (६) विरूप-पदचतुरशीति, (७) मार्गफलान्वितावबादक और (८) सुनीष्प्रपञ्चतत्त्वोपदेश।

उदाहरण

एक से शुण्डिनि दुइ घरे सान्धअ,
चीअण वाकलअ वारुणी बान्धअ ॥ ध्रु० ॥
सहजे थिर करी वारुणी सान्धे,
जें अजरामर होइ दिट कान्ध ॥ ध्रु० ॥
दशमि दुआरत चिह्न देखइआ,
आइल गराहक अपने बहिआ ॥ ध्रु० ॥
चउशठि घडिये देट पसारा,
पइठेल गराहक नाहि निसारा ॥ ध्रु० ॥
एक स डुली सरुइ नाल,
भणन्ति विरुआ थिर करि चाल ॥ ध्रु० ॥[1]

❀

वीणापा

कहते हैं, आप वीणा बजा-बजाकर अपने पद गाया करते थे, इसी कारण आपका नाम 'वीणापा' पड़ा। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आपका जन्म स्थान 'गौड़देश' (बिहार) बतलाया है।[2] पालवंशी नरेशों की एक उपाधि 'गौड़ेश्वर' भी थी। उनके आदि पूर्वज बंगाल-निवासी थे। वे लोग बंगाल और बिहार दोनों के शासक थे। धर्मपाल के समय से वे बिहार में ही रह गये थे और उनकी राजधानी पटना जिले के बिहारशरीफ में थी। इसीलिए श्रीराहुलजी ने गौड़ को बिहार माना है।[3]

म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने आपको 'विरूपा' का वंशधर बतलाया है।[4] आप भद्रपा के शिष्य कहे गये हैं।[5] 'सिद्ध-साहित्य' (पृ० ५८) के अनुसार आप अश्वपा के शिष्य थे। मिश्रबंधुओं के अनुसार आप कण्हपा के भी शिष्य थे।[6] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ११वाँ है।

१. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १७९।
२. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२१।
३. "पालवंशीय राजा गौड़ेश्वर कहे जाते थे। उनकी राजधानी पटना जिले के बिहारशरीफ में थी। 'नालन्दा' के पास होने के कारण, भोटिया-ग्रंथों में, अक्सर उन्हें नालन्दा का राजा भी कहा गया है।"—पुरातत्व-निबन्धावली (वही), पृ० १७७।
४. बौद्धगान ओ दोहा, (वही, पदकर्त्तादेर परिचय), पृ० ३१।
५. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२१।
६. मिश्रबन्धु-विनोद (मिश्रबन्धु, प्रथम भाग, चतुर्थ सं०, १९९४ वि०), पृ० ८१।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके तीन ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें 'वज्रडाकिनी-निष्पन्न-क्रम' ही अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का ज्ञात होता है।

उदाहरण

सुज लाउ ससि लागेलि तान्तो, अणहा दाण्डी वाकि कि अत अवधूती ॥ ध्रु० ॥
बाजइ अलो सहि हरु अवीणा, सुन तान्ति धनि विलसइ रुणा ॥ ध्रु० ॥
आलिकालि वेणि सरि सुणेआ, गअवर समरस सान्धि गुणिआ ॥ ध्रु० ॥
जबे करह करहक लेपि चिउ, बातिश तान्ति धनि सएल विआपिउ ॥ ध्रु० ॥
नाचन्ति वाजिल गान्ति देवी, बुद्धनाटक विसमा होई ॥ ध्रु० ॥[१]

❀

दसवीं शती

कंकणपा

आपके नाम 'कोंकणपा' और 'कोकदत्त' भी मिलते हैं।[२] आप विष्णुनगर (मगध) के एक राजवंश में उत्पन्न हुए थे।[३] महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने आपको कम्बल या कम्बलाम्बरपा का वंशधर कहा है।[४] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान २९वाँ है। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में लिखित आपका एकमात्र ग्रंथ 'चर्यादोहाकोशगीतिका' संगृहीत है।

उदाहरण

सुने सुन मिलिआ जबें, सअल धाम उइआ तबें ॥ ध्रु० ॥
आच्छु हुँ चउखण संबोही, माझ निरोह अणुअर बोही ॥ ध्रु० ॥
विंदु-णाद णहिं ए पइठा, अण चाहन्ते आण विणठा ॥ ध्रु० ॥
जथाँ आइलेंसि तथा जान, मासं, थामी सअल विहाण ॥ ध्रु० ॥
भणई कङ्कण कलएल सादें, सर्वं विच्छुरिल तथतानादें[५] ॥ ध्रु० ॥

❀

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५० ।
२. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५७ ।
३. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५७ और सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५७ ।
४. बौद्धगान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर-परिचय), पृ० २७ ।
५. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५७ ।

चमरिपा

आपका निवास-स्थान विष्णुनगर[1] (मगध) बतलाया गया है। आप जाति के चर्मकार और प्रमुख सिद्ध जालंधर के शिष्य माने जाते हैं।[2] आप पालवंशी राजा महिपाल (९८८—१०३८ ई०) के समय में हुए। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान १४वाँ है। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित आपका एकमात्र ग्रंथ 'प्रज्ञोपायविनिश्चय-समुदय' संगृहीत है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

छत्रपा

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आपका निवास-स्थान एक जगह संधोनगर[3] और दूसरी जगह भिगुनगर[4] बतलाया है। अनुमान के आधार पर आपका भिगुनगर-निवासी ही होना ठीक ज्ञात होता है। यह स्थान मगध में कहीं था। आप जाति के शूद्र थे। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान तेईसवाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपका अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित एकमात्र ग्रंथ 'शून्यता-करुणा-दृष्टि' मिलता है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

---

१. यह 'विष्णुनगर', हमारे अनुमान के अनुसार, 'गया' जिले का वर्त्तमान 'विष्णुपुर' गाँव है, जहाँ से बहुत-सी प्राचीन बुद्ध मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई हैं और जो पटना-संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

२. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२१।

३. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १५०।

४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२२।

तिलोपा

सिद्धि प्राप्त करने के पूर्व आपका नाम 'भिक्षु प्रज्ञाभद्र' था। कहते हैं, सिद्धाचार में आप तिल कूटा करते थे, इसी कारण आपका नाम 'तिलोपा' पड़ा। आप पालवंशी राजा राज्यपाल द्वितीय और विग्रहपाल द्वितीय (९०८-४०-६०-९८० ई०) के समय में हुए थे। डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य ने आपका जन्म-स्थान 'चिटागाँव' बतलाया है।[१] वस्तुतः आपका जन्म मगध के किसी 'भिगुनगर' नामक स्थान में एक ब्राह्मण-कुल में हुआ था।[२] आप कहीं लुईपा के वंशज और कहीं 'राजवंशोत्पन्न' बतलाये गये हैं।[३] आपके गुरु विजयपा या अन्तरपा और आपके शिष्य नारोपा (नरोपन्त) कहे गये हैं।[४] आपने एक तेलिन योगिनी से समागम कर सिद्धि लाभ की थी[५], जिस कारण कुछ दिनों तक आप संघ से निष्कासित हुए थे।[५] यवनों के प्रति विरोध की भावना भी आप में अत्यधिक थी[६], ऐसा कहा जाता है। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान २२वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके ग्यारह ग्रन्थ संगृहीत हैं, जिनमें निम्नलिखित चार अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में हैं—(१) अन्तर्बाह्य-विषय-निवृत्ति-भावना-क्रम, (२) करुणाभावनाधिष्ठान, (३) दोहाकोश और (४) महामुद्रोपदेश।

उदाहरण

तित्थ तपोवण म करहु सेवा।
देह सुचीहि ण सन्ति पावा॥ १९ ॥
बम्हा-विहृणु-महेसुर देवा।
बोहिसत्व मा करहू सेवा॥ २० ॥
देव म पूजहु तित्थ ण जावा।
देवपुजाही मोक्ख ण पावा॥ २१ ॥
बुद्ध अराहहु अविकल चित्तेँ।
भव णिब्बाणे म करहु थित्तेँ॥ २२ ॥[७]

❀

१. Buddhist Esoterism (वही), P. 82.
२. हिन्दी-काव्यधारा (वही), पृ० १७२।
३. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ६०।
४. पुरातत्त्व-निबन्धावली, (वही), पृ० १९४।
५. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ६०।
६. वही, पृ० ६०।
७. हिन्दी-काव्यधारा (वही), पृ० १७४।

थगनपा

आपका नाम 'स्थगण' भी मिलता है[१]। आपका निवास-स्थान 'पूर्व-भारत' बतलाया गया है[२]। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने आपको 'कर्णरीपा' (आर्यदेव) का वंशज माना है[३]। कर्णरीपा नालंदा के निवासी थे। अतः, आप भी मगध-निवासी ही थे। आप जाति के शूद्र थे। आपके शिष्यों में 'शान्तिपा' ही प्रमुख बतलाये जाते हैं। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान १९वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में लिखित आपका एकमात्र ग्रन्थ 'दोहाकोश-तत्त्वगीतिका' ही संगृहीत है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

दीपंकर श्रीज्ञान

आपके नाम 'चन्द्रगर्भ', 'गुह्यज्ञानवज्र' और 'अतिशा' भी मिलते हैं।

म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने आपको 'बंगाल-निवासी' बतलाया है[४]। तिब्बती-ग्रन्थों में आपका जन्म-स्थान भारत की पूर्व दिशा का सहोर (भागलपुर) लिखा है[५]। वस्तुतः, आपका जन्म विक्रम-मनिपुर[६] (भागलपुर) के कांचनध्वज राजप्रासाद में, सन् ९८० ई० में, हुआ था[७]। सहोर या सबोर मांडलिक-राज्य के राजा कल्याणश्री आपके पिता और प्रभावती आपकी माता थीं। आप अपने माता-पिता के मझले लड़के थे[८]। आपके माता-पिता ने आपका नाम 'चन्द्रगर्भ' रखा। तीन वर्ष की अवस्था में ही आप विक्रमशिला-विहार में पढ़ने के लिए भेजे गये। जब कुछ सयाने हुए, तब पास के एक पर्वत पर

१. बौद्धगान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर परिचय), पृ० ३२।
२. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२२।
३. बौद्धगान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर परिचय), पृ० ३२।
४. बौद्धगान ओ दोहा (वही, पदकर्त्तादेर परिचय), पृ० २२।
५. बुद्ध और उनके अनुचर (श्रीभदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रथम सं०, १९५० ई०), पृ० ६।
६. कुछ लेखक इसे 'विक्रमानीपुर' कहते और इसकी स्थिति बंगाल में मानते हैं, जो ठीक नहीं ज्ञात होता। Journal of the Asiatic Society of Bengal (Vol LX, Part I, No. 2, 1891) P. 49.
७. तिब्बत में सवा वर्ष (श्रीराहुल, १९४८ ई०), पृ० २०९।
८. आपके अग्रज का नाम 'पद्मगर्भ' और अनुज का नाम 'श्रीगर्भ' था।

महावैयाकरण 'जेतारि' से आपका साक्षात्कार हुआ, जिन्होंने आपको पाँचों आरम्भिक विज्ञानों में शिक्षित कर नालंदा में जाकर धर्म और दर्शन का अध्ययन करने की सलाह दी। उस समय आपकी अवस्था बारह की थी। उसी अवस्था में आप नालन्दा चले गये। वहाँ आपने स्थविरवाद के तीनों पिटकों, वैशेषिक दर्शन-शास्त्र, माध्यमिक तथा योगाचार-वाद और इनके साथ चारों प्रकार के तन्त्रशास्त्रों का भी ज्ञान ग्रहण किया। इसी समय आपने एक विद्वान् ब्राह्मण को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। नालन्दा में बोधिभद्र ने आपको श्रमणेर-दीक्षा दी और आपका नाम 'दीपंकर श्रीज्ञान' रखा। बौद्ध योगशास्त्र की विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए, वहाँ से आप कृष्णगिरि-विहार में राहुलगुप्त के पास चले गये। इन्होंने आपको उक्त शास्त्र में पारंगत कर आपका नाम 'गुह्यज्ञानवज्र' रखा। कृष्णगिरि-विहार से आप राजगृह चले गये और वहाँ लगभग अठारह वर्ष की अवस्था तक अवधूतिपाद (मैत्रीपाद) से शिक्षा प्राप्त करते रहे। तत्पश्चात् आप सिद्ध नारोपा से तंत्र-मंत्र की शिक्षा लेने के लिए पुनः विक्रमशिला गये और लगभग उनतीस वर्ष की अवस्था तक उन्हीं के पास रहे। तदुपरान्त, इकतीस वर्ष की अवस्था में, आपने वज्रासन-विहार (बोधगया) में जा शीलरक्षित[१] से उपसम्पदा (भिक्षु-दीक्षा) प्राप्त की। उपसम्पदा प्राप्त कर आपने बौद्धधर्म के सर्वश्रेष्ठ केन्द्र स्वर्णदीप (सुमात्रा)[२] के स्थविर-आचार्य चन्द्रकीर्त्ति[३] के पास जाने का निश्चय किया। लगभग चौदह मास तक समुद्र-मार्ग से यात्रा करते हुए आप स्वर्णदीप पहुँचे। वहाँ बौद्धधर्म के विशेषाध्ययन के लिए आचार्य चन्द्रकीर्त्ति के चरणों में बैठकर आपको बारह वर्षों तक ज्ञानार्जन करना पड़ा। उक्त विशेषाध्ययन समाप्त कर रत्नदीप आदि देशों को देखते हुए आप मगध लौट आये। मगध के बौद्धों ने इस बार आपका बड़े उल्लास के साथ स्वागत किया। मगध के राजा न्यायपाल (लगभग १०२४—४१ ई०)[४] के अनुरोध पर आपने विक्रमशिला का महापंडित होना स्वीकार किया। इसी समय डाहला के कलचुरि गांगेयदेव के लड़के कर्ण ने मगध पर चढ़ाई कर दी। आपने उसे समझाया कि जब सीमान्त पर तुर्क-आतंक उपस्थित है, तब पारस्परिक युद्ध करना उचित नहीं ! इस प्रकार, आपने दोनों राजाओं के बीच में पड़कर संधि करवा दी (१०४१ ई०)[५]। विक्रमशिला से कुछ दिनों पर, लगभग १०४२ ई० में

---

१. कुछ लेखकों के अनुसार शीलरक्षित उदन्तपुरी (वर्त्तमान बिहारशरीफ, जिला पटना) के महा-संघिकाचार्य थे और इन्होंने ही आपका नाम दीपंकर श्रीज्ञान रखा था। देखिए—Journal of the Asiatic Society of Bengal (वही), P. 50, तथा 'बुद्ध और उनके अनुचर' (वही), पृ० ६१।

२. श्रीभदन्त आनन्द कौसल्यायन स्वर्णदीप को सुमात्रा न मानकर पेगु (लोअर बर्मा) मानते हैं। देखिए 'बुद्ध' और उनके अनुचर' वही, पृ० ६१।

३. महापंडित राहुल सांकृत्यायन और श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार ने सुमात्रा के आचार्य का नाम 'चन्द्रकीर्ति' के बदले धर्मपाल लिखा है।

४. श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार ने इस राजा का नाम 'नयपाल' लिखा है। बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन (जयचन्द्र विद्यालंकार और पृथ्वीसिंह मेहता, १९४० ई०), पृ० १८१।

५. बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन (वही), पृ० १८१।

तिब्बत के (पहले ल्हलामा येसिस होड और फिर उनके भतीजे कानकूब)[1] राजा के बार-बार के अनुरोध पर, ६१ वर्ष की अवस्था में आप 'नग्-चो' के साथ अनेक कष्ट झेलते हुए तिब्बत पहुँचे[2]। तिब्बत की सीमा पर ही वहाँ के राजा ने आपका बड़ा शानदार स्वागत किया। बौद्धधर्म का सर्वश्रेष्ठ पंडित जानकर उसने आपको 'अतिशा' की उपाधि दी। तिब्बत में आप इसी नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं। वहाँ धर्म-सुधार के साथ आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की और अनुवाद-कार्य भी सम्पन्न किया। कहते हैं, 'ल्हासा' के निकट 'ने-थन्' नामक स्थान में, सन् १०५३-५४ ई० में, ७३ वर्ष की अवस्था में, आपका निर्वाण हुआ[3]।

प्रसिद्ध है कि आपने ३५ से अधिक धर्म और दर्शन पर तथा ७० से अधिक छोटे-बड़े ग्रन्थ तंत्र पर रचे थे। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचे आपके निम्नलिखित पाँच ग्रन्थ संगृहीत हैं—(१) दोहाकोशतत्त्व-गीतिका, (२) चर्यागीति, (३) धर्म-गीतिका (४) धर्मधातु-दर्शनगीति और (५) वज्रासन-वज्रगीति।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

नारोपा

आपके नाम 'नाडपा', 'नाडकपा', 'नरोपन्त' आदि भी मिलते हैं। श्रीराहुलजी ने इनका समय 'महिपाल' राजा का समय माना है। आपका जन्म मगध के एक ब्राह्मण-कुल में हुआ था[4]। आपके पिता कश्मीरी थे और किसी काम से मगध में रहने लगे थे, जहाँ आपका जन्म हुआ था। आप भिक्षु बनकर 'नालंदा' विहार में पढ़ते थे। वहीं आपकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय लोगों को मिला। पीछे आपने अपनी असाधारण मेधाशक्ति के कारण अनेक विद्याओं में पारंगत होकर प्रसिद्धि प्राप्त की। अध्ययन समाप्त कर आप 'विक्रमशिला' के पूर्वद्वार के महापण्डित हुए। तिब्बत का निमंत्रण पा आपने उस देश का भ्रमण किया था।

आप तिलोपा के शिष्य तथा शान्तिपाद और दीपंकर श्रीज्ञान के गुरु थे। तिब्बत के सर्वोत्तम

---

१. सरस्वती (नवम्बर, १९१७ ई०), पृ० २६६।

२. इस यात्रा का बड़ा ही रोचक एवं विस्तृत विवरण 'नग्-चो' ने तिब्बती-भाषा में लिखा था, जो आज भी उपलब्ध है। —बुद्ध और उनके अनुचर (वही), पृ० ६४-८१।

३. Journal of the Asiatic Society of Bengal (वही) P. 51—आज भी वहाँ के एक मठ में आपका भिक्षा-पात्र, कमण्डलु तथा खदिर-दण्ड एक राजमुद्रांकित मंजूषा में सुरक्षित है। वहाँ के बौद्ध 'अतिशा' के नाम से आज भी आपको समान भाव से पूज्य मानते हैं।

४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५७।

कवि और प्रमुख दुभाषिया 'मर्-वा' (जे-चुनूमि-लारे-पो) आपके शिष्य थे[१]। इनके अतिरिक्त प्रज्ञारक्षित, कनकश्री और मनकश्री (माणिक्य) भी आपके ही शिष्यों में गिने जाते हैं।[२] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान २०वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके २३ ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें निम्नलिखित दो ही अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी के हैं—(१) नाडपंडित-गीतिका और (२) वज्रगीति।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।[३]

शलिपा

आपका नाम 'शीलपा' और 'सियारी' भी मिलता है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आपको 'शृगालीपा' से अभिन्न माना है।[४] पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी उक्त 'शृगालीपा' को 'सियारी' से अभिन्न मानते हैं।[५] आप शूद्रकुलोत्पन्न थे और पालवंशी राजा महीपाळ (९८८-१०३८ ई०) के समय में वर्त्तमान थे। आपका जन्म-स्थान महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने एक स्थान पर मगध[६] और दूसरे स्थान पर 'विघसुर'[७] माना है। यह 'विघसुर' अभीतक अज्ञात है। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान २१वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में लिखित ग्रंथ 'रत्नमाला' का तिब्बती-अनुवाद सुरक्षित है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

१. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १९५ की पादटिप्पणी।

२. तिब्बत में सवा वर्ष (वही), पृ० २११।

३. डॉ० बागची द्वारा उद्धृत 'चर्यागीति' में 'ताडकपा' के नाम से एक गीति मिलती है, जिसे महापण्डित राहुल सांकृत्यायन 'नारोपा' द्वारा रचित ही मानते हैं। यदि सचमुच 'न', 'त' का लिपि-भ्रम हुआ है, तो इसे नारोपा की ही रचना माननी चाहिए।

अपणो नाहिं सो काहेरि शङ्का, ता महा मुदेरी टूटि गेलि कंथा ॥ध्रु०॥
अनुभव सहज मा भोलरे जोई, चोकोट्टि विमुका जइसो तइसो होइ ॥ध्रु०॥
जइसने अछिले स तइछन अच्छ। सहज पिथक जोइ भान्ति माहो वास ॥ध्रु०॥
वाणड कुरु सन्तारे जाणी। वाक पथातीत काहि बखाणी ॥ध्रु०॥
मणइ ताड़क एथु नाहिं अवकाश। जो' बुझइ तागलें गलपास ॥ध्रु०॥
—पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १९५-१९६।

४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२२।

५. नाथ-सम्प्रदाय (वही), पृ० १४२।

६. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२२।

७. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १४१।

शान्तिपा

आपका नाम 'रत्नाकर शान्ति' भी मिलता है। श्रीराहुलजी के मतानुसार आप मगध के एक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे।[1] डॉ० धर्मवीर भारती लामा तारानाथ के कथन के आधार पर आपको क्षत्रिय मानते हैं।[2] चौरासी सिद्धों में सबसे अधिक पर्यटनशील आप ही थे। आपने उदन्तपुरी-विहार (बिहार-शरीफ, पटना) के सर्वास्तिवाद-सम्प्रदाय में संन्यास-ग्रहण किया। वहाँ अध्ययन समाप्त कर आप विक्रमशिला पहुँचे और महापण्डित 'जेतारि' के पास अध्ययन करने लगे। यहीं सिद्ध 'नारोपा' (नाडपा) से आपका सम्पर्क हुआ, जिनका आपने आगे चलकर शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। विक्रमशिला की शिक्षा पूरी कर आप सोमपुरी-विहार (पहाड़पुर, राजशाही) के स्थविर हुए। यहाँ से आप मालवा चले गये। उधर ही सात वर्षों तक योगाभ्यास करते रहे। पुनः जब आप विक्रमशिला पहुँचे, तब आपको सिंहल के राजा का निमंत्रण मिला। उस निमंत्रण पर सिंहल जाकर आप छह वर्षों तक धर्म-प्रचार करते रहे। वहाँ से विक्रमशिला वापस आने पर राजा महीपाल के विशेष आग्रहवश आपने 'विक्रमशिला-विहार' के पूर्वद्वार का पण्डित होना स्वीकार किया।

आप बड़े प्रकाण्ड विद्वान् थे। इसी कारण आप अपने युग के 'महापण्डित' और 'कलिकालसर्वज्ञ' कहे गये हैं। राहुलजी ने आपको वज्रयानी सिद्धों में सबसे प्रकाण्ड पण्डित कहा है।[3] आपके गुरु सिद्ध जालन्धरपा माने जाते हैं। आप सिद्ध नारोपा (नाडपा) के भी शिष्य थे। आपके शिष्यों में प्रमुख थे दीपंकर श्रीज्ञान और अद्वयवज्र (अवधूतापा, मैत्रीगुप्त)।[4] कहते हैं, सौ वर्षों से अधिक की आयु में आपने शरीर छोड़ा। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान १२वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में आपके तीस से ऊपर ही ग्रंथ संगृहीत हैं, जिनमें एक 'सुखदुःखद्वय-परित्यागदृष्टि' अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में है।

उदाहरण

तुला धुणि धुणि आँसुरे आँसु,
आँसु धुणि धुणि णिरवर सेसु ।। ध्रु० ।।
तउषे हेरुअ ण पाविअइ,
सान्ति भणइ किण सभावि अइ ।। ध्रु० ।।

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२१।
२. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५६।
३. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १६६।
४. सिद्ध-साहित्य (वही), पृ० ५।

तुला धुणि धुणि सुने अहारिउ,
पुन लइआँ अपना चटारिउ ।। ध्रु० ।।
बहल बट दुइ मार न दिशअ,
शान्ति भणइ वालाग न पइसअ ।। ध्रु० ।।
काज न कारण जएहु जअति,
सँएँ सँवेअण बोलथि सान्ति ।। ध्रु० ।।[१]

❀

ग्यारहवीं शती

गयाधर[२]

आपका निवास-स्थान वैशाली (बसाढ़, जिला मुजफ्फरपुर) बतलाया गया है।[३] आप कायस्थ-कुलोत्पन्न थे। आपके गुरु का नाम 'अवधूतिपा' था।

'शाक्य-ये-शेस्' के निमंत्रण पर, १०४५ ई० में, आप बौद्ध-धर्म एवं साहित्य के प्रचारार्थ तिब्बत गये थे। वहाँ आपने 'संपुटी-तंत्र' के अनुवाद में उनकी सहायता भी की थी। तिब्बत में पाँच वर्षों तक रहकर आपने स्वतंत्र रूप से भी अनेक तंत्र-ग्रंथों का भोट-भाषा में अनुवाद किया था।[४] वहाँ से भारत लौटते समय आपको पाँच-सौ तोले सोना विदाई में मिला था। प्रसिद्ध सिद्ध 'तिब्रूपा' आपके ही पुत्र थे।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में लिखित आपका मौलिक ग्रंथ 'ज्ञानोदयोपदेश' संगृहीत है। इसके अतिरिक्त आपने जिन ग्रंथों का भोट-भाषा में अनुवाद किया था, उनमें तीन के नाम इस प्रकार हैं—

(१) बुद्धकपाल-योगिनी-तंत्र, (२) वज्रडाक-तंत्र और (३) हेवज्रतन्त्रराजक।[५]

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५६।

२. आपका चित्र हमें बुद्ध-जयन्ती-समारोह-समिति (वैशाली) के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्रीनगेन्द्रजी से प्राप्त हुआ है।

३. तिब्बत में बौद्ध-धर्म (श्रीराहुल, १९९० वि०), पृ० ३७।

४. तिब्बत में आज भी 'त्सङ्-चें' (ब्रह्मपुत्र) नदी के तट पर वह स्थान बतलाया जाता है, जहाँ पं० गयाधर ने 'डोग्-मी-लो-च-वा' के साथ पाँच वर्षों तक रहकर अनेक ग्रंथों का भोट-भाषा में अनुवाद किया था।

५. वही, (परिशिष्ट—६), पृ० ६।

चम्पकपा

आपका निवास-स्थान चम्पा (भागलपुर) बतलाया गया है।[१] किन्तु डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी आपका निवास-स्थान 'चम्पारण-देश' (आधुनिक चम्पारन) मानते हैं।[२] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ६०वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित आपका एक ग्रंथ 'आत्म-परिज्ञान-'दृष्ट्युपदेश' संगृहीत है।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

चेलुकपा

आपका निवास-स्थान भंगल (भागलपुर) बतलाया गया है।[३] आप जाति के शूद्र और अवधूतीपा (मैत्रीपा) के शिष्य थे। चौरासी-सिद्धों में आपका स्थान ५४वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित आपका एक ग्रंथ 'षडंगयोगोपदेश'[४] संगृहीत है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।

२. नाथ-सम्प्रदाय (वही), पृ० १४१।

३. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।

४. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० २००।

जयानन्तपा

आपका नाम 'जयनन्दीपा' भी मिलता है।

आप भंगल (भागलपुर) के निवासी ब्राह्मण बतलाये गये हैं।[1] कहते हैं, आप वहाँ के राज-मंत्री थे।

आपके तिब्बत जाने का भी उल्लेख मिलता है। वहाँ आपके दुभाषिया 'सेङ्गेर्य्यल' थे।

चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ५८वाँ है। आपके गुरु और शिष्य का नाम ज्ञात नहीं है। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित संभवतः आपके ही दो ग्रंथ संगृहीत हैं—'तर्कमुद्गरकारिका' और 'मध्यमकावतारटीका'।[2]

उदाहरण

पेखु सुअणे अदश जइसा, अन्तराले मोह तइसा ।। ध्रु० ।।
मोह-विमुक्का जइ माणा, तबे तूटइ अवणा गमणा ।। ध्रु० ।।
नौ दाढइ नौ तिमइ न च्छिजइ, पेख मोअ मोहे बलि बलि बाझइ ।। ध्रु० ।।
छाअ माआ काअ समाणा, वेणि पाखें सोइ विणा ।। ध्रु० ।।
चिअ तथतास्वभावे षोहिअ, भणइ जअनन्दि फुडअण ण होइ ।। ध्रु० ।।[3]

निर्गुणपा

आपका निवास-स्थान 'पूर्वदेश' बतलाया गया है।[4] पूर्वदेश से राहुलजी का तात्पर्य भंगल और पुंड्रवर्द्धन से है।[5] आप जाति के शूद्र थे। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ५७वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित आपका एक ग्रंथ 'शरीर-नाडिका-बिन्दुसमता'[6] संगृहीत है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५७।
२. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १६४।
३. वही, पृ० १६४।
४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।
५. दोहाकोश (वही), पृ० १०।
६. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० २०२।

लुचिकपा

आप भंगलदेश (भागलपुर) के निवासी ब्राह्मण थे।[1] आपके गुरु-शिष्य का पता नहीं है। चौरासी-सिद्धों में आपका स्थान ५६वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित आपका एक ग्रंथ 'चण्डालिका-बिन्दुप्रस्फुरण'[2] संगृहीत है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

बारहवीं शती

कोकालिपा

आप चम्पारन के एक राजकुमार बतलाये गये हैं।[3] चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ८०वाँ है।

तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित आपका एकमात्र ग्रंथ 'आयुः-परीक्षा' संगृहीत है।[4] आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।
२. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० २०३।
३. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२४।
४. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० २००।

पुतुलिपा

आपका निवास-स्थान भंगलदेश (भागलपुर) बतलाया गया है।[१] आप शूद्रकुलोत्पन्न थे। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ७८वाँ है। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित एकमात्र ग्रन्थ 'बोधिचित्तवायुचरण-भावनोपाय' ही संगृहीत है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

विनयश्री

आपका निवास-स्थान 'पूर्वी-मिथिला' बतलाया गया है।[२]

आपका सम्बन्ध विक्रमशिला, नालन्दा और जगतल्ला के बौद्ध विहारों से था। मुसलमानों द्वारा, उन विहारों के नष्ट किये जाने पर आप अपने गुरु 'शाक्य-श्रीभद्र' तथा अन्य व्यक्तियों के साथ १२०३ ई० में तिब्बत पहुँचे। उस समय आपकी अवस्था ३५ वर्षों से कम नहीं थी। अनेक वर्षों तक आप वहाँ बौद्धधर्म के प्रचार में लगे रहे और सम्भवतः आपने अपनी जीवन-लीला भी वहीं समाप्त की।

आपने तिब्बत में अपने गुरु शाक्य-श्रीभद्र को अनेक भारतीय ग्रन्थों के भोट-भाषा में अनुवाद करने में सहायता पहुँचाई थी। जगतल्ला-विहार के पंडितों—विभूतिचन्द्र, दानशील, सुगतश्री, संघश्री (नैपाली) आदि साथियों के साथ आपके तिब्बत के 'सस्क्य-विहार' में भी रहने का उल्लेख मिलता है।[३] वहाँ आपके हाथ के लिखे कितने ही पृष्ठ महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को मिले थे। उन पृष्ठों पर १२-१३वीं सदी के लिखे गीत हैं। उन गीतों की संख्या केवल १५ है। उनके पाठ भ्रष्ट हैं, जिससे इन गीतों के विनयश्री द्वारा लिखित होने में संदेह है।[४]

उदाहरण

राहुएँ चान्दा गरसिअ जावें।
गरुअ संवेअण हल सहि तावें॥ ध्रु०॥
भणइ विनयश्री नोख बिनाणा।
रवि साँजोएँ बान्ह गहणा।

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२४।
२. दोहाकोश, (वही, भूमिका), पृ० १९।
३. तिब्बत में बौद्ध-धर्म (वही), पृ० ४४।
४. दोहाकोश (वही, भूमिका), पृ० १९।

बान्द् गरसिल्ले आन्त न दिशइ ।
सपुल बिएक रूअ पडिहारइ ॥
साब् गरासिउ आध राती ।
न तहि इन्दी बिसअ बिआती ॥
कइसो आपु व गइणा भइल्ला ।
सम गरालें अथवण गइल्ला ॥ ध्रु० ॥[1]

❀

तेरहवीं शती

हरिब्रम्ह

आपका निवास-स्थान 'बिहार' कहा गया है ।[2]

आप मिथिला के कर्णाट-राजवंश के अंतिम, अर्थात् छठे राजा महाराज हरिसिंहदेव (लगभग १२९८-१३२४ ई०)[3] के आश्रित कवि थे। महाराज हरिसिंहदेव के विद्वान् मन्त्री, सप्तरत्नाकर[4]-रचयिता, महासांधिविग्रहोक पं० चण्डेश्वर ठाकुर की प्रशंसा में आपकी कुछ पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

उदाहरण

"जहा सरअ-ससि-बिंब, जहा हर-हार हंस ठिअ,
जहा फुल्ल सिअ कमल, जहा सिरि·खंड खंड किअ ।
जहा गंग-कल्लोल, जहा रोसाणिअ रुप्पइ,
जहा दुग्धवर सुद्ध फेण फँफाइ तलप्पइ ।
पिअपाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जइ तरुणि जणा ।
वरमति चंडेसर कित्ति तुअ, तत्थ पेक्ख हरिबंभ भणा"[5] ॥१०८॥

---

१. दोहा कोश (वही, भूमिका), पृ० ३६३ ।

२. हिन्दी-काव्यधारा (वही), पृ० ४६४ ।

३. बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन (वही), पृ० २०८-२०९ ।

४. इनके नाम इस प्रकार हैं—कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर, शुद्धिरत्नाकर, पूजा-रत्नाकर, विवादरत्नाकर, तथा गृहस्थरत्नाकर, इन रत्नाकरों के अतिरिक्त कृत्यचिन्तामणि और शैव-मानसोल्लास नामक दो और ग्रन्थ पं० चण्डेश्वर ठाकुर के मिलते हैं ।

५. हिन्दी-काव्य-धारा (वही), पृ० ४६४-४६६ ।

चौदहवीं शती

अमृतकर

आपका नाम 'अमिअकर' भी मिलता है। आपका निवास-स्थान मिथिला था।[१] आप कायस्थ-बलाइन-वंश में उत्पन्न हुए थे तथा मिथिला के महाराज शिवसिंह के प्रधान-मंत्री थे। आपके पिता का नाम प्रीतिकर (उपनाम चन्द्रकर) था। आपके पितामह सूर्यकर क्षत्रियकुलभूषण हरिसिंहदेव के मंत्री थे। आपके पूर्वज श्रीधरदास भी महाराज नान्यदेव के मंत्री थे।

आप महाराज शिवसिंह के परम विश्वास-पात्र थे। कहते हैं, एकबार दिल्लीश्वर के आदेशानुसार यवन-सेना जब महाराज शिवसिंह को बन्दी करके दिल्ली ले गई थी, तब आप उन्हें मुक्त करने के उद्देश्य से दिल्लीश्वर के अधीनस्थ बिहार-प्रान्त के नवाब से पटना में मिले थे। उक्त नवाब से आपने अपने महाराज को वन्दी-गृह से मुक्त करने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु असफल रहे।

आपकी प्रशंसा में महाकवि विद्यापति का एक पद उपलब्ध हुआ है, जिससे आपकी नीति-निपुणता, विद्वत्ता, सज्जनता, परोपकारिता आदि गुण प्रकट होते हैं।[२] आपके द्वारा मैथिली में रचित एक पद 'रागतरंगिणी' और दो-दो पद विद्यापति-पदावली की नैपाली-पोथी तथा रामभद्रपुर पोथी में मिलते हैं।

उदाहरण

(१)

वृह विस भमि भमि लोचन आव।
तैसरि दोसरि कतहु न पाव॥ १॥
लगहि अछलि घनि विहि हरि लेल।
लखित लता सागरिका भेलि॥ २॥
हरि-हरि विरहे छुइल बछराज।
वदन मलान कओन करु आज॥ ३॥
चान्दन सीतल ताहेरि, काए।
तखने न भेलि ए हृदय मोहि लाए॥ ४॥
ते अधिकाइलि मानस-आधि।
धक धक कर मदनानल धाधि॥ ५॥

---

१. महाकवि विद्यापति (पं० हरिनन्दन ठाकुर 'सरोज', प्रथम सं०, १९४० ई०), पृ० १२।

२. नीति निपुण गुण नाह, अंक में आगर।
कोष-काव्य-व्याकरण, अधिक अधिकारक सागर॥
सबकर कर सम्मान सबहु सो नेह बढ़ाविअ।
विप्रदीन अतिदुखी सबहुँ का विपत्ति छोड़ाविअ॥
कायस्थ माँह सुरसिद्ध भउ, चन्द्र तुलाइव शशिधर।
'कविकण्ठहार' कल उच्चरइ, अमिअ बरस्सइ अमिअकर॥
—वही, पृ० १२।

भनइ अमिअकर नागरि नाम।
आकवि कएलिहि सिरिजल काम ॥ ६ ॥[1]

(२)

सुरत समापि सुतल वरनागर पानि पयोधर आपी।
कनकसम्भु जनि पूजि पुजारें धएल सरोरुहें झापी ॥
सखि हे मालति केलि विलासे।
मालति रमिअतितालि अगोरलि पुलुरतिरङ्कक आसे
वदन मेराए धएलन्हि मुखमण्डलँ कमले मिलल जनि चन्दा
भमर चकोर दुअओ अलसाएल पीबि अमिअ मकरन्दा
भनइ अमिअकर सुनु मधुरापति राधाचरित अपारे ॥
राजा सिवसिंह रूपनराएन लखिमा देइ कण्ठहारे।[2]

※

उमापति उपाध्याय

पं० चेतनाथ झा[3] तथा डॉ० ग्रियर्सन[4] ने आपका जन्म-स्थान 'कोइलख' (दरभंगा) बतलाया है। यह ग्राम दरभंगा जिले के 'भौर' परगना में आज भी वर्त्तमान है। कुछ विद्वानों ने आपका जन्मस्थान मँगरौनी (दरभंगा) बतलाया है, जो ठीक नहीं।[5]

आपके पिता का नाम रत्नपति उपाध्याय और आपकी माता का नाम रत्नावती था, ऐसा कुछ विद्वानों का विचार है। आप एक अद्वितीय धर्मशास्त्री विद्वान् थे, जिसके कारण आपको 'महामहोपाध्याय कविपण्डितमुख्य' की उपाधि प्राप्त हुई थी। आपने अपने को विष्णु के दशम अवतार-स्वरूप 'हरिहरदेव' नामक किसी राजा का आश्रित बतलाया है और यह भी कहा है कि आपके आश्रयदाता तलवार से यवन-रूपी वन का नाश करनेवाले थे।[6] मिथिला के इतिहास में इन गुणों से सम्पन्न इस नाम के किसी राजा का पता नहीं चलता।

---

१. विद्यापति-गीत-संग्रह (डॉ० सुभद्र झा, १९५४ ई०, Appendix-A) पद सं० १०, पृ० घ।

२. रागतरंगिणी (बलदेव मिश्र, १९९१ वि०), पृ० ८४-८५। यह पद किंचित् परिवर्त्तन के साथ श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति की पदावली' में विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। उक्त संग्रह में भनिता इस प्रकार है—

भनइ अमिकर सुनह मधुरपति राधा चरित अपारे।
राजासिवसिंह रूपनारायन सुकवि भनथि कण्ठहारे ॥

वही, पद सं० ३१७, पृ० १६२।

३. पारिजात-हरण (पं० चेतनाथ झा, प्रथम सं०, शाके १८३६, भूमिका), पृ० ११।

४. Journal of the Bihar and Orissa Research Society (Vol III, Part I), P. 25.

५. पुस्तक-भण्डार-जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ (१९४२ ई०), पृ० ४०३।

६. 'आदिष्टोऽस्मि यवनवनच्छेदकरालकरवालेन विच्छेदगतचतुर्वेदपथप्रकाशकप्रतापेन भगवतः श्रीविष्णोर्दशमावतारेण हिन्दुपतिश्रीहरिहरदेवेन यथा उमापत्युपाध्यायविरचितं नवपारिजात-मङ्गलाभिनीय वीररसावेशं शमयन्तु भवतो भूपालमण्डलस्य"—Journal of the Bihar and Orissa Research Society (वही), P. 28.

अतः कुछ लोग नैपाल-स्थित सप्तरी परगने के अन्तर्गत इसी नाम के, १७वीं सदी के, एक छोटे-से स्वतंत्र राजा को आपका आश्रयदाता बतलाते हैं।[१] इसी प्रकार, कुछ विद्वानों ने मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड-स्थित गढ़मण्डला के राजा 'हिन्दुपति' को, जो हृदयशाल के पौत्र छत्रसाल के पुत्र थे, आपका आश्रयदाता कहा है।[२] किन्तु डॉ० ग्रियर्सन तथा आधुनिक प्रामाणिक विद्वान् उक्त मतों को युक्तिसंगत नहीं मानते और अनेक प्रमाणों के साथ कर्णाट-वंश के अंतिम राजा हरिसिंहदेव को ही आपका आश्रयदाता बतलाते हैं।[३]

आपकी केवल एक ही रचना (पारिजातहरण) पुस्तकाकार में मिली है, जो संस्कृत-प्राकृत-मैथिली-मिश्रित एक 'कीर्त्तनिया नाटक' है। यह लोकभाषा (मैथिली)-मिश्रित संस्कृत-नाटकों में सबसे प्राचीन माना जाता है। उक्त रचना के अतिरिक्त आपके कुछ स्फुट पद भी मैथिली में मिलते हैं, जिनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

उदाहरण

(१)

अनगनित किंशुक चारु चंपक बकुल बकुहुल फुल्लियाँ।
पुनु कतहु पाटलि पटलि नीकि नेवारि माधवि मल्लियाँ॥
कर जोरि रुकुमिनि कृष्ण संग वसंत-रंग निहारहीं।
रितु रभस सिसिर समापि रसमय रमथि संग बिहारहीं॥
अति मंजु बंजुल पुंज मिंजल चारु चूअ बिराजहीं।
निज मधुहिँ मातलि पल्लवच्छबि लोहितच्छाबि छाजहीं॥
पुनु केलि-कलकल कतहु आकुल कोकिला-कुल कूजहीं।
जनि तीनि जग जिति मदन नृप-मनि विजय-राज सुराजहीं॥
नब मधुर मधु रसुमुगुध मधुकर निकर-निक-रस भावहीं॥
जनि मानिनि जन मान भंजन मदन गुरु गुन गावहीं॥
बह मलय निरमल कमल परिमल पवन सौरभ सोहहीं।
रितुराज रैबत सकल दैबत मुनिहु मानस मोहहीं॥
जदुनाथ साथ बिहार हरखित सहस सोड़स नायिका।
भन गुरु उमापति सकल-नृप पति होथु मंगल नायिका ॥७॥[४]

---

१. पारिजातहरण (वही, भूमिका), पृ० १५-१६।

२. A History of Maithili literature (J. Mishra, 1949, Vol. I), PP. 306-307.

३. (क) Journal of the Bihar and Orissa Research Society (Vol. III, Part IV), PP. 453-537.
(ख) वही (Vol. XLIII, Part I & II), PP. 42-43।
(ग) 'हिन्दुस्तानी' (त्रैमासिक, अप्रैल १९२५ ई०), पृ० ११५-११६।
(घ) 'साहित्य' (त्रैमासिक, जुलाई १९५६ ई०), पृ० ४४-४५।

४. Journal of the Bihar and Orissa Research Society (Vol. III, Part I), PP. 30-31.

(२)

अरुन पुरुब दिसि बहलि सगरि निसि
गगन मगन भेल चन्दा।
मुनि गेलि कुमुदिनि तइओ तोहर धनि
मूनल मुख अरबिन्दा ॥२२॥

कमल बदन कुबलय दुहु लोचन
अधर मधुरि निरमाने।
सगर सरीर कुसुम तुअ सिरिजल
किए तुअ हृदय पखाने॥२४॥

मानिनि।

असकति कर कंकन नहि परिहसि
हृदय हार भेल भारे।
गिरि सम गरुअ मान नहि मुंचसि
अपरुब तुम्हअ बेवहारे ॥२६॥

मानिनि।

अबगुन परिहरि हरखि हेरु धनि
मानक अबधि बिहाने।
हिमगिरि-कुमरि चरन हृदय धरि
सुमति उमापति भाने ॥२८॥[१]

※

१. Journal of the Bihar and Orissa Research Society (वही), PP. 44-46
यह पद किंचित् परिवर्त्तन के साथ श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। उक्त संग्रह में भनिता इस प्रकार है—

अवगुन परिहरि हेरह हरखि धनि
मानक अवधि विहाने।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
कवि विद्यापति भाने ॥ ८ ॥

—वही, पद सं० ३६६, पृ० १८७।

गणपति[१] ठाकुर

आप महाकवि विद्यापति के पिता और दरभंगा जिले के 'बिसफी' ग्राम-निवासी थे। आपके पिता का नाम 'जयदत्त' था। 'श्रीकर' की पुत्री गांगो देवी (गंगादेवी) से आपका विवाह हुआ था। कहते हैं, आपने कपिलेश्वर महादेव की आराधना करके विद्यापति-जैसा पुत्र-रत्न पाया था। आप मिथिला के राजा गणेश्वर के सभा-पण्डित थे।

आप संस्कृत के बड़े प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपका रचा एकमात्र संस्कृत-ग्रंथ 'कृत्य-चिन्तामणि' प्राप्त है। आपने मैथिली-भाषा में कुछ पद भी रचे थे।

उदाहरण

मधुकर विमल कमल पर रावे।
जनिकर मधुर-मधुर रस पावे॥
पवन - परस कर दलतल दूरे।
जनि धरि कोमल अधर अधारे॥
रमथ जगत कत फूले।
एहन रस-रभस नहि भेट धूले॥
सरस सुधारस बस रस - मूले।
रसल वसल मधुपति करथि कलोले॥
सुन पति गनपति कवि भाने॥
रसल वसल जन पुनु धरथि धेआने॥[२]

❀

ज्योतिरीश्वर ठाकुर

आपको 'कविशेखराचार्य' की उपाधि मिली थी।

आपने अपने को 'श्रीमत्पल्ली-ग्राम' वासी बतलाया है।[३] इस ग्राम का पता निश्चित रूप से अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हुआ है, किन्तु यह स्थान मिथिला में ही रहा होगा। आपके पिता का नाम धीरेश्वर और पितामह का नाम रामेश्वर था। आप कर्णाटवंशी राजा हरिसिंहदेव (सन् १२९८-१३२४ ई०) के दरबार में थे।

---

१. १५वीं शती के 'कविराज भानुदत्त' के पिता भी एक 'गणपति' थे। कहीं-कहीं इनका नामोल्लेख 'गणेश्वर' और 'गणनाथ' के रूप में भी मिलता है। इनके पिता का नाम 'म० म० महादेव' था। संभवतः, ये अपने पिता के सबसे छोटे लड़के थे। विद्वानों ने इन्हें प्रख्यात कवि एवं नैयायिक कहा है। कवि के रूप में इन्हें 'ढक्ककवि' की उपाधि प्राप्त थी। 'सुभाषित-सुधारत्न-भाण्डागार' के लेखक ने इन्हें 'महामोद' नामक कृति का रचयिता बतलाया है। किन्तु परम्परा से ये 'रस-रत्न दीपिका' नामक ग्रंथ के रचयिता माने गये हैं। सम्भव है, इन्होंने मैथिली में भी कुछ पदों की रचना की हो।
—Patna University Journal (vol. III, No 1 & 2, Sep. 1946-Jan. 47), P.II

२. 'साहित्य' (वही, अक्टूबर १९५७ ई०), पृ० ४५।

३. बिहार-रिसर्च सोसायटी (पटना) में संगृहीत हस्तलिखित 'धूर्त्तसमागम' प्रहसन की प्रस्तावना के आधार पर।

आप एक बड़े विद्वान् और संगीत-शास्त्रज्ञ थे। काव्य-शास्त्र में भी आपकी गहरी पैठ थी, जिसके कारण आप 'अभिनव-भरत' कहे जाते थे। विभिन्न भाषाओं एवं उपभाषाओं का भी आपका अच्छा अध्ययन था। आप शिव के उपासक थे। आपकी तीन रचनाएँ अभीतक प्राप्त हुई हैं। वे हैं—धूर्त्त-समागम[1] (प्रहसन), पंचसायक[2] (काम-शास्त्र) और वर्ण-रत्नाकर (गद्य-काव्य)।[3] इनमें प्रथम दो संस्कृत और अंतिम प्राचीन मैथिली में है। ज्ञात होता है कि आपकी काव्य-रचना उत्कृष्ट कोटि की होती थी, जिसके कारण आपको 'कवि-शेखराचार्य' की उपाधि प्राप्त हुई थी। मैथिली में लिखित आपका 'वर्ण-रत्नाकर' हिन्दीमें गद्य-काव्य का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है।

उदाहरण

(१)

॥ अथ चन्द्रमावर्णना ॥

निशाक नाइकाक शङ्खवलय अइसन अकाश० वीचित (क) कमण्डल अइसन० चन्द्रकान्तक प्रभा अइसन० तारकाक सार्थवाह अइसन० शृङ्गार समुद्रक कल्लोल अइसन० कुमुदवनक प्राण अइसन० पश्चिमाचलक तिलक अइसन० अन्धकारक मुक्तिक्षेत्र अइसन० कन्दर्पनरेन्द्रक यश अइसन० लोक लोचनक रसायन अइसन० एवम्विध चन्द्र उदित भउअछ।[4]

(२)

॥ अथ सरोवर वर्णना ॥

शरतक चान्द अइ (स) न निर्म्मल० वौद्धपक्ष अइसन आपातभीषण० उदयनक सिद्धान्त अइसन प्रसन्न० योगीक चित्त अइसन सौम्य० हरिश्चन्द्रक त्याग अइसन अगाधसरोवर देषु॥ पुनु कइसन देषु॥ कमल० कोकनद० कल्हार० कुवलय० कुमुद तें उपशोभित० वेश्याक कटाक्षपात इतस्ततोगामी० भावलम्पट भ्रमर तें उपशोभित ··[5]

---

१. यह रचना प्रकाशित हो चुकी है। इसके अनुवाद अन्य भाषाओं में भी हुए हैं। इसी के आरम्भ में नंदी द्वारा अपना परिचय दिलाते हुए आपने पिता और पितामह का नामोल्लेख किया है और अपने को सकल संगीत-विद्याओं का विशेषज्ञ, अभिनवभरत, सम्पूर्ण भाषा और उपभाषाओं का ज्ञाता, सरस्वती-कंठाभरण और श्रीमत्पल्ली-ग्रामवासी कहा है।

२. यह रचना भी प्रकाशित है। इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति पटना-विश्वविद्यालय में सुरक्षित है। 'धूर्त्तसमागम' की तरह इसमें भी आपने बड़े गौरव के साथ अपने को शिव का उपासक, चौंसठ कलाओं का निधि, संगीत, आगम और सत्प्रमेय की रचना-चातुरी में शिरोमणि, प्रख्यात तथा कविशेखराचार्य उपाधि-प्राप्त लिखा है।

३. यह ग्रंथ एशियाटिक सोसायटी (बंगाल) के संग्रहालय में सुरक्षित है। आरम्भ, मध्य और अंत के कुछ पृष्ठों के न रहने के कारण यह खंडित है। इसका प्रकाशन भी एशियाटिक सोसायटी से ही, डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी तथा पं० बबुआजी मिश्र के सम्पादकत्व में, हो चुका है। यह आठ कल्लोलों में विभक्त है। सात कल्लोलों के नाम हैं—नगर वर्णना, नायिका वर्णना, आस्थान वर्णना, ऋतु वर्णना, प्रयाणक वर्णना, भट्टादि वर्णना और कला वर्णना। आठवें कल्लोल का नामकरण नहीं मिलता।

४. श्रीज्योरीश्वर ठाकुर-प्रणीत 'वर्ण-रत्नाकर' (डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी तथा पं० बबुआजी मिश्र, १६४० ई०, तृतीयः कल्लोलः), पृ० १७।

५. वही (पंचमः कल्लोलः), पृ० ३६।

(३)

॥ अथ विद्यावन्त वर्णना ॥

गुजर परि वेटरा एक मन्था बन्धने० हिरा धारक कलिश्रा चारि कान परिहलें सारु सोनाक टाड चारि बाह परिहने० चतुःसमे अंगराग कएने० सफर उच्च पाढि समेत ताएमण्डलक विसह पछेग्रोरा एक दोवल कइ उएड उपर कइ चलग्रोले० मकलाक पटा एक परिहने० एक खंपा भाण्डो कान्ध पालने० विदातञो अस्थान भीतर भउ०[१]

(४)

॥ अथ पुनर्भोजन वर्णना ॥

प्रहर रात्री भितर बिअारीक अवसर भेल० चोरगाहि ठाञो निपज० तदनन्तर अपूर्व्व पीढो एक ठाम धरल० सेवकें पटादेल० वधा रत्नमण्डित नायकेकेदेल० वाणेश्वर तमारु सुवर्णघटित रत्नरचित वौरा० तदनन्तर अठ पहरि पानि कर्पूरक वासल सुन्दरी देल० नायके पएर पखालल शुची भए वैसलाह ...[२]

दामोदर मिश्र

आपके जन्म-स्थान का कुछ निश्चित पता नहीं चलता। ओइनवारवंशीय राजा कीर्त्ति सिंह के सभा-पंडित होने के कारण अनुमान किया जाता है कि आपका जन्म मिथिला में ही कहीं हुआ होगा। आपने 'वाणी-भूषण' नामक एक छन्दोग्रंथ की रचना की थी, जिसमें कीर्त्तिसिंह का भी उल्लेख हुआ है। आपका लिखा मैथिली का एक पद भी प्राप्त होता है।

उदाहरण

रतिमुखि समुख न करु अतिमान। हसि कए दए मधुर मधुदान ॥
आरति न करह रतिसुखबाध। एहि अवसर न गुनिअ अपराध ॥
हठ न उचित अति अलपहुँ वोल। सगरिओ रइनि गमओलह रोस ॥
गुनमति भए न करिअ अज्ञान। अरुण उगल आब होएत बिहान ॥
सुनु सुवदनि 'दामोदर' भान। एकर समादर होएत निदान ॥[३]

---

१. वही (षष्ठः कल्लोलः), पृ० ४६।

२. वही (अष्टमः कल्लोलः), पृ० ६८-६९।

३. मैथिली-गीत-रत्नावली (बदरीनाथ झा, प्रथम सं०, २००९ वि०), पद सं० ५, पृ० ३।

विद्यापति ठाकुर

आपकी गणना हिन्दी के मूर्द्धन्य कवियों में है। मैथिली के तो आप सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। मिथिला के घर-घर में आपके गीतों का प्रचार है। बंगाल[१], आसाम, उड़ीसा, नेपाल आदि स्थानों में भी आपके गीत गाये जाते हैं। इस प्रकार, समस्त उत्तर-पूर्व भारत के आप अत्यन्त लोकप्रिय कवि हुए। इतना लोकप्रिय कवि मिथिला में शायद ही कोई दूसरा हुआ हो। यों तो आप भारत के विश्वविख्यात कवियों में एक हैं।

आपका जन्म दरभंगा जिले के बिसफी-ग्राम के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ था।[२] पीछे यह ग्राम आपको मिथिला के राजा शिवसिंह की ओर से उपहारस्वरूप मिला।

आपके पूर्वपुरुष उच्च कोटि के विद्वान्, मिथिला-राजदरबार के पण्डित एवं मंत्री रह चुके हैं। आपके पिता सुप्रसिद्ध संस्कृत-ग्रंथ 'कृत्यचिन्तामणि' के रचयिता और महाराज गणेश्वर के सभापण्डित गणपति ठाकुर थे। आपने पं० हरिमिश्र से शिक्षा प्राप्त की थी, जिनके भतीजा सुप्रसिद्ध नैयायिक पं० पक्षधर मिश्र आपके सहपाठी थे। बचपन से ही आप अपने पिता के साथ महाराज गणेश्वर के दरबार में आते-जाते थे। पीछे कीर्त्तिसिंह के दरबार में भी जाने-आने लगे। कीर्त्तिसिंह के बाद मिथिला की राजगद्दी पर क्रमशः भवसिंह, देवसिंह, शिवसिंह, पद्मसिंह, लखिमा देवी, विश्वास देवी, हरिसिंह, नरसिंह, धीरमती, धीरसिंह और भैरवसिंह बैठे, जिनके दरबार में भी आप वर्त्तमान थे। इसीसे प्रतीत होता है कि आप एक दीर्घजीवी पुण्यात्मा पुरुष थे।

आप पंचदेवोपासक थे। आप बहुत बड़े शिव-भक्त भी थे। स्वयं शिव का, भृत्य के रूप में, 'उगना' के नाम से आपके यहाँ रहने की कथा प्रसिद्ध है।

'व्यवहार-प्रदीपिका', 'दैवज्ञवानव' आदि ज्योतिष-ग्रन्थों के रचयिता 'हरपति' आप ही के पुत्र थे। हरपति के अतिरिक्त 'नरपति' और वाचस्पति नाम के आपके दो और पुत्र[३] थे। प्रसिद्ध कवयित्री 'चन्द्रकला' आपकी ही पुत्रवधू थीं।

---

१. बंगाल में आपके गीतों का इतना अधिक प्रचार हुआ कि अनेक बंगाली कवियों ने इनके अनुकरण पर रचनाएँ कीं। बंगीय विद्वानों ने मुक्तकंठ से इस बात को स्वीकार किया है कि आपकी प्रतिभा से समस्त वंग-साहित्य उज्ज्वल और सजीव हुआ। आज भी बंगला-भाषाभाषी आपको अपना कवि मानकर गौरवान्वित होते हैं।

२. An Introduction to the Maithili Language of North Bihar Containing a Grammar, Chrestomathy & vocabulary (Grierson, Extra no. to Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. LI, Part I, for 1882), P. 34
यह स्थान जरैल-परगना (दरभंगा) के बेनीपट्टी थाने में, कमतौल स्टेशन से चार मील की दूरी पर है।

३. लोककंठ से संगृहीत आपके एक पद के आधार पर कुछ विद्वान् आपकी 'दुल्लहि' नामक एक पुत्री का उल्लेख करते हैं। किन्तु इसमें मतभेद भी है। देखिए 'साहित्य' (वही, अक्टूबर, १९५७ ई०), पृ० ४५—४९।

आप कवि, कहानीकार, भू-वृत्तान्त-लेखक, इतिहासज्ञ, संगीतज्ञ और धर्मव्यवस्थापक भी थे। आपकी रचनाएँ तीन भाषाओं में मिलती हैं—संस्कृत, अवहट्ट (अपभ्रंश) तथा मैथिली। संस्कृत में विभिन्न विषयों पर आपकी रचनाओं की संख्या १३ के लगभग है।[१] अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में आपकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं—कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका। कुछ लेखकों के अनुसार कीर्त्तिलता को आपकी प्रथम रचना होने का श्रेय प्राप्त है। इसमें महाराज कीर्त्तिसिंह की वीरता, दानशीलता तथा राजनीतिज्ञता का विशद वर्णन है। कीर्त्तिपताका में महाराज शिवसिंह की कीर्त्ति एवं उनके आचरण का वर्णन है।[२]

मैथिली में ग्रंथ के रूप में आपकी कोई रचना नहीं मिलती। इस भाषा के अन्तर्गत आपके द्वारा रचे वे पद आते हैं, जो आपने समय-समय पर लिखे थे। ये पद तीन कोटि के हैं। प्रथम कोटि में वे पद आते हैं, जो श्रृंगार-रस-सम्बन्धी हैं। ऐसे पदों में अधिकांश राधा-कृष्ण के नाम आये हैं। द्वितीय कोटि में भक्ति-विषयक पद हैं। इस कोटि में शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण, गंगा आदि के प्रति कवि ने अपनी भक्ति-भावना का प्रदर्शन किया है। तृतीय कोटि में कुछ ऐसे पद हैं, जिनमें फुटकर विषयों की चर्चा है।[३]

उदाहरण

(१)

मान बिहूना भोअना सत्तक देअ ल राज।
सरण पइट्ठे जीअना, तीनू काअर काज॥[४]

(२)

अवसओ उधम लछि बस अवसओ साहस सिद्धि।
पुरुष विअख्खण जंचलइ तं तं मिलइ समिद्धि॥[५]

---

१. आपकी संस्कृत-रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) भू-परिक्रमा, (२) पुरुष-परीक्षा, (३) लिखनावली, (४) विभाग-सार, (५) वर्षकृत्य, (६) गयापत्तलक, (७) शैव-सर्वस्वसार, (८) शैव-सर्वस्वसार-प्रमाणभूत-पुराण-संग्रह, (९) गंगावाक्यावली, (१०) दानवाक्यावली, (११) दुर्गाभक्ति-तरंगिणी, (१२) गोरक्ष-विजय और (१३) मणिमंजरी। अन्तिम दोनों नाटिकाएँ हैं। इनके गीत मैथिली में हैं।

२. कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका इन दोनों की हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ दरबार-लाइब्रेरी (नैपाल) में सुरक्षित हैं। कीर्त्तिलता का प्रकाशन म०म० हरप्रसाद शास्त्री, डॉ० बाबूराम सक्सेना तथा श्रीशिवप्रसादसिंह के सम्पादन में हो चुका है।

३. विद्यापति के पदों के कई संग्रह ग्रंथाकार में अब प्रकाश में आ गये हैं। इनमें श्रीब्रजनन्दन-सहाय 'ब्रजवल्लभ', श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त, पं० शिवनन्दन ठाकुर, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ० विमान-बिहारी मजूमदार, डॉ० सुभद्र झा, डॉ० शहीदुल्ला आदि विद्वानों द्वारा सम्पादित संग्रह प्रमुख हैं। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से भी विद्यापति की संस्कृत और अपभ्रंश में रचित कृतियों के अतिरिक्त एक प्रामाणिक पद-संग्रह प्रकाशित करने की योजना कार्यान्वित हो रही है।

४. कीर्त्तिलता (बाबूराम सक्सेना, द्वितीय सं०, २०१० वि०), पृ० २०।

५. वही, पृ० २६।

(३)

मध्यान्हे करी वेला संमद साज सकल पृथ्वीचक्र करेओ वस्तु विकाएँ आएवाज। मानुसोक मीसि पीसि वर आँगे आँग, उँगर आनक तिलक आनकाँ लाग। यात्राहूतह परस्त्रीक वलया भाँग। वाह्मणाक यज्ञोपवीत चाण्डाल हृदय लूल, वेश्यान्हि करो पयोधर जटीक हृदय चूर। घने सञ्चर वोल हाथि, बहुत वापुर चूरि जाथि। आवर्तं विवर्तं रोलहों, नअर नहि नर समुद्र ओ॥[१]

(४)

अवरु वैचित्री कहओ का जन्हि केस धूप धूम करी रेखा भ्रु बहु उप्पर जा काहू काहु अइसेनओ सङ्गत करे काजरे चान्द कलङ्क। लज्ज कितिम कपट तारुन्न। धन निमित्ते धर पेम, लोभे विनअ, सौभागे कामन। विनु स्वामी सिन्दूर परा परिचय अपामन।[२]

(५)

ततहि धाओल दुहु लोचन रे जेहि पथे गेलि वननारि।
आसा-लुबुधल न तेजए रे कृपणक पाछु भिखारि॥१॥ ध्रुव॥
सहजहि आनन सुन्दर रे भौह निवित (निमीलित) आखि।
पंकज मधुकर मधु पिबि रे उड़ए पसारलि पाखि॥२॥
आजे देखलि धनि जाइते रे रूप रहल मन लागि।
रूप लागल मन धाओल रे कुच कञ्चन गिरि सान्धि॥३॥
ते अपराधे मनोभव रे ततए धएल जनि वान्धि॥४॥
विद्यापति कवि गाविह रे गुण बुझ रसिक सुजान॥५॥
राजाहुँ रूप नरायण रे लखिमा देवि रमान॥६॥[३]

(६)

पुरुष भमर सम कुसुमे कुसुमे रम, पेअसि करए कि पारे।
डर न राखल पहु परतख भेलनहु, ओर धरि भेल विचारे।
भल न कएल तोहें सुमखि सरूप कोहोऊँ, लेपन पिअ अपराधे।
सेहे सआनी नारि पिअगुणे परचारि, बेकतैओ दोस नुकावे।
निसि निसि कुमुदिनिससधर पेम जिमि, अधिक अधिक रस पावे।
भनइ विद्यापति अरे रे वरजुवति, अवहु करिअ अवधाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन, लखिमा देवि रमाने।[४]

---

१. कीर्तिलता (वही), पृ० ३०।
२. वही, पृ० ३४।
३. विद्यापति-गीत-संग्रह (वही), पृ० ७४।
४. विद्यापति-विशुद्ध पदावली (पं० शिवनन्दन ठाकुर, १९४१ ई०), पृ० ८३।

(७)

तातल सैकत वारिबिन्दु सम सुतमितरमणी समाजे ।
तोहे विसरि मन ताहे समरपल अब मझु हब कोन काजे ॥२॥
माधव हम परिणाम निराशा ।
तुहु जगतारण दीन दयामय अतये तोहारि विशोयासा ॥४॥
आध जनम हम निंदे गमाओल जरा शिशु कतदिन गेला ।
निधुबने रमणी रसरङ्गे मातल तोहे भजब कोन बेला ॥६॥
कत चतुरानन मरि मरि जाओत न तुया आदि अवसाना ।
तोहे जनमि पुन तोहे समाओत सागर लहरि समाना ॥८॥
भनथे विद्यापति शेष शमन भय तुया विनु गति नहि आरा ।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि अब तारण भार तोहारा ॥१०॥[1]

(८)

कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब, सुख सपनेहु नहि भेल हे भोलानाथ ॥
आछत चानन अवर गंगाजल, बेलपात तोहि देब, हे भोलानाथ ॥
यहि भवसागर थाह कतहु नहि, भैरव धरु कर आए हे भोलानाथ ॥
भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति, देहु अभय वर मोहि हे भोलानाथ ॥[2]

❀

पन्द्रहवीं शती

कंसनारायण[3]

आपका निवास-स्थान मिथिला कहा गया है[4]।

आप ओइनवार-वंश के अंतिम राजा थे। विद्वानों का विचार है कि मैथिली-कवियों के आश्रयदाताओं में शिवसिंह के बाद आपका ही स्थान है। आपके दरबार में रहनेवाले कवियों में गोविन्द ठाकुर[5], काशीनाथ, रामनाथ, श्रीधर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

---

१. विद्यापति ठाकुर की पदावली (श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त, १९१० ई०), पद सं० ८३९, पृ० ४२४।
२. विद्यापति (मित्र-मजूमदार, हिन्दी-संस्करण, २०१० वि०), पद सं० ७७१, पृ० ५०७।
३. डॉ० विमानविहारी मजूमदार का कथन है कि सुगाँव अथवा ओइनीवंश के अन्तिम राजा लक्ष्मीनाथ का ही विरुद 'कंसनारायण' था। श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त ने लिखा है कि विद्यापति ने अपनी पुरुष-परीक्षा में अपने आश्रयदाता शिवसिंह को 'लक्ष्मीपति' कहा है। अतः, संभव है कि लक्ष्मीनाथ शिवसिंह का ही दूसरा नाम हो।—Patna University Journal (Vol. IV, No. 1, Jan. 1949), PP. 8, 9 तथा 10.
४. A History of Maithili Literature (वही), P. 220.
५. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान प्रकाशित है।

आपके स्फुट पदों का संग्रह 'कंसनारायण-पदावली'[1] के नाम से मिला है। वैसे लोचन-कृत 'रागतरंगिणी' तथा विद्यापति-पदावली की नैपाली प्रति में भी आपके दो-दो पद संगृहीत हैं।

उदाहरण

(१)

तनु सुकुमार पयोधर गोरा,
कनक लता जनि सिरिफल जोरा,
देखलि कमलमुखि बरनि न जाइ,
मन मोर हरलक मदन जगाइ,
भौंहाँ धनुष धएल वसु आगू,
तीष कटाख मदन शर लागू।
सवतरु सुनिअ अैसन वेवहारा,
मारिअ नागर उबर गमारा ।।
कंसनारायन कौतुकगावै,
पुनफले पुनमत गुनमति पावै ।[2]

(२)

साए साए पिआकें कह विनती।
इह ओ वसन्तरितु ओतहिगमावथु एतएक भलि नहिं रीति।
घन मलयज रस परसें लागविस दुसह सुनिअ पिकनादे ।।
अनलबरिस ससि निन्दओनहोअनिसिएतए आओर परमादे।
जेसवे विपरित सेसवे कहबकत के पतिआएत आने ।।
जखने आओब हरि हमहि निवेदव जओराखत पँचवाने ।।
सुमुखि समाद समादरें समदल नसिरासाह सुरताने ॥
नसिराभूपति सोरमदेइपति कंसनराएन भाने ।।[3]

---

१. इसमें आपके अतिरिक्त अन्य कवियों के पद भी संगृहीत हैं। इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति दरबार-लाइब्रेरी (नैपाल) में सुरक्षित है। इसी प्रति की प्रतिलिपि डॉ० जयकान्त मिश्र (प्रयाग-विश्वविद्यालय) ने मँगवाई है।

२. रागतरंगिणी (वही), पृ० ७७।

३. रागतरंगिणी (वही), पृ० ९७। इस पद से ज्ञात होता है कि आप हुसेनशाह के पुत्र, बंगाल के सुल्तान नासिरुद्दीन नसरत शाह (सन् १५१८—३१ ई०) के समकालीन थे।

कृष्णदास

आपका नाम 'कृष्ण कारखदास' भी मिलता है।

आप दरभंगा जिले के रोसड़ा नामक स्थान के निवासी थे।[१] आप कबीरपंथी थे और कबीर-पंथ में आपने 'कबीर-वचनवंशीय' नामक एक नई शाखा चलाई थी, जिसका प्रमुख मठ रोसड़ा में है। आपके द्वारा चलाई गई उक्त शाखा के साधु आज भी देश में चारों ओर मिलते हैं।

आपके द्वारा रचित तीन छोटी-छोटी पुस्तकें हैं—'विचार-गुणावली', 'त्रियाबोध' तथा 'आदि-उत्पत्ति'।[२] ये पुस्तकें अवधी-भाषा में कबीर और उनके शिष्य धर्मदास के प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गई हैं। इनमें प्रयुक्त छंद हैं—दोहा, चौपाई तथा सोरठा। कहते हैं, आपके द्वारा रचित 'कबीर-बीजक की टीका' तथा और भी हस्तलिखित पुस्तक उक्त रोसड़ा मठ में सुरक्षित हैं।

उदाहरण

धर्मदास तुम्ह सन्त सुजाना, एतना बात पुछौ मैं तो आना।
सत सुकीत अग्या मोहि दीन्हा. जीव छोड़ाए काल सोलीन्हा॥
नर नारी जीव सकल जहाना, भ्रम वसो जीव काल समाना।
पाचम जनम राजा परवासा, बहुतो करहो भोग बोलासा॥
राजा घर होए कन्या कुमारी, जानहो ताही बहुत नरनारी।
सखी सह लोन करै रंगराता, मातुपीता तेहि सुन्दर भ्राता॥[३]

गजसिंह

आप मिथिलाधिपति महाराज भैरवसिंह के पुत्र और असमति देवी के पति पुरुषोत्तम देव 'गरुड़नारायण' के आश्रित कवि थे।[४]

महाकवि विद्यापति के एक पद के आधार पर आप उनके समसामयिक माने गये हैं।

आपने कुछ मैथिली-पदों की रचना की थी, जिनमें दो 'रागतरंगिणी' में संगृहीत हैं। आपके एक-दो पद लोककंठ में भी मिलते हैं।

---

१. 'कबीर-वचनवंशीय मठ' रोसड़ा (दरभंगा) के वर्त्तमान महन्थ श्रीबलदेवदासजी से प्राप्त सूचना के आधार पर।

२. इन तीनों की हस्तलिखित प्रतियाँ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रन्थ-शोध-विभाग के संग्रहालय में संगृहीत हैं।

३. हस्तलिखित 'त्रियाबोध' से।

४. A History of Maithili Literature (वही), PP. 202-203,

आपने 'काव्य-प्रकाश' और 'काव्य-प्रदीप' की टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त 'कंसनारायण पदावली' में मैथिली में रचित ग्यारह पद ऐसे मिलते हैं, जिनके रचयिता भी आप ही कहे जाते हैं। उक्त पदों में से सात[१] में तो कवि के नाम के साथ उनके आश्रयदाता (कंसनारायण) का नाम आया है और शेष चार[२] में केवल कवि का नाम।

उदाहरण

(१)

साए साए कौं लागि कौतुकें देखल निमिष लोचन आधे ॥
मोर मन मृग मरम बेधल बिषम वान वेआधे।
गोरस बिरस वासि विसेषल छिकेंहुँ, छाडल गेहा॥
मुरलि धुनि सुनि मन मोहल विकेहुँ, भेल सँदेहा।
तीर तरङ्गिनि कदँव कॉनन निकट जमुना घाटे॥
उलटि हेरैतें उवटि परल चरन चीरल काटे।
सुकृत सुफल सुनह सुन्दरि गोविन्द बचन सारे।
सोरमरमन कंसनराएन मिलत नन्द कुमारे॥[३]

(२)

उमत जमाए सखि हे करु।
उचित न विहि तोहि, की देखि लिखल मोहि, गौरि कुमारि रहथु बरु;
धन सम्पति हर, एकओो न थिक घर, की देखि धैरज मन धरु॥
बाघ-छाल परिहन, कलित उरग तन, के परिछए, देखि सखि डरु।
ललित गौरि छवि, भनथि 'गोविन्द' कवि, लोचन नीर निरखि ढरु॥[४]

❋

चन्द्रकला

आप तरौनी ग्राम (दरभंगा) की रहनेवाली थीं।[५]

आप महाकवि विद्यापति की पुत्रवधू थीं। विद्यापति के तीन पुत्रों में आपके पति कौन थे इसका निश्चय नहीं हो सका है। विद्वानों का अनुमान है कि विद्यापति के द्वितीय पुत्र, प्रसिद्ध ज्यौतिष-ग्रंथ 'देवज्ञ-बांधव' के रचयिता 'हरपति' ही आपके पति थे।[६]

---

१. ५५, ५७, ५६, १०१, १०२, १०७, तथा १२५ संख्यक पद।

२. ७२, ६६, १३६ तथा १४६ संख्यक पद।

३. रागतरंगिणी (वही), पृ० १००-१०१। श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में भनिता बदलकर यह पद विद्यापति के नामपर संगृहीत है। भनिता इस प्रकार है—

सुकृति सुफल सुनह सुन्दरि विद्यापति वचन सारे।
कंसदलन नारायन सुन्दर मिलल नन्द कुमारे॥८॥

वही, पद सं० ५६, पृ० ३२।

४. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ८, पृ० ४-५।

५. महाकवि विद्यापति (वही), पृ० ७।

६. वही, पृ० ७।

आप परम विदुषी और संस्कृत की प्रकाण्ड पण्डिता थीं। लोचन-कृत 'रागतरंगिणी' में आपके द्वारा रचित एक पद संगृहीत है। इस पद के अन्त में लोचन ने टिप्पणी दी है—'इति विद्यापतिपुत्रवध्वाः'।

उदाहरण

स्निग्ध कुञ्चित कोमलकुचगण्डमण्डित कोमलम्।
अधरबिम्बसमानसुन्दर सरदचन्द्र निभाननम्॥

जय कम्बुकण्ठ विशाललोचन सारमुज्वल सौरभम्।
बाहुवल्लि मृणाल पङ्कज हारशोभित ते शुभम्॥

शोभय सुन्दरिममहृदयं गद्‌गद हास सुदति निपुणम्।
उरपीन कठिन विशालकोमल यति युग्म निरन्तरम्॥

श्रीफलाकमला विचित्र विधातु निर्म्मल कुचवरम्।
श्यामा सुवेषा त्रिवलि रेखा जघन भार विलम्बिते॥

मत्तगजकर जघन युगवर गमन गतिवरटाजिते।
सुललित मन्द गमन करइ, जनि पतिसङ्ग वरटा भमइ॥

अतिरूपयौवन प्रथम सम्भव किं वृथा कथया प्रिये।
तेजह रूप विमोह परिहर शोक चिन्तित चिन्तये॥

उपयात मदन व्याधि दुस्सह दहए पावक सेवनम्।
पवन दिसें दिसें दहए पावक युग्म दारजमम्बरम्॥

श्यामासवन्दिते अतिसमय गीत सुशोभिते।
आत्मदान समान सुन्दरि धार वर्षति सिञ्चये॥

सिञ्चह सुन्दरि ममहृदयम्, अधरसुधामधुपानमियम्।
चन्द्र कवि जयदेव मुद्रित मानतेज तोहें राधिके॥

वचन ममधर कृष्ण अनुसर किन्तु कामकला शुभे।
चन्द्रकलाहे वचन करसो, मानिनि माधव अनुसरसो॥[1]

❀

---

१. रागतरंगिणी (वही), पृ० ५३-५४। लोककंठ में 'चन्द्रकला' के नाम पर एक और पद मिलता है। किन्तु वही पद कुछ परिवर्त्तित-परिवर्द्धित रूप में 'विद्यापति' के नाम पर भी प्राप्त है। अतः, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वस्तुतः वह पद किसका है। पद इस प्रकार है—

चानन भेल विषम शर रे, भूषण भेल भारे।
सपनहु ने हरि आएल रे, गोकुल गेल हारे॥
खन खन हरी बिलोकए रे, खन करए पुकारी।
उधो जाए मधेपुर रे, कहु इ परचारी॥
'चन्द्रकला' नहि जीवत रे, बध लागत भारी॥

चतुर्भुज[१]

आपका नाम 'चतुर चतुर्भुज' भी कहा जाता है। किन्तु, वस्तुतः 'चतुर' अंश का आपके वास्तविक नाम का विशेषणमात्र समझना चाहिए।

आपका निवास-स्थान मिथिला कहा गया है।[२]

आपने संस्कृत में 'तात्पर्य-वर्णन' (महाभारत की टीका), 'गीतगोपाल' तथा 'हरिचरित' नामक ग्रंथों की रचना की थी। इनमें अन्तिम ग्रंथ की रचना श्रीहर्ष के 'नषधचरित' की परम्परा में हुई है। मिश्रबन्धुओं ने आपके एक और ग्रंथ 'भवानी-स्तुति' की चर्चा की है।[३] मैथिली में कृष्ण-सम्बन्धी भी बहुत-से पदों की रचना आपने की थी, जिनमें से बारह 'कंसनारायण-पदावली' में संगृहीत हैं। आपका एक पद 'रागतरंगिणी' में भी मिलता है।

उदाहरण

(१)

साँझक अतिथ भागें विहिआन, विमुखें पापवड अछए गेआन।
हमरेओ कन्त वसए परदेश, अथिक पथिक देखिमोहि कलेस॥
पथिकवास भमि अनतए लेह, हमरा दोसर तेसर नहि गेह।
चतुरचतुरभुज ई रस जानि, कौसले अभिमत करए सआनि॥[४]

(२)

नव तनु नव अनुराग। माधव। नव परिचय रस जाग॥
दुहु मन वसु एक काज। माधव। आँतर भए रहु लाज॥
दिन दिन दुहु-तनु छीन। माधव। एकओने अपन अधीन॥
विनय न एको भाख। माधव। निअ निअ गौरव राख॥
हृदय धरिअ जत गोए। माधव। नयन बेकत तत होए॥
चतुर 'चतुर्भुज' भान। माधव। प्रेम न होए पुरान॥[५]

❀

१. डॉ० जयकान्त मिश्र ने अपने ग्रंथ में इस नाम के तीन कवियों की चर्चा की है। उन्होंने एक को 'साहित्य-विलास' (काव्य-प्रकाश के पंचम अध्याय की टीका) का रचयिता, दूसरे को 'अद्भुत-सागर' का प्रणेता और तीसरे को 'विद्वाकर-सहस्रकम्' नामक ग्रंथ में उल्लिखित व्यक्ति कहा है। A History of Maithili Literature (वही), PP. 211-212 तथा 417.

२. (मिश्रबन्धु-विनोद), मिश्रबन्धु तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०, पृ० ९६९।

३. वही, पृ० ९६९।

४. रागतरंगिणी (वही), पृ० ११०।

५. मैथिलीगीत-रत्नावली (वही), पद सं० ३५, पृ० १९।

जीवनाथ

आप मिथिला के निवासी थे। आपका जो एक पद 'रागतरंगिणी' में मिला है, उसके आधार पर मेधादेइ के पति 'रूपनारायण' ही आपके आश्रयदाता थे।[१]

आपके कुछ पद लोककंठ में भी मिलते हैं, जिनमें शिव के विभिन्न रूपों का वर्णन है।

उदाहरण

सखि मधुरिपु सन के कतए सोहाओन
जे विश्व तन्हिक उपाम हे।
तसु मननेओछन सरद सुधानिधि
पङ्कज के लेत नाम हे।।ध्रु०।।
सखि आज मधुरिपु देखल मोञे हटिआ
लोचन जुगल जुडएला।
अधरवाँहि लोचने जखनें निहारलन्हि
वाँक कइए भौंह भङ्गा।।
तखनुक अवसर जागल पचसर
थानें थानें गेल अङ्गा।
दरसन लोभे पसार देल हमें
सखिमुखे सुनि वड रसी।।
तखने उपजुरस भेलिहुँ परवस
विसरलि दुधहुँ कलसी।
दानकलपतरु मेदिनि अवतरु
नृप हिन्दू सुलताने।।
मेधादेइपति रूपनराएन
प्रणवि जीवनाथ भाने (हे)।[२]

*

१. 'रूपनारायण' नाम के कई राजा हो गये हैं। महाकवि विद्यापति के आश्रयदाता महाराज शिवसिंह को भी 'रूपनारायण' कहा जाता था। कुछ विद्वानों की राय है कि इन्हीं की एक पत्नी 'मेधादेवी' थीं। इसी आधार पर डॉ० विमानविहारी मजूमदार आपको शिवसिंह का समकालीन मानते हैं।
—Patna University Journal (vol. IV, No. 1, Jan. 1949), P. 6.

२. रागतरंगिणी (वही), पृ० १११-१२।

दशावधान ठाकुर[१]

आपका निवास-स्थान मिथिला में था। आपने मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी। उन पदों में एक 'रागतरंगिणी' में संगृहीत है।

उदाहरण

उपरे पयोधर नखरेख सुन्दर मृगमद पङ्के लेपला ॥
जनि सुमेरु ससिखण्ड उदित भेल जलधरजालें झाँपला
अभिरानि हे कपट करह कों लागी।
कोन पुरुष गुने लुबुध तोहरमन रयनि गमग्रोलह जागी ॥
कारनें कओने अधर भेल धूसर पुनु कोनें आरत देला।
दूधक परसें पवार धवल भेल अरुन मजिठ भएगेला ॥
नविपनारि गजें गंजि नडाउलि परसलि सूर किरने।
ऐसन देखिय कपट करह जनु बेकत नुकाओब कओने ॥
दसअवधान भन पुरुषपेम गुनि प्रथम समागम भेला।
आलमसाह प्रभुभाविनि भजिरहु कमलिनि भमर भुलला ॥[२]

❀

(कविराज) भानुदत्त[३]

आपका नाम 'भानुकर' भी मिलता है।

आप दरभंगा जिले के 'सरिसब' ग्राम-निवासी थे।[४] आपके पिता का नाम गणपति[५] और पितामह का नाम म०म० महादेव था। आपका विवाह 'विवादचन्द्र' और 'पदार्थ-चन्द्र' के रचयिता प्रसिद्ध विद्वान् म०म० पं० मिसरू मिश्र की बहन से हुआ था। आपके

१. 'दशावधान' शब्द का अर्थ 'दस वस्तुओं पर एक साथ अवधान रखनेवाला 'व्यक्ति' होता है। इस गुणवाचक शब्द का प्रयोग अनेक व्यक्तियों की उपाधि के रूप में भी किया गया है। कुछ विद्वान् इसे महाकवि विद्यापति की एक उपाधि मानते हैं। किन्तु डॉ० जयकान्त मिश्र के पास की 'कंसनारायण-पदावली' में एक नाम 'दशावधान ठाकुर' आया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह किसी व्यक्ति की उपाधि न होकर उसका नाम है। 'पंजी-प्रबंध' में विद्यापति के समकालीन एक 'नरपति ठाकुर' नाम के कवि मिलते हैं, जिनका विरुद 'दशावधान' था। इनके पिता रुचिकर ठाकुर बताये जाते हैं। महाकवि विद्यापति के एक पुत्र भी नरपति ठाकुर थे। पता नहीं इनका विरुद क्या था।

२. रागतरंगिणी (वही), पृ० ८६।

३. आपके सम्बन्ध में विशेष विवरण के लिए देखिए पं० रमानाथ झा (दरभंगा) का लेख 'Kaviraja Bhanudatta'—Patna University Journal (vol. III, Nos. 1 & 2, Sept. 1946-Jan. 47), PP. 1-14.

४. वही, पृ० १४।

५. 'रस-पारिजात' में इनका नाम 'गणेश्वर' और 'गीता-गौरीपति' में 'गणनाथ' मिलता है।
—वही, पृ० ११।

एक पुत्र का भी पता चलता है, जिसका नाम जनार्दन उपनाम 'जानू') था। कुछ विद्वान् कृष्णमिश्र-रचित 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के टीकाकार म०म० रुचिकर को भी आपका पुत्र बतलाते हैं।

आपने अपनी एक कृति में चार-चार राजाओं के प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—'निजामशाह', 'राजावीरभान', 'राजाकृष्ण' तथा संग्रामशाह'। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनमें आपके आश्रयदाता कौन थे।

संस्कृत में आपके चार ग्रंथ मिलते हैं—'रस-मंजरी'[१], 'रस-तरंगिणी', 'रस-पारिजात[२] और 'कुमार भार्गवीय चम्पू'। आपने मैथिली में भी पदों की रचना की थी, जिनमें से एक, जो मिथिला-नरेश नरसिंह के पुत्र तथा धीरसिंह और भैरवसिंह के सौतेले भाई चन्द्रसिंह के प्रति है, विद्यापति-पदावली की नैपाली पोथी में संगृहीत है।

उदाहरण

कुमुदबन्धु मलीन भासा
चारु चम्पक बन विकासा
शुद्ध पंचम गाव कलरव
कलय कण्ठी कुंज रे॥
रे रे नागर जो न देखव
छोड़ अंचल जाव पथ
नहि पथिक संचर
लाज डर नहि तो पराणी
दे मेराणी रे॥
सुनिअ वृन्दाजनक रोरा
चक चको विरह थोरा
निसि विरामा सघन
हकइत मुछना रे॥
धोए हलु जनि कएल उजल
अबहु न बल्लभ तुअ मनोरथ
काम पुरओ रे॥
हृदय उखलु मोतिम हारा
निफुल फुलु मालति माला
चन्द्रसिंह नरेस जीवओ
भानु जम्पए रे॥[३]

❀

---

१. इस ग्रंथ पर अनन्त मिश्र ने १६३६ ई० में 'व्यंग्यार्थकौमुदी' नामक व्याख्या लिखी थी।

२. इस ग्रंथ का प्रकाशन पं० बदरीनाथ झा के सम्पादन में, मोतीलाल बनारसीदास (लाहौर) के यहाँ से १६३६ ई० में हुआ था।

३. विद्यापति (वही), पृ० ६०८। श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में यह पद कुछ परिवर्त्तनों के साथ विद्यापति के नाम पर संगृहीत है।—वही, पद सं० ३२२, पृ० १६४।

मधुसूदन[१]

आप मिथिला-निवासी थे।[२] आपने मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी। आपका मैथिली में रचा एक पद 'रागतरंगिणी' में संगृहीत है।

उदाहरण

कीपर वचनें कन्तै देल कान,
की पर-कामिनि हरल गेआन।
की तन्हि बिसरल पुरुबक नेह,
की जीवन आवे पड़ल सँदेह॥
कीं परिनत भेल पुरुबक पाप,
की अपराधे कएल विहिं साप।
की सखि कओन करब परकार,
की अविनय दँहु परल हमार॥
की हमें कामकला एक घाटि,
की दहुँ समयक इहे परिपाटि।
मधुसूदन भन मने अवधारि,
की धैरजें नहि मिलव मुरारि॥[३]

❀

माधवी

आप मिथिला-निवासिनी महिला थीं।[४] प्रसिद्ध है कि आप चैतन्यदेव (सन् १४८५-१५२७ ई०) के समय में हुई थीं। इन दिनों आपकी अधिक रचनाएँ नहीं प्राप्त होतीं, किन्तु इतना निश्चय है कि आपने कुछ बड़े ही ललित पदों की रचना की थी।

उदाहरण

राधा माधव विलसहि कुँजक माझ
तनु तनु सरस परस रस पीबइ
कमलिनी मधुकर राज
× × ×
सचकित नागर कापइ थर थर
शिथिल होयल सब अंग।
गद्गद् कंठ राध भेले अदरस,
कव होयब तुझ संग॥

---

१. मध्यकालीन-मिथिला में इस नाम के पाँच-छह साहित्यकारों का पता चलता है, जिनकी रचनाएँ संस्कृत में प्राप्य हैं। यह कहना कठिन है कि आपने संस्कृत में कौन-सी रचना की थी।
२. A History of Maithili Literature (वही), P. 212।
३. रागतरंगिणी (वही), पृ० १०२।
४. मध्यकालीन हिन्दी-कवयित्रियाँ (डॉ० सावित्री सिन्हा, प्रथम सं०, १९५३ ई०), पृ० २१४।

सो धनि चंद मुख नैन किये हेरबै
सुनबै अमियमय बोल।
इह माँझे हिरदै ताप किये मेटब,
सोइ करब किये कोल ॥
आइसन कतहु बिलपति माधव,
सहचरि दूरहि हँसी।
अपरूप प्रेम विषादित अन्तर,
कह ताहि माधवी दासी ॥[1]

❀

यशोधर

आपकी उपाधियाँ 'नव-कविशेखर' और 'कविशेखर' भी मिलती हैं। आपका निवास-स्थान मिथिला था। आप बंगाल के नवाब हुसैनशाह (सन्१४९३-१५१९ई०) के समय में हुए थे। 'रागतरंगिणी' में आपका एक पद उद्धृत है।

उदाहरण

तोहँ हँमँ पेम जतेंदुरें उपजल, सुमर विसे परिपाटी।
आवे पर रमनि रङ्गरस भुलला है, कओन कला हमें घाटी ॥
भमर बर मोरे बोले बोलब कन्हाइ।
विरहतन्त जदि जान मनोभव, को फल अधिक जनाइ ॥
सुनिज सुमेरु साधुजन तुलना, सबकाँ महिमा धने।
तन्हि निज लोमें ठाम जदि छाडब, गरिमा गहवि कओने ॥
पुरुषहृदय जल दुअओ सहजें चल, अनुबधें बाधें थिराइ।
से जदि न थिर रह सहसें धारें वह, उचे ओ नोच पथे जाइ ॥
भनइ जसोधर नर कविशेखर, पुहवी तेसर काँहाँ।
साह हुसेन भृङ्ग सम नागर, मालति सेनिक ताँहाँ।[2]

१. मध्यकालीन हिन्दी-कवयित्रियाँ (वही), पृ० २१४।

२. रागतरंगिणी (वही), पृ० ६७। श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में यह पद कुछ परिवर्त्तन के साथ, भनिता बदलकर विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। भनिता इस प्रकार है—

भनइ विद्यापति नव कविशेखर पुहुवी दोसर कहाँ।
साह हुसेन भृङ्ग सम नागर मालति सेनिक जहाँ ॥१०॥
—वही, पद सं० ४८४, पृ० २४५।

रुद्रधर उपाध्याय

आप मिथिला-निवासी थे। आपके पिता का नाम 'लक्ष्मीधर' था। आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। संस्कृत में आपके लिखे 'श्राद्ध-विवेक', 'पुष्पमाला', 'वर्षकृत्य', 'व्रत-पद्धति', 'शुद्धि-विवेक' आदि ग्रंथ मिलते हैं। आपने कुछ मैथिली-पदों की भी रचना की थी, जिनमें से एक विद्यापति-पदावली की नैपाली-पोथी में प्राप्त है।

उदाहरण

बोलितहु साम साम पए बोलितह
नहि से से त विसवासे।
अइसन पेम मोर विहि विघटाओल
दूना रहलि दुरासे॥
सखि हे कि कहब कहइ न जाए।
मन्द दिवस फल गयहि न पारिअ
अपदहि कुपुत कन्हाइ॥
जलहु कथन जओ भरमहु बोलितहु
जलथल थपितहु वेदे।
अनुपम पिरिति पराइति पलले
रहत जनम धरि खेदे॥
अइसना जे करिअ से नहि करवे
कवि रुद्रधर एहु भाने॥[१]

❀

लक्ष्मीनाथ[२]

रचनाओं में आपका नाम 'लखिमिनाथ' मिलता है, जो, आपके मूल नाम का ही विकृत रूप है। आप मिथिला के निवासी थे।[३] आपने मैथिली में बहुत-से पदों की रचना की थी। उक्त भाषा के आप बड़े ही लोकप्रिय कवि हो गये हैं। विद्यापति-पदावली की नैपाली-पोथी में आपका एक, और 'कंसनारायण-पदावली' में आपके चार[४] सुन्दर पद संगृहीत हैं।

---

१. विद्यापति (वही), पृ० ६०९। श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में यह पद विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। श्रीगुप्त महोदय ने अन्त में एक पंक्ति इस प्रकार जोड़ दी है—

राजा सिवसिंह रूपनारायन, लखिमादेवि रमाने॥८॥

—वही, पद सं० ५०१, पृ० २५३॥

२. इस नाम के कई व्यक्ति मिथिला में हो गये हैं। सुगाँव अथवा ओइनीवंश के अन्तिम राजा का भी यही नाम था, किन्तु पद-रचना में वे अपना नाम 'कंसनारायण' रखा करते थे।

३. A History of Maithili Literature (वही), P. 218

४. ३३, ३६, ५१, और १०३ संख्यक पद।

उदाहरण

माधव ए बेरि दुरहि दुर सेवा ।
दिन दस धैरज धरु यदुनन्दन
हमे तप बरि बरु देवा ।।[१]
करइ कुसुम बेकत मधु न रहवे
हठ जनु करिअ मुरारि ।
तुअ अह दाप सहए के पारत
हमे कोमल तनु नारि ।।
आइति हठ जओ करबह माधव
जओ आइति नहि मोरी
कामि बंदरि उपभोग न आओत
उहे की फूल पओवइ तोली ।।
एतिखने अमिअ बचन उपभोगह
आरति अदिने देवा ।
लखिमिनाथ भन सुन यदुनन्दन
कलियुग निते मोरि सेवा ।।[२]

❀

(परमहंस) विष्णुपुरी[३]

अपनी रचनाओं में आपने अपने को कहीं 'तीरभुक्तिपरमहंस' आर कहा 'तीरभुक्ति संन्यासी' कहा है। संन्यास के पूर्व आपका नाम 'रामपति' या 'रमापति' था।[४]

आप दरभंगा जिले के तरौनी-ग्राम-निवासी थे।[५]

---

१. इस चरण का यह पाठान्तर भी मिलता है—'दिन दस धैरज धरु यदुनन्दन हमेहि उमगि रस देबा'।

२. विद्यापति (वही), पृ० ६०६। श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में यह पद विद्यापति के नाम पर संगृहीत है।—वही, पद सं० १६३, पृ० ८४।

३. इसी नाम का विकृत-रूप 'विधुपुरी' भी कहीं-कहीं मिलता है। आपके विशेष परिचय के लिए देखिए पं० रमानाथ झा का लेख 'Parmhansa Vishnupuri; His identity and age.—Patna University Journal (vol. I, No. 2, Jan. 1945), PP. 7-20. तथा श्रीयुत मंजूलाल मजूमदार का लेख 'संतविष्णुपुरी जी और उनकी भक्ति रत्नावली' 'हिन्दुस्तानी' (वही, जनवरी १६३८ई०), पृ० १-१६।

४. संन्यास के पूर्व के आपके दो और नामों (विष्णुशर्मा और वैकुण्ठपुरी) की चर्चा कुछ लेखकों ने की है :—देखिए 'विष्णुभक्तिरत्नावली' (कलकत्ता-संस्करण) की प्रस्तावना (Patna University Journal)

५. Patna University Journal (वही), P. 11, आपके नाम पर उक्तग्राम में 'विष्णुपुरैनी डीह' आज भी प्रसिद्ध है।

आप श्रीधर के पौत्र और रतिधर के पुत्र थे। आपकी माता का नाम 'मौरा' था। कहते हैं, संन्यास लेने के बाद आपने एक विवाह किया था। महादेव नाम के आपके एक पुत्र की चर्चा मिलती है, जो आपकी इसी द्वितीय पत्नी से उत्पन्न कहे जाते हैं। दरभंगा-राज के संस्थापक म०म० महेश ठाकुर आपके निकट सम्बन्धियों में थे। 'चैतन्य-चरितामृत' के लेखक कृष्णदास कविराज ने आपको माधवेन्दुपुरी का, 'गौड़ज्ञानोद्देशदीपिका' के लेखक कवि कर्णपुर ने आपको जयधर्म का और हिन्दी-विश्वकोषकार ने आपको मदनगोपाल का शिष्य कहा है। प्रथम मत में विश्वास करनेवालों का कहना है कि वृद्धावस्था में आपका साक्षात्कार महाप्रभु चैतन्यदेव से भी हुआ था। 'प्रेमचन्द्रिका' के रचयिता श्रीपरमानन्दपुरी आपके मित्र कहे जाते हैं।

आपकी गणना बंगाली वैष्णव-धर्म के प्रवर्त्तकों में होती है। आपका तथा आपकी रचनाओं का जितना अधिक प्रभाव उक्त धर्म पर पड़ा, उतना कम ही व्यक्ति अथवा रचना का पड़ा होगा।

आप संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। संस्कृत में लिखा आपका एक ग्रंथ 'विष्णु-भक्ति-रत्नावली'[1] मिलता है। इसकी रचना के सम्बन्ध में तीन विभिन्न किंवदन्तियाँ हैं। तीनों से निष्कर्ष-रूप में यह ज्ञात होता है कि आपने इसकी रचना पुरी (पुरुषोत्तमक्षेत्र) के श्रीजगन्नाथदेवजी के चरणों पर अर्पित करने के लिए की था।[2] मैथिली में भी आपने कुछ पदों की रचना की थी। आपके द्वारा रचित एक पद विद्यापति-पदावली की नैपाली-पोथी में प्राप्त है।

उदाहरण

(१)

प्रथम बएस जत उपजल नेह।
एक पराण दौ एकजनि देह॥
तइसन पेम जदि विसरह भोर।
काठक चाहिक विहि तत्र तोर॥
ए प्रभु इ कुवन तेजह नारि।
तोह बिनु नागर कओन तुहारि॥

---

१. इस ग्रंथ का बंगला में अनुवाद १५वीं शती में ही 'कृष्णदास लौरिया' नामक व्यक्ति ने किया था। कलकत्ता से बंगाब्द १३१८ में पं० मनमोहन वन्द्योपाध्याय, द्वारा किया हुआ उसका एक बँगला अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। १६१२ ई० में प्रयाग के पाणिनि-ऑफिस से भी इसके प्रकाशित होने की सूचना मिली है।

२. 'हिन्दुस्तानी' (वही), पृ० ३। हिन्दी-विश्वकोषकार ने इसी नाम के एक अन्य कवि की चर्चा करते हुए उन्हें 'भगवद्भक्ति-रत्नावली,' 'भागवतामृत' 'हरिभक्ति-कल्पलता,' और 'वाक्य-विवरण' नामक चार ग्रंथों का रचयिता बतलाया है। किन्तु श्रीमंजुलाल मजूमदार का अनुमान है कि वे आपसे अभिन्न व्यक्ति रहे होंगे।—वही, पृ० ३।

सुपुरुष चिन्हिक एहे परिणाम ।
जेसन प्रथम तैसन अवसान ।।
टुटल पेम नहिं लाग एक ठाम ।
विष्णुपुरी कह बुझसि विराम ॥[१]

(२)

हे सखि हे सखि कहिओ न जाहे । नन्दक अङ्गना कइसन उछाहे ॥
नन्दक नन्दन त्रिभुवन सारे । यशोदें पाओल ननुत्रे कुमारे ।।
मन भेल हरखित देखि तनुरूपे । जनि भेल उदित दीप अंधकूपे ।।
आसलता पल्लव जनिदेला । मेदिनि सुरतरु-आँकुर भेला ।।
'विष्णुपुरी' कह सुनह गोआरी । परम जोति अवतरल मुरारी ॥[२]

श्रीधर

आपकी रचनाओं में आपका नाम 'सिरिधर' मिलता है, जो आपके मूल नाम का ठेठ-रूप है ।

आपका निवास-स्थान मिथिला था । आप महाराज कंसनारायण के दरबार में थे । आपका लिखा 'विद्याविनोद-नाटक-तंत्र' नामक एक ग्रंथ नैपाल के राजगुरु, हेमराज के पुस्तकालय में मिला है । आपने मैथिली में भी कुछ पदों की रचना की थी, जिनमें एक विद्यापति-पदावली की नैपाली पोथी में संगृहीत है ।

उदाहरण

का लागि सिनेह बढ़ाओल, सखि अहनिसि जागि ।
भल कए कपट अतुलओलन्हि हम अबला बध लागि ।।
मोरे बोले बोलब सुमुखि हरि परिहरि मने लाज ।
सहजहि अथिर जौबन धन तहु जदि बिसरए नाह ।
भेलहु धनक कुसुमसम जीवन गेलेहि उछाह ।।
पिया बिसरल तह सबे लटहु
कवि सिरिधर हेन भान ।
कंसनरायन नृपवर मोरदेवि रमान ।।[३]

❀

---

१. विद्यापति (वही), पृ० ६०५ ।
२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ७, पृ० ४ ।
३. विद्यापति (वही), पृ० ६०६ ।

हरपति

महाकवि विद्यापति के द्वितीय पुत्र होने के कारण आपका निवास-स्थान दरभंगा-जिले का बिसफी-ग्राम माना जाता है। कहा जा चुका है कि कुछ विद्वानों के अनुसार आप प्रसिद्ध कवयित्री 'चन्द्रकला' के पति थे।[१] आप ज्यौतिष-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् कहे गये हैं। उक्त विषय पर संस्कृत में आपके लिखे दो ग्रंथ मिलते हैं—'व्यवहार-प्रदीपिका' तथा 'दैवज्ञ बान्धव'।[२] प्रथम ग्रंथ में आपने अपने को 'मुद्राहस्तक' (सिक्के की मुहर रखनेवाला) कहा है।

आपने मैथिली में भी कुछ पदों की रचना की थी।

उदाहरण

(१)

विचित्रस नयन पसारल हरिक सिनेह।
गुरुजन गुरुतर डरे सखि, उपजल जिवहुँ सन्देह।
दुरजन भीम भुजंगम बम कुवचन विष सार।
तेंह तीखें विषे जनि मारवल लाग परम कनियार।
परिजन परिचय परिहर हरिहर परिहर पास।
सगर नगर बड़ पुरजन घरेघरे कर उपहास।
पहिलुक पेमक परिभव दुसह सकल जग जान।
धैरज धनि धरु मने गुनि कवि 'हरपति' भान।[३]

(२)

करु परसन मुख रे। होअओ हृदय-सुख रे।
न गोअ वदन-विधु रे। बरिसओ मृदु मधु रे।
न करु कसिस धनु रे। हनए मदन तनु रे।
हमे अनुगत जानि रे। बिहुँसि मिलह धनि रे।
तोहर हमर चित रे। दुइ रह अनुचित रे।
कवि 'हरपति' कह रे। पिय रसवश रह रे॥[४]

❀

१. देखिए इसी पुस्तक में कवयित्री 'चन्द्रकला' का परिचय।

२. इस ग्रंथ में लेखक का नाम 'हरदत्त' लिखा है। इसी कारण कुछ विद्वान् इसे 'हरपति' का ग्रंथ होने में संदेह करते हैं।

३. विद्यापति-पदावली (श्रीकुमुद विद्यालंकार, प्रथम सं०, २०११ वि०, भूमिका), पृ० ११।
श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में यह पद भनिता बदलकर विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। भनिता इस प्रकार है—पहिलुक पेमक परिभव दुसह सकल जन जान।
धैरज धनि धर मने गुनि कवि विद्यापति भान॥४॥
—वही, पद सं० २७२, पृ० १३८।

४. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ४, पृ० ३।

सोलहवीं शती

कृष्णदास[1]

सुप्रसिद्ध कवि गोविन्ददास के पिता होने के कारण आप दरभंगा जिले के लोहना-ग्राम-निवासी माने जाते हैं। गोविन्ददास के अतिरिक्त आपके तीन पुत्र[2] और थे। वे भी विद्वान् और कवि हुए। आपने मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी।

उदाहरण

वर देखह सखि आइ। हेमत जगत जेहि लएलाह जमाइ॥
पाँच वदन शिर जटा। एक पञ् सोभए ललाट शशिफोटा॥
विपरित लोचन तीनी। ताहि में एक बरए अगिनी॥
बयस बरख लाख चारी। बारि भोरि भोरि गौरी कुमारी॥
एहन मिलल धिआ नाहे। कोन परि होएत गौरि निरबाहे॥
कर जोड़ि भन कृष्णदासा। गौरि-सहित हर पूरथु आशा॥[3]

❀

गदाधर

आपका नाम 'गजाधर' भी मिलता है, जो आपके मूल नाम का विकृत रूप है।

आप मिथिला-निवासी और मिथिला के लक्ष्मीनारायण के धर्माधिकरणिक थे। आपके ही वंश में बनैली-राज्य (पूर्णिया) के संस्थापक राजा दुलार चौधरी हुए। आपने मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी।

उदाहरण

आसलता हम लाओल सजनी प्रेम पटाओल आनि।
उठितहिं अँकुर भाङल, किदहुँ दैवसँ कानि।
कतए गेलाह से बालम, जनि बिनु जगत अन्हार॥
अपन करम दोसेँ सुन्दर, उसरल मदन-पसार।
चान-चऊगुन तनि मुख रुचिर अंग अमलान॥
खञ्जन सम दुहु लोचन, हेरितहिँ हरए गेआन।
अधर सुधा-मधु-सागर, वचन अमिअ-रस-सार।
सुमिरि तनिक गुण गौरव, नयन बहए जलधार॥
राए 'गदाधर' गाओल, मदन सहित अनुराग।
प्रियजन बिनु जगजीवन, केवल गरुअ अभाग॥[4]

❀

---

१. इस नाम के एक कवि १५वीं शती में भी हो गये हैं। उनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

२. इनके नाम इस प्रकार हैं—गंगादास, हरिदास और रामदास। गोविन्ददास के अतिरिक्त इन सभी के भी परिचय यथास्थान दिये गये हैं।

३. मैथिल-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० २३, पृ० १३।

४. वही, पद सं० १०, पृ० ५-६।

गोविन्ददास[१]

आप मैथिली के एक असाधारण कवि, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्[२] और भगवान् कृष्ण के अनन्य भक्त थे।[३]

आपका जन्म दरभंगा जिले के लोहना नामक ग्राम के एक श्रोत्रिय ब्राह्मण-कुल में हुआ था।[४] आपके पिता का नाम कृष्णदास झा था। आप चार भाई थे।[५] चारों प्रसिद्ध विद्वान् और कवि हुए। आपने अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं 'भूपनरोत्तम' की चर्चा की है। कहा नहीं जा सकता, ये कौन थे। मैथिली-साहित्य में महाकवि विद्यापति के बाद आपका ही स्थान है। आपके द्वारा रचित 'कृष्णलीला' नामक एक काव्य-ग्रंथ की चर्चा सुनी जाती है,[६] किन्तु उसकी कोई प्रति अभीतक उपलब्ध नहीं हो सकी है। आपके बनाये बहुत-से फुटकर पद निश्चय ही मिले हैं। उन पदों के अर्थगांभीर्य तथा उनकी ललित एवं श्रुतिमधुर शब्द-योजना का मैथिली-साहित्य में एक विशेष स्थान है। विद्यापति के पदों की तरह बँगला-भाषाभाषियों ने आपके पदों को जितना अपनाया और प्रचारित किया उतना और किसी ने नहीं। यही कारण है कि उन पदों पर बँगला-भाषा की छाया दीखती है।

उदाहरण

(१)

भजहु रे मन नन्दनन्दन अभय चरणारविंद।
दुलभ मानुष जनम सत्संग तरह ए भवसिन्धु॥
शीत आतप बात बरषा ए दिन यामिनी जागि।
विफल सेवन कृपण दुरजन चपल सुख समलागि॥
इ धन यौवन पुत्र परिजन एतेक अछि परतीति।
कमल दल जल जीवन टलमल भजहु हरिपद नीति॥
श्रवण कीर्तन स्मरण बन्दन पादसेवन दास।
पुजन ध्यान आत्मनिवेदन गोविंददास अभिलाष॥[७]

---

१. आपके जीवन और काव्य पर दरभंगा जिले के निवासी श्रीनरेन्द्रनाथ दास ने एक सुन्दर ग्रंथ लिखा है, जो बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् से प्रकाशित होनेवाला है।

२. आपकी विद्वत्ता का पता आपके भाई रामदास जी की 'आनन्दविजय-नाटिका' से लगता है।

३. आपकी कृष्ण-भक्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध किंवदन्ती के लिए देखिए 'गोविन्द-गीतावली' (श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित, १९८९ वि०), पृ० १२।

४. गोविन्द-गीतावली (वही, भूमिका), पृ० १०।

५. भाइयों के नाम वयःक्रम से इस प्रकार थे—गंगादास झा, गोविन्ददास झा, हरिदास झा और रामदास झा।

६. पारिजातहरण (वही, भूमिका), पृ० १२।

७. गोविन्द-गीतावली (वही), पृ० २।

(२)

नन्दनन्दन संग मोहन नवल गोकुल कामिनी।
तपन-नन्दिनी तीर भल बनि भुवन मोहन लाविनी॥
ता थैया थैया बाज पखाओज मुखर कंकण किंकिणी।
विलस गोविन्द प्रेम आनंद संग नव नव रंगिनी॥
चारुचित्र दुहूक अंबर पवन अञ्चल दोलिनी।
दुहु कलेवर तरल श्रमजल मोति मरकत हेम मनि॥
उरु विलोलित बाजत किंकिणी नुपुर ध्वनि संगिया।
ग्रीवडोलिनि नयन नाचनि संग रसवति रंगिया॥[1]

(३)

कुञ्चित केसिनि निरुपम वेशिनि, रस आवेसिनि भंगिनि रे।
अधर सुरङ्गिनि अङ्ग तरंगिनि, सङ्गिनि नव नव रंगिनि रे।
सुन्दरि राधे आवए रे बनी।
व्रजरमणी गण मुकुट मनी॥ ध्रुव॥
कुञ्जर गामिनि मोतिम दामिनि, दामिनि चमक निहारिनि रे।
अभरण धारिणि नव अनुरागिनि, श्यामक हृदय विहारिणि रे।
नव अनुरागिनि अखिल सोहागिनि, पञ्चम रागिनि मोहिनि रे।
रास विलासिनि हास विकासिनि, गोविन्ददास चित चोरिनि रे।[2]

(४)

कुन्दन कनक कलित कर कङ्कण कालिन्दि कूल बिहारी।
कुञ्चित कच केसर कुसुमाकुल, कामिनि कर धारी।
जय जय जग जीवन यदुवीर।
जलधर जीति जोति जसु जोहिते युवतिक यूथ अधीर॥
पदुमिनि पानि परस पुलकायित परिजन प्रेम पसार।
पहिरन पीत पतनि पतिताञ्चल पद पङ्कज परचार॥
रमणी रमन रतन रुचिरानन, रञ्जित रति रस रास।
रसना रोचन रसिक रसायन रचयजि गोविन्ददास॥[3]

---

१. गोविन्द-गीतावली (वही), पृ० ६।
२. मिथिला-मिहिर (मिथिलांक, १९३६ ई०), पृ० ४१।
३. वही, पृ० ४१-४२।

दामोदर ठाकुर

आपका निवास-स्थान दरभंगा जिले का भौर-ग्राम था।[1] आपके पिता का नाम चन्द्रपति ठाकुर और पितामह का नाम देवठाकुर था। आप वर्त्तमान दरभंगा-राजवंश के संस्थापक महामहोपाध्याय महेश ठाकुर[2] के बड़े भाई थे। आपके सभी भाई बड़े विद्वान् थे और उन सब ने गाढ़ा (छत्तीसगढ़), बस्तर (मध्यप्रदेश), दिल्ली आदि कई दरबारों में सम्मान प्राप्त किया था।

आपके द्वारा रचित कई ग्रंथों की चर्चा की जाती है, जिनमें 'श्री १०८ विष्णु-प्रतिष्ठा' ही प्रमुख है। आपने मैथिली में भी कुछ पदों की रचना की थी।

उदाहरण

जगत जननि मा गोचर मोर। के नहिं घैल शरणागत तोर ॥१॥
सब तुरित समुचित फल पाव। हमर बिकल मनदृशोदिश धाव ॥२॥
की तोहि पबल गुरु अपराध। तैं भेल सकल मनोरथ बाध ॥३॥
होहु प्रसन्न मा दूरि करु रोष। सहज छमिय सब बालक दोष ॥४॥
कर जोरि गोचर करु दामोदर भान। अपनहिं हाथ दिअ वरदान ॥५॥[3]

धीरेश्वर

आपका निवास-स्थान मिथिला था। आप मिथिला के आइनवार-वंशीय महाराज रणसिंह 'दुर्लभनारायण' के पुत्र महाराज विश्वनाथ 'नरनारायण' के आश्रित कवि थे। आपने भी मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी, जिनमें से एक विद्यापति-पदावली की नेपाली पोथी में संगृहीत है।

उदाहरण

मुख दरसने सुख पाओला। रस विलसि ने भेला ॥
सारद चान्द सोहाओ ना। उगतहि भय गेला ॥
हरि हरि विहि विघटाउलि। गजगामिनि बाला ॥
गुन अनुभवे मन मोहला। अवसादल देहा ॥
दुलभ लोभे फल पाओला। आवे प्राण सन्देहा ॥
मेनका देवि पति भूपति। रस परिणति जाने ॥
नर नारायण नागरा। कवि धीरेसर भाने ॥[4]

---

१. मिथिला भाषामय इतिहास (बख्शी म०म० श्रीमुकुन्द शर्मा), पृ० १६-१७।

२. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथा-स्थान मुद्रित है।

३. मिथिला-गीत-संग्रह (भोल झा, चतुर्थ भाग), पृ० १।

४. विद्यापति (वही), पृ० ६०८। श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में यह पद किंचित् परिवर्त्तन के साथ विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। देखिए वही, पद सं० ४३, पृ० २३।

पुरन्दर

आपका निवास-स्थान मिथिला था। आप प्रभावती देवी के पति 'जगनारायण' नाम के किसी मोरंग-महीपति के दरबार में थे। आपके नाम के पहले कहीं-कहीं 'कुमर' शब्द मिलता है, अतः संभव है कि आप स्वयं भी किसी राजवंश के हों। मैथिली में आपके कुछ पद मिलते हैं।

उदाहरण

पुरुषसार हम आनि मिलाओल हरि न चिन्हल तोहें राही।
नीर-विन्दु बोलि हीर उपेखल एहेन भरम होअ काही॥
सुन्दरि ! दुरि करु मन अभिरोस।
अपन अकौशल निधि विघटओलह, लएबह कओनक दोस॥
कतन कुसुम-रस मधुकर बिलसए, तें नहि करिअ विषाद॥
उपगत पाहुन जँ न सम्भाखिअ, मालतिकाँ अपवाद॥
अपन अपन गौरव सब राखए, कुमर 'पुरन्दर' भान।
प्रभावति देइपति मोरङ्ग-महीपति, 'जगनारायण' जान॥[१]

❀

बलवीर

आप मिथिला-निवासी थे।[२] आपने १६०८ वि० में 'डंगव-पर्व' नामक ग्रंथ बनाया, जिसमें अधिकतर दोहा-चौपाई-छंद प्रयुक्त हैं। आपकी रचना का उदाहरण नहीं मिला।

❀

(कुमार) भीषम

आप मिथिला-निवासी और मोरंग के राजा (प्रभावती देवी या धर्मादेवी के पति और धीरसिंह के पुत्र) राजा जगनारायण के आश्रित कवि थे।[३] कहते हैं, उक्त राजा के आश्रित कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा था। आपके नाम के पहले भी कहीं-कहीं 'कुमार' शब्द भी आया है। अतः, संभव है कि आप भी किसी राजवंश के ही हों।

मैथिली में आपने कुछ पदों की रचना की थी। कंसनारायण-पदावली' में आपका एक, और 'रागतरंगिणी' में आपके तीन पद संगृहीत हैं।

उदाहरण

(१)

ससधर सहस सार बटुराव तैअओन वदन पटन्तर पाव॥
देख देख आइ, सरगक सरवस उरवसि जाइ॥ध्रुवम्॥
विविध विलोकन अति अभिराम मनहुन अवतर नयन उपाम॥
निकनिक मानिक अरुनिम जोति सहजे धवल देखिअ गजमोति॥

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० १२, पृ० ७।
२. मिश्रबन्धु-विनोद (प्रथम भाग, वही), पृ० २७०।
३. Patna University Journal (Vol. IV, No. 1, Jan. 1949), P. 6। आपके आश्रयदाता राजा लक्ष्मीनारायण भी बताये जाते हैं।

आतरात मजलें अति सेत ऐसन वसन तुलना के देत ॥
कांचिकाचि रोमावलि भास उपरँतरल हारावली फास ॥
कर कौशल मनमथ मनलाए कुचसिरिफल नहि होअए नवाए ॥
करिकर उरु उपमा नहि पाव अपनहि लाजें सङ्कोचि नुकाव ॥
हरिहर प्रनयिए भीषम भान, प्रभावति पति जगनरायन जान ॥[१]

(२)

धवल जमिनि धवल हर रे धवल चाँदन चीर।
निफलजनक विहार रे गिरिसँ विसह पिअ थीर ॥ध्रु०॥
सजनिआ नवकजौवन नवक अनुरेनबकनवअनुराग
सारिखेत समेत हेमत पिआ नहिं मोर अभाग ॥
वारि सं वरिसए गगन जल रे परसें पँचसर सोस
गरजेंचर्जो कलिका हि आलिङ्गोपा उसनिज नहिदोस ॥
धैरजधर धनिकन्त आओत कुमर भीषम भान
ईस विन्दक नरनारायन पति धरमा देइ रमान ॥[२]

❀

भूपति सिंह

आपका उपनाम 'रूपनारायण' था। 'नृपनारायण', 'नृपसिंह', 'भूपनारायण' तथा 'सिंहभूपति' आदि भी आपके नाम मिलते हैं।

ओइनवार-वंशीय मिथिला-नरेश महाराज हरिनारायण के पुत्र होने के कारण आप मिथिला-निवासी माने जाते हैं। आपका राज्य काल सन् १५४२ से ४५ ई० तक माना जाता है। आपके पुत्र महाराज 'कंसनारायण'[३] भी एक अच्छे कवि थे। आपके रचे स्फुट पद मैथिली में मिलते हैं।

उदाहरण

(१)

गौरदेह सुढार सुबदनि स्याम सुन्दर नाह।
जनि जलद ऊपरँ तडित सञ्चर सरुप ऐसन आह ॥
पीठिपरु घनस्याम वेनी देखि ऐसन भाँन।
जनि अजरहाट कपाट करेंगहि लिखनि लिखु पचवान ॥
सघन सञ्चर खन न थिर रह मनिक मेखल राव।
जनि मदन राए दोहाए दए दए जघन तसुजस गाव।
रमनि नहिं अवसाद मानय रयनिवरु अवसान।
ओजे रमनि राधा रसिक यदुपति सिंह भूपति भान ॥[४]

---

१. रागतरंगिणी (वही), पृ० ४२-४३।
२. वही, पृ० ६६।
३. इनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र मुद्रित है।
४. रागतरंगिणी (वही), पृ० ६०।

(२)

सबहुँ सखि परिबोधि कामिनि आनिदेल पहु पास रे।
जनि व्याध बाँधलि विपिन सँ मृगि तेज तीख निसास रे॥
बैसलि शयन समीप सुवदनि यतने समुखि न होए रे।
भमए मानस भेल दहोदिस देल मनमथ फोए रे।
निविड़ बन्धन नीवि कञ्चुकि अधर अधिक निरोध रे।
कठिन काम, कठोर कामिनि-मान, नहि परिबोध रे॥
सकल गात दुकूल दिढ़ अति कतहु नहि अवकास रे।
पाणि-परसे प्राण परिहर पुरति की रति आस रे॥
करब की परकार आब हम किछु न होअ अवधारि रे।
कोप-कौशल करए चाहिअ हठहिं हल जिब हारि रे॥
दिवस चारि गमाए माधव करति रति-समधान रे।
बड़ाकाँ बड़ होअ धैरज 'सिंहपति' भू भान रे॥[१]

❀

(म० म०) महेश ठाकुर

आपका निवास-स्थान दरभंगा जिले का भौर ग्राम था।[२] आप महामहोपाध्याय पं० चन्द्रपति ठाकुर के पुत्र थे। आपने प्रसिद्ध पं० पक्षधरमिश्र के शिष्य पं० शुचिधर झा से शिक्षा प्राप्त की थी। कहते हैं, बादशाह अकबर ने आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आपको ही मिथिला-राज्य प्रदान किया था। इस प्रकार, आपने मिथिला में एक नये राजवंश (खण्डवला-राजवंश) की स्थापना की थी।

आप स्वयं तो एक बड़े विद्वान् थे ही, विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। सन् १५६९ ई० के लगभग आपने अपने पुत्र गोपाल ठाकुर को राज्यभार सौंपकर काशीवास किया था। वहाँ रहकर आपने गंगा और भगवती तारा पर बहुत-सी कविताएँ की थीं।

उदाहरण

(१)

जय जय जय भय भञ्जिनि भगवति ! आदिशक्ति तुअ माया।
जनि नव सजल जलद तुअ तनु-रुचि, पदरुचि पङ्कज-छाया॥
मुण्डमाल-बघछाल छुरित छवि, लम्बित उदर उदारा॥
असि कुवलय कर काँती खप्पर, खर्व रूप अवतारा॥
विकट जटा-तट चान तिलक लस, भूषण भीषण नागे।
खल खल हास अकाल-निवासिनि मुद्रामण्डित माँगे॥

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ११, पृ० ६।

२. मिथिलाभाषामय-इतिहास (वही), पृ० ६६—६८।

तरुण अरुण सम विषम विलोचन पीन पयोधर भारे।
रक्त-रक्त रसना लइ लइ कर वदन रदन विकरारे ।।
भनथि 'महेश' कलेस-निवारिथि त्रिभुवन-तारिथि ! माता।
शववाहिनि दाहिनि देव ! अहँ रहु कि करत कोपि विधाता ॥[१]

(२)

उधारिय अधम जन जानि ।। ध्रुवम् ।।
हम वनिजार पाप बटवार, सुकृत बेसाहल सुरसरिधार ।।
जेहि खन देखल धवल जलधार, जीवन जन्म सुफल संसार ।।
सोकर निकर परस यदि भेले, मन अनुताप पाप तुरि गेले ॥
जे सब उधारल से मोर आधे, कहु मोर सुरसरि की अपराधे ।।
भनथि 'महेश' नमित्तकै शीश, तोंह करुणानिधि हम निरदीश ॥[२]

❋

रतिपति मिश्र

आप मिथिलानिवासी थे। आज भी आपके वंशधर मिथिला में ही रहते हैं। आपके पिता का नाम रामचन्द्रमिश्र था। प्रसिद्ध दार्शनिक लालगंजवासी महामहोपाध्याय पं० शंकरमिश्र आपके ही पूर्वज थे। आपने जयदेवकवि-कृत 'गीत-गोविन्द' का मैथिला-अनुवाद किया था।[३]

उदाहरण

(१)

मानए गरुअ पयोधर हारा। विषसरि मान सरस घन सारा।
माधव धनि तुअ बिरह तरासे। तेजए दहन समदीघ निसासे।
सजल कजल दुहु लेचन गरई। जनि सरसिज सजो मृगमद हरई।
सरसिज सेज दहन सरि मानई। हरि हरि बोल मरनजनि ठानइ।
कबहु न करतले तेजए कपोले। साँझ उगल नव ससि नहि डोले।
कवि जयदेवे गीत एहो गाया। हरि परसादे परम सुख पाया।
जानकि देइ पति रसिक सुजाने। कृष्णचरणगतिरतिपति भाने ।।९।।[४]

१. पारिजातहरण (वही, भूमिका), पृ० ६-७।

२. वही, पृ० ८।

३. इस पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति बिहार-रिसर्च-सोसायटी (पटना) के पुस्तकालय में और दूसरी मँगरौनी (दरभंगा) में है। इनमें पहली पूर्ण और दूसरी खण्डित है।

४. बिहार-रिसर्च-सोसायटी में संगृहीत हस्तलिखित पोथी 'गीत-गोविन्द' के मैथिली-अनुवाद से।

(२)

ओथिकि माधव ! तोहरि रामा, कला आगरि सगुणधामा,
कामधनि जयपत्रिका जनि, देखलि अइसनि रे ।
नासिका शुक मुक कपुरहु, अअरबिम्ब प्रबालिका वृहु,
दाडिमी जनि बीजपांती, दशन भाँती रे ॥
नयन शोभा श्रवण अप्धए, चान जनि रबि-बिम्ब थप्वए,
राहु जनि पछुआर कर धनि बाँधि राखल रे ॥
भ्रकुटि-शोभा काम-धनुषी, अञ्जन गुण जनि बाण सुमुखी,
नयन-वान सन्धान कएधनि, करति कीवहुँ रे ॥
हृदय कनक सरोज अवतरु, काम साजनि नाम निअधरु,
हार भार मृणाल जाँतलि प्रेम मातलि रे ॥
हेरि हेरि कतवेरि कामिनि, खेडि कौतुकेँ खेपु यामिनि,
मार शर कनिआर कसि कसि, विहुँसि हँसि हँसि रे ॥
गमन गरिमा जितल करिवर, मध्य केसरि मान परिहर,
चरण-युगल सरोज गञ्जए, जगत रञ्जए रे ॥
कान्ह काहिनी सखी गाओल, रङ्क विधिवश रतन पाओल,
कहथि 'रतिपति' मालती मधु मधुप पीउल रे ॥[1]

रामनाथ

आपका निवास-स्थान मिथिला माना जाता है। आप ओइनवार-वंशीय राजा कंसनारायण लक्ष्मीनाथ (सन् १५४२-४५ ई०) के आश्रित कवि थे। आपने मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी।

उदाहरण

हास कुमुद कए तोहेँ सावुर भए, नयने नेओँतल मोहि ।
वुए बिसवास आस जँ खण्डइ, के पतिआएत तोहि ॥
तिल तहँ लहु भय हृदय बदलि कए, परमासेँ बड़ पाप ।
अछैत लाखकर तकर हृदय जर, धन गेलें परिताप ॥
पर उपकार परम पद सुन्दरि ! 'रामनाथ' कह सार ।
सोरमदेइ पति कंसनरायण, मञ्जन नकर नकार ॥[2]

❀

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ४२, पृ० २३।
२. वही, पद सं० १३, पृ० ७।

रूपारुण

आपका निवास-स्थान मिथिला था।[१] आप एक बहुत बड़े संत और साहित्यानुरागी थे। भगवान् रामचन्द्र को अपना जामाता मानकर उनकी उपासना करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी के शिष्य श्रीबेनीमाधवदास ने अपनी पुस्तक 'गोसाईं-चरित' में लिखा है कि 'रामचरितमानस' सुनने का सर्वप्रथम सौभाग्य आपको ही हुआ था। गोस्वामीजी ने आपको ही उक्त ग्रंथ सुनने को पहला और सबसे उपयुक्त अधिकारी माना। आपने यह कथा श्रीतुलसीचौरा (अयोध्या) में सुनी थी। इसके पश्चात् आपने बागमती-नदी (दरभंगा) के तट पर श्रीसबलसिंह नामक भक्त को यह कथा सुनाई।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

लक्ष्मीनारायण[२]

आप भी मिथिला-निवासी थे[३] और हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खानाखाना[४] के दरबार में रहते थे। हिन्दी में ही आपके लिखे दो ग्रंथ मिलते हैं—'प्रेमतरंगिणी' और 'हनुमानजी का तमाचा'। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

(महाराज) विश्वनाथ 'नरनारायण'

मिथिला के ओइनवार-वंशीय महाराज भैरवसिंह 'हरिनारायण' के भाई राजा रणसिंह 'दुर्लभनारायण' के पुत्र होने के कारण आपका निवास-स्थान मिथिला माना जाता है। आपने मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी।

उदाहरण

गमन अवधि सुभ नहिल विशेष। भीत भरिय गेल दिने दिने रेख ॥
ताहि मेटि कोई ऊव सुनाये। वदन सिँचइ केह जल लेइ धाए ॥

---

१. 'कल्याण' (मानसांक, अगस्त १९३८), पृ० ९०६।

२. इस नाम के एक और कवि इसी काल (१६वीं शती) में हो गये हैं। वे मिथिला के उत्तर मोरंगदेश के राजा और संभवतः वहीं के निवासी थे। उन्होंने भी मैथिली में कुछ पदों की, रचना की थी, जिनमें से एक 'रागतरंगिणी' में संगृहीत है। देखिए—
A History of Maithili Literature (वही), पृ० २१६ तथा रागतरंगिणी (वही), पृ० ६५।

३. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, प्रथम भाग, १९९४ वि०, चतुर्थ सं०), पृ० ३७३।

४. मुगल बादशाह अकबर के अर्थमंत्री, सेनापति और महाकवि रहीम (सन् १५७३ से १६१३ ई० तक)।

कि कहब माधव कमलमुखी। जतने जिआओल सकल सखी॥
काहुँक नलिनि काहुँक चन्दना। कोई कहइ आएल नन्द नन्दना॥
सरस मृणाल हृदय धरि कोइ। चाँद किरणे कोइ राखए गोइ॥
केह मलयानिल बारइ चीरे। कोइ करए नव किसलय दूरे॥
मधुकर धुनि सुनि कोए मुँदे कान। करतल ताले कोइ कोकिल खेदान॥
कान्त दिगन्तहि कोन कोन जाए। केह केह हरि तुम्ह गुण परथाए॥
नरनारायण भूपति भान। विजयनारायण इह रस जान॥[१]

सविता

आप पहले मझौली-राज्य (गोरखपुर) के दरबारी-कवि थे, पीछे सारन जिले के नैनीजोर-ग्राम में आकर बस गये।[२] मझौली के राजा भीमल के यहाँ आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कहते हैं, एक बार किसी कारण उक्त राजा, सम्राट् अकबर के आदेश से कैद कर दिल्ली बुला लिये गये। उन्हें छुड़ाने के लिए आप ही भेजे गये थे। आपने वहाँ सम्राट् अकबर को अपनी कविता सुनाकर प्रसन्न कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप राजा भीमल मुक्त कर दिये गये। उन्होंने आपसे कुछ माँगने को कहा। इसपर एक कवित्व रचकर आपने उनसे एक हजार बीघा ऐसी जमीन माँगी, जो न कभी बाढ़ से डूबे और न कभी अनावृष्टि के कारण सूख जाय।[३] राजा भीमल ने ऐसी ही जमीन आपको सारन जिले के नैनीजोर-ग्राम में दे दी, जहाँ आप बस गये।[४] आपके कोई सन्तान नहीं थी।[५]

आपने खड़ी बोली और भोजपुरी में कविता का थी। आपकी रचना का उदाहरण नहीं मिला।

❀

---

१. पदकल्पतरु (४ शाखा, वंगाब्द १३३०), पृ० १५८। इस पद में जिन 'विजयनारायण' का उल्लेख है, वे आपके पितामह महाराज नरसिंह 'दर्पनारायण' के भाई थे और उनका पूरा नाम कुमार राजसिंह 'विजयनारायण' था।

२. दिलीपपुर (शाहाबाद)-निवासी श्रीदुर्गाशंकरप्रसादसिंह द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

३. उस कवित्त का अन्तिम चरण इस प्रकार है—'कविता सविता की यही विनती, पुनि जाय दहारी न जाय सुखारी'।

४. आज भी यह ग्राम आपके वंशजों के अधीन है।

५. आपके भाई 'कविता' के वंश में 'तोफा राय', 'चन्द्रेश्वरी राय' आदि प्रसिद्ध कवि हुए, जिनके वंशज आज भी हैं।

सोनकवि

आप वर्त्तमान सहरसा जिले के परसरमा-ग्राम-निवासी थे।[१] आप क्रमशः मिथिला के महेश ठाकुर, गोपाल ठाकुर, अच्युत ठाकुर[२] आदि नरेशों के दरबार में थे। उक्त नरेशों के सम्बन्ध में लिखी आपकी कुछ कविताएँ मिलती हैं। प्रसिद्ध हेमकवि[३] आपके ही वंशज थे। बिहार के वर्त्तमान वयोवृद्ध जगदीश कवि भी आपके ही वंशज हैं। हेमकवि और जगदीश कवि के अतिरिक्त आपके वंश में और भी कई कवि हुए।[४]

आपकी कविताएँ 'मिथिला-राज्यप्राप्ति-कवितावली' में संगृहीत हैं।

उदाहरण

(१)

मारग कानन अनुपम शोभा। जहं गुञ्जरत मधुपमन लोभा ॥ १ ॥
कहुं गुलाब वेली बन नाना। चम्पा वाग चमेली दाना ॥ २ ॥
कहुं तड़ाग जल कुमुद सोहावन। कहुं कमलवन मञ्जुल पावन ॥ ३ ॥
आम अशोक आदि बट नाना। मन्द बायुगति देव लुभाना ॥ ४ ॥
कोकिल पिक कलरव चहुं ओरा। वृल केहरि बारन मृग मोरा ॥ ५ ॥
लता लवङ्ग वृच्छ लपटाने। कनक शरीर नेह घनसाने ॥ ६ ॥
घटा सघन रविमण्डल छाये। नीलमगिरि मणिशिखर बनाये ॥ ७ ॥[५]

(२)

तेरोई सुयस के समान ससिसान स्वच्छ, तमकि रही है तेजताई तन आपसे ॥
कविवर सोन चन्दचमक अनन्द हौज तेरो मुख बिम्ब प्रतिभासैजूथजाप से ॥
अंक भरिलंक लौनिसंक लटकारे बंक, तैसो निकलंक फणि बैठे चुपचाप से ॥
कालीतूं चरण से सरोज प्रतिरोज भासै ध्यावे ध्यान आकर प्रभाकर प्रताप से ॥ १ ॥[६]

❀

---

१. मिथिलाराज-प्राप्ति-कवितावली (पं० श्रीजगदीश कवि, भूमिका, १९२१ ई०), पृ० २।

२. महेश ठाकुर के राज्यारम्भ का समय १५५७ ई० और अच्युत ठाकुर के राज्यावसान का समय १५७४ ई० माना जाता है।

३. इनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र यथास्थान प्रकाशित है।

४. उन कवियों के नाम इस प्रकार हैं—गणेश, प्रभाकर, श्याम, गोविन्द, कृष्ण (बुच), विश्वनाथ, डोमन, हेमन, कृष्ण तथा अचक। इनमें से कुछ के परिचय यथास्थान इसी पुस्तक में दिये गये हैं।

५. मिथिलाराज-प्राप्ति-कवितावली (वही), पृ० २।

६. वही, पृ० १०।

हरिदास

आपका जन्म दरभंगा जिले के 'लोहना' नामक ग्राम में हुआ था।[१] आपके पिता का नाम कृष्णदास झा था। आप प्रसिद्ध मैथिल-कवि गोविन्ददास के छोटे भाई थे।

आपका एक पद 'रागतरंगिणी' में संगृहीत है। इसके अतिरिक्त आपके और भी कतिपय पद लोककंठ में मिलते हैं।

उदाहरण

(१)

देखहों गे माइ जोगि एतय कतय।
फिरय गौरी रँगे जतय-ततय॥
सिंगी भरि पुरलन्हि मधुरिरि वानी।
भिखिओ न लेय जोगी माँगइ भवानी॥
जहाँ-जहाँ सखि संग गौरि खेलाय।
तहाँ-तहाँ नाचय जोगी डमरू बजाय॥
जोगिआ रंगिआ नितें नितें आव।
परतह कइ जोगि गौरि देखाव॥
भन हरिदास महादेव भेस।
गौरी भाग गंगाराम महेस॥[२]

(२)

परम ननुने देखह माइ हे शङ्कर गौरि समाज।
वर वनिता जप तप जत कएलन्हि, भेल अभिमत आज॥
हँसि हँसि परिछनि करए मनाइनि, पुलकें पूरल हिया।
सामर सुन्दर वर तुलाएल, रतन एहनि धिआ॥
जनक कनक-वेदिहिँ बैसल, करए कन्यादान।
सुरनर मुनि कर बेदक धुनि, एहन के जग आन॥
पुलक पुरल गौरि कोरलए, शङ्कर कोबर आव।
तीनि लोकमे आनन्द मङ्गल, काहुने किच्छु सोहाव॥
तीनि लोक पति हर महेश्वर, पूरथु सकल आस।
युगेँ युगेँ वर कंन्या जीवथु, भनइ कवि 'हरिदास'॥[३]

❀

१. गोविन्द-गीतावली (वही, भूमिका), पृ० १०।
२. रागतरंगिणी (वही), पृ० ६१-६२।
३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० २५, पृ० १३-१४।

हेमकवि

आप सहरसा जिले के परसरमा-ग्रामवासी[१] सोनकवि के वंशज थे। आप बहुत दिनों तक शुभंकर ठाकुर, पुरुषोत्तम ठाकुर, नारायण ठाकुर, सुन्दर ठाकुर, महीनाथ ठाकुर[२] आदि मिथिला-नरेशों के दरबार में क्रमशः रहकर कविता करते रहे। आपकी कविताएँ भी 'मिथिला-राज्यप्राप्ति-कवितावली' में संगृहीत हैं।

उदाहरण

(१)

धर्म्म धराधर धारक धौल धनेस कृपा सुकलानिकरे हैं।
त्यौं कवि हेम अपूरब अंस उमापति आसिष मौन भरे हैं॥
पुत्र प्रबीन बड़े रणधीर जिन्हें लखि शूर महान डरे हैं।
भारत भार उठायबे को महिनाथ नहीं अहिनाथ खरे हैं॥ १॥[३]

(२)

काली काली घन की समान भासमान फौज सजिगो हजार ये दुनाली गजबारे को।
कहै कविहेमवर अंगमें उमंग केते, चढे हैं तुरंग ऊँट ढाल तरवारे को॥
जोर घन घोर महिनाथको करोरजूथ, चले हैं चहूँधा धरम अरिन पछारे को।
स्वच्छ स्वच्छ आगे वक पंक्तियुग जात मानो, निकरे हैं दन्त दूवे मतंग मतवारे को॥१॥[४]

❀

सत्रहवीं शती

कृष्णकवि

आपका उपनाम 'पं० श्री बुच' था।

आपका निवास-स्थान सहरसा जिले का परसरमा नामक ग्राम था।[५] आप सोनकवि तथा हेमकवि[६] के वंशज और वर्त्तमान जगदीश कवि के पूर्वज थे। आपके पिता का नाम गोविन्द कवि था। आप उन्हीं मिथिला-नरेश राघवसिंह (सन् १७०४-४० ई०) के दरबार में रहते थे, जिन्होंने भूपसिंह नामक जमींदार से युद्ध में नैपाल-तराई के परगना पंचमहला को जीतकर अपने अधीन किया था। इसी युद्ध का वर्णन आपने अपनी 'राघव-विजयावली' नामक पुस्तक में किया है।

---

१. मिथिलाराज्य-प्राप्ति-कवितावली, (वही, भूमिका), पृ० २।
२. शुभंकर ठाकुर के राज्यावसान का समय १६१९ ई० और महिनाथ ठाकुर के राज्यारम्भ का समय १६७१ ई० माना जाता है।
३. वही, पृ० २३।
४. वही, पृ० २३-२४।
५. राघव-विजयावली (पं० श्रीजगदीशकवि, सन् १३२८ फसली, भूमिका) पृ० १।
६. इन दोनों कवियों के परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित हैं।

उदाहरण

(१)

गज बाजनि बरुथ चलैं युत्थन के युत्थ
दल पैदल प्रबल बल कोटि को प्रमान ।
गोला घहरि-घहरि छूटे छहरि-छहरि
रण महरि-महरि अरि-दल घबरान ।।
चल चञ्चल चलाक बड़े घोड़न पै आप
भूपसिंह समशेर तहं लागे घहरान ।।
तहं बीर बलवान प्रलय वेग के समान
रण राघव रिसान झुकि झारत कृपान ।।[1]

(२)

शंकरि शरण धयल हम तोर ।
कुकरम देखि परम यदि कोपित, यमहुँ करत की मोर ।।
सुरतरु अरतर शिवउँ ऊपर, वास हास अति घोर ।
सहस दिवस मनि चान कोटि जनि, तनु द्युतिकरत इजोर ।।
सहज खर्वं अति गर्वक पूरनि, लम्बोदरि जगदम्ब ।
दनुज नाग वर सकल सुरासुर, सबकाँ तोहैं अवलम्ब ॥
वामा हाथ माथ कुवलय धरु, दहिन खड्गवर काती ।
पाँच कपाल भाल अति शोभित, शिर इन्दीवर पाँती ॥
फणि नेउर केउर फणि कंकण, हृदय हार फणि छाजए ।
सारसना फणि फणियुग कुण्डल, जटा मुकुट फणि राजए ।।
शिव शिव आशन पास योगिनी, गण पहिरन बघछाला ।
विकट वदन रसना लहलह कर नव यौवन मुण्डमाला ।।
चहुदिशि फेरव मुण्डावलि, चिता अग्नि थिक गेह ।
तीनि नयन मणिमय सब भूषण, नव जलधर समदेह ॥
शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, सुर मुनि धरथि धेयाने ।
त्रिभुवन तारिणि नरक उबारिणि, सुमति कृष्णकवि भाने ॥[2]

❀

---

१. राघव-विजयावली (वही), पृ० २-३ ।

२. A History of Maithili Literature (वही), P. 426-27 । पं० बदरीनाथ झा ने अपनी 'मैथिली-गीत-रत्नावली' में यह पद किंचित् परिवर्त्तन के साथ 'कवि कृष्णपति झा' के नाम पर उद्धृत किया है। इस कवि का परिचय वे इस प्रकार देते हैं—'(ई) पलिवाड़मूलक महाकवि रमापतिझाक, अथवा उजानवासी सुकवि नन्दीपतिझाक पिता छलाह ।'
—देखिए मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ५२, पृ० २९-३० तथा ७८ ।

गोविन्द[१]

आपका निवास-स्थान मिथिला था।[२] आपके पिता का नाम रविकर और पितामह का नाम श्रीकर था। आप रुक्मिणी देवी के पति यादवराम के आश्रय में रहते थे।

आपकी एक रचना 'नलचरित' मिलती है। यह उमापति के 'पारिजातहरण' की परम्परा में लिखा एक नाटक है। इसमें कथोपकथन संस्कृत-प्राकृत में और गीत मैथिली में हैं।

उदाहरण

अपद सकल संपद पहु हारल न मानल कोनहुँ निषेधे।
परिहर परिजन गमन कएल वन दारुण दैव विरोधे ॥ध्रुव॥ ...
यदि न मिलब पहु दहन पैसब मोहुँ पिआ विनु कैसिन नारी।
'गोविन्द' कवि भन बुझ मधुसूदन सकल कहओ अवधारी ॥[३]

❀

दरिया साहब[४]

हिन्दी निर्गुणवादी संत-कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। बिहार के उक्त कोटि के कवियों में तो आपका स्थान सर्वोपरि है।

आपका जन्म १६७४ ई० में शाहाबाद जिले के 'धरकंधा' ग्राम के एक मुस्लिम-वंश में हुआ था[५]। आपके पिता का नाम पृथुदेवसिंह या पूरनशाह था।[६] आपका विवाह नव वर्ष की अवस्था में हुआ था। बीस वर्ष की अवस्था में आप अपनी पत्नी शाहमती या रायमती के साथ गृहत्यागी हुए।

आपने अपना एक अलग पंथ चलाया था, जो आगे चलकर 'दरिया-पंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[७] अपने पंथ के प्रचार के लिए आपने उत्तर-भारत के कितने ही स्थानों का भ्रमण

---

१. इस नाम के एक और कवि हो गये हैं, जिन्होंने १६३६ ई० में 'गोविन्द-तत्त्व-निर्णय' की रचना की थी।

२. A History of Maithili Literature (वही), P. 222.

३. मैथिली साहित्यक इतिहास (प्रो० कृष्णकान्त मिश्र, १९५५ ई०), पृ० १७७।

४. इस नाम के एक और संत इसी काल में, मारवाड़ में हो गये हैं, जिनकी रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। वे जाति के धुनियाँ थे।

५. मिश्रबन्धु-विनोद (द्वितीय भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ७७५। वहाँ की एक अँधेरी कोठरी को आज भी लोग आपका जन्म-गृह बतलाते हैं।

६. 'पीरनशाह' या 'पीरू' भी इनका नाम मिलता है। कहते हैं कि ये पहले उज्जैन-वंशी क्षत्रिय थे। बाद में अपने भाई का प्राण बचाने के लिए इन्हें विवश होकर धरकंधा-निवासिनी औरंगजेब की बेगम की दर्जिन की लड़की से विवाह कर इस्लाम-धर्म में दीक्षित हो जाना पड़ा।

७. इस समय आपके पंथ के लगभग ११२ मठ हैं, जो मुख्यतः बिहार और कुछ उत्तर-प्रदेश तथा नैपाल में हैं। इस पंथ के अनुयायियों की संख्या इस समय भी हजारों है और दरियापंथी साधु भी सैकड़ों की संख्या में हैं। दरियापंथियों की प्रार्थना का ढंग नमाज से मिलता-जुलता है। ये लोग 'सतनाम' का जप करते हैं।

किया था। इसी भ्रमण के क्रम में बंगाल-बिहार के तत्कालीन नवाब ने आपसे बहुत प्रभावित होकर आपको १०१ बीघे बे-लगान जमीन दी थी।

आप अपने को कबीर का अवतार मानते थे। कबीर की तरह ही आप धर्म-प्रचारक और कवि थे। उन्हीं की तरह आपने मूर्त्तिपूजा, तीर्थयात्रा, जाति-पाँति, कर्मकाण्ड आदि की कटु आलोचना और भर्त्सना की थी। आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य था सत्पुरुष या भगवान् की भक्ति द्वारा जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त होकर अमर-लोक प्राप्त करना। कहते हैं, प्रारम्भ में आपको अपने मत के कारण गाँव के मुखियों और पंडितों का अत्यधिक विरोध सहन करना पड़ा था। पीछे तो बड़े-बड़े धनी-मानी आपके शिष्य हुए। शाहाबाद जिले के गड़नोखा-राज के तत्कालीन राजा आपके शिष्यों में प्रथम थे। आपके शिष्य हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के व्यक्ति होते थे, जिन्हें अपनी-अपनी सामाजिक प्रथाओं के मानने की स्वतंत्रता थी। आपकी अनेक शिष्याएँ भी थीं। इन शिष्याओं में एक आपकी बहन 'बुद्धिमती' भी थीं। आपकी मृत्यु १०६ वर्ष की आयु में १७८० ई० में हुई।[१]

आपके रचे मूल ग्रंथों की संख्या २० है। इनमें १ संस्कृत में, १ फारसी में तथा १८ हिन्दी में हैं। हिन्दी-ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—(१) अग्रज्ञान (२) अमरसार (३) भक्तिहेतु (४) ब्रह्मविवेक (५) दरिया-सागर (६) गणेश-गोष्ठी (७) ज्ञानदीपक (८) ज्ञानमूल (९) ज्ञानरत्न (१०) ज्ञान-स्वरोदय (११) कालचरित्र (१२) मूर्त्ति-उखाड़ (१३) निर्भयज्ञान (१४) प्रेममूल (१५) शब्द या बीजक (१६) सहस्रानी (१७) विवेकसार तथा (१८) यज्ञ-समाधि।[२] इन रचनाओं के लिए आपने अवधी-भाषा को अपनाया है, किन्तु उस पर खड़ीबोली और भोजपुरी का भी विशेष प्रभाव दीखता है। इनमें आपने अनेक रागों के भी प्रयोग किये हैं, जिससे आपके संगीतज्ञ होने का अनुमान किया जा सकता है।

उदाहरण

(१)

उर लोचन मगु देखियै, हाजिर हाल हजूर।
प्रगट प्रताप नाम कर, प्रेम भक्ति बिन दूर॥
चीन्हु न सतगुरु देख पराहू, का मद माया विषै रस खाहू।
एह संसार माया कलवारी, मदे मताए भरम करि डारी।
खोजहु सतगुरु प्रेम समोई, उज्जल दसा हंस गुन होई।
मुरचा मुकुर सिकिल करु नीकै, तेजि छल कपट साफ करु हीकै।

---

१. आज भी धरकंधा (शाहाबाद) में आपकी समाधि वर्त्तमान है।

२. इन ग्रन्थों के आधार पर इधर दरियासाहब की रचनाओं के दो-तीन संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। ऐसे संग्रहों में एक (सन्त कवि दरिया-एक अनुशीलन) डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री के सम्पादकत्व में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) से प्रकाशित हुआ है। इसका मूल्य १३) है।

नाम निसान देखु निज पलकै, जगमग जोति झलामल झलकै ।
उर अंदर जब होय उजियारा, बरै जोति दिल निरमल सारा ।
मति करु जोर जुलुम जगमाहीं निज स्वारथ रत यह भल नाहीं ।
भूलेहु जीव बध जनि करहू , बोएल क बोएल जानि परिहरहू ।
जस पिआर जिव आपनो, तस जिव सभहि पिआर ।
जानहि संत सुबुद्धि जन, जाके बिमल बिचार ॥[1]

(२)

जोरन जावन देह के, दही भया सब थीर ।
बास बिमल तब पाइये, मथनी मथो सरीर ॥
ज्यों लगि प्रेम जुक्ति नहिं होई, तब लगि बास पावै नहि कोई ।
है खुसबोई घट महं भाई मथो प्रेम बासना पाई ।
छीर करु छिमा दया करु दही, मन मथनी महि घ्रित सो अही ।
सील संतोष खंभ करु भाई, सुरति निरति का नैता लाई ।
तनु करु मटुकि प्रेम करु पानी, निकले घ्रित सुबास बखानी ।
करमहि जीव मलिन जो कीन्हा, सत बिना ब्रह्म भौ छीन्हा ।
पारस प्रेम जो महलि कटाई, सतगुर सब्द खोजो चित्त लाई ।
आगे द्रिस्टि गगन के धावै, खोजै प्रेम मुक्ति फल पावै ।
देखत झरि तहां बहुत सोहाई, परिमल अग्र बास तहां पाई ।
बिना प्रेम नाहिं फूलै वारी, सींचत जल फूला फुलवारी ।
तिल पर फूल जो दिया बिछाई, बैंचि बासना तिलहिं समाई ।
तिल को तैल फुलेल भयो, मेटा तिल का नावं ।
सतगुर नाम समानेओ, बसेउ अमरपुर गावं ॥[2]

(३)

प्रेम पिवै जुग जूग जिवै जब प्रेम नहीं पसु पंछि है सोई ।
जल पूजि पखान जो मान किये एह ध्यान धरे बग चातुर वोई ।
देवल में एक देवि विराजित राजित नएन में भ्रिक सोई ।
दरिया जो कहें जब ज्ञान हुआ तबहीं दिल की दोबिधा सब खोई ।
नाम के अमल जो जन माते सोई जन संत सुबुधि बखाना ।
पीवत भंग जो रंग उड़ावत सो बहु बाचक नाचु देवाना ।
सर्ग पताल खोजे महि मंडल खोजि रहा तब ब्रह्म दिढ़ाना ।
दरिया जो कहें जब ज्ञान नहीं तबहीं जम फंद के हाथ बिकाना ॥[3]

---

१. संतकवि दरिया-एक अनुशीलन (डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, प्रथम सं०, १९५४ ई०, पंचमखण्ड, 'ज्ञान-स्वरोदय'), पृ० १९ ।

२. वही 'प्रेममूला', पृ० ४४-४५ ।

३. वही ('शब्द'), पृ० ६३-६४ ।

(४)

गुर कहं सबंस दीजिए, तन मन अरपे सीस।
गुर बहियां गुर देव है, गुर साहब जगदीस॥
काया द्रुम माया लता, लपटि रहा बहु भांति।
मधुकर मालति भ्रानि में, पीवत है दिन राति॥
नरक कुंड के बीच में, गोता खाहि अनेक।
बिबेकी जन कोई बांचिहै, जाके सतगुरु एक॥
यह माया है बेसवा, बिसनी मिलै त खूब।
साधुन्ह से भागी फिरै, केते परे मजूब॥
साधू जन मांगे नहीं, मांगि खाय सो भांड़।
सती पिसावनि ना करै, पीसि खाय सो रांड़॥[१]

❀

दलेल सिंह

आप 'दलसिंह' के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

आपका निवास-स्थान पहले हजारीबाग का 'कर्णपुर' नामक स्थान था, पीछे रामगढ़ हुआ।[२] आप रामगढ़ के राजा थे। आपके पिता का नाम महाराज रामसिंह और गुरु का नाम 'रामभगता' था। आप स्वयं तो उच्चकोटि के कवि थे ही, अनेक कवियों और साहित्यकारों के आश्रयदाता भी थे। आपके आश्रित कवियों में पदुमनदास[३] उल्लेखनीय हैं। आपने उनसे अपने पुत्र रुद्रसिंह के लिए विष्णुशर्मा के प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रंथ 'हितोपदेश' का हिन्दी-पद्यानुवाद करवाया था।

आपकी चार रचनाएँ उपलब्ध हैं—(१) राम-रसार्णव, (२) शिव-सागर (३) राज-रहस्य और (४) गोविन्द-लीलामृत।[४] इनमें प्रथम तीन रचनाएँ बड़े आकार की हैं। भक्ति, ज्ञान और नीति के समन्वय की अनुपम शैली आपकी रचनाओं की विशेषता है।

उदाहरण

(१)

निरखि जुगल छबि सखिन्ह कह द्रिग में बढ़े उछाहु।
ए भाखहि तुम जाहु अत, वे भाखहि तुम जाहु॥
डर ते एको जाय न सकहीं। धृति गति मति मन द्रिग थकथकहीं॥
करि साहस प्रभात अनुमानी। आई सकल सखी हरखानी॥

---

१. संत-कवि दरिया : एक अनुशीलन (वही, 'सहस्रानी'), पृ० १८१-८२-८३।
२. मन्नूलाल पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित आपके ग्रंथ 'रामरसार्णव' के आधार पर।
३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।
४. इन रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, (पटना) के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग, मन्नूलाल पुस्तकालय (गया) और नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी) में सुरक्षित हैं।

राधा सकुचि तनक मुसुकाई । उठि गोबिन्द ढिग बैसी जाई ॥
संभ्रम तै पीताम्बर लीन्हा । कृष्णहु नीलाम्बर नहि चीन्हा ॥
मुख लजौह करि सखि दिस देखी । तिन्ह सम निरखि भाग निज लेखी ॥
अधरन्हि में रदछत छबि दयऊ । नखछत तै तन भूखित भयऊ ॥
गलित पत्ररेखा अति सोहै । बिथुरे केसपास मन मोहै ॥
सुमन मानमर्दित कुमिलाना । टुटे छुटे मुकुता मनि नाना ॥
अंगराग इत के उत गयऊ । उन्ह तन के इन्ह तन में अयऊ ।
कृष्णवच्छ राधा पग केरा । जावक सोभा देत घनेरा ॥
भृगु पग कह जीतन जतु आऐ । छिदि अनुराग मनहु बहराऐ ॥
कुंकुम सिन्दुर मलय तै प्रभुतन चित्रित कीन्ह ।
इन्ह राधा छिदि में किये मनि कौस्तुभ के चीन्ह ॥[१]

(२)

कहि न सकै दलसिंघ बड चरितनिपट लघुदास ।
गुनु सज्जन सिव लै तदपि करौं कछु परगास ॥
जबतै मिलेउ राधिकहि हरि मन । तबते न जुदा होए ऐको छन ॥
जिमि दिनमनि दिन तन परछाहीं । अर्थं रहै जिमि आखर माहीं ।
द्रिग पुतरी दुनहु के दोऊ । प्रकृति पुरुष जानै सभ कोऊ ॥
रंग माह निर्मल जल जैसे । मिलेउ परस्पर मन दुंउ तैसे ॥
मन तै मन द्रिग द्रिगन्हितै मिलेउ विचार विचार ।
जौवन कामौ एक मत भऐ लऐ सुखसार ॥[२]

दामोदरदास

आप हजारीबाग के निवासी थे।[४] सम्भव है, आप रामगढ़-राज्य के दरबार में रहे हों। आपके चार पुत्र थे—प्रद्युम्नदास (पदुमन),[५] हरिशंकर, लालमणि और कृष्णमणि। आपकी फुटकर अथवा ग्रंथाकार कोई भी रचना नहीं प्राप्त होती।

❀

१. परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित 'गोविन्दलीलामृत' से।
२. वही।
३. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित-हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त-विवरण' (प्रथम भाग, पृ० ६५) में इस नाम के चार और कवियों का उल्लेख है, जो १७वीं शती के आस-पास ही हुए थे।
४. 'साहित्य' (त्रैमासिक, अप्रैल १९५२ ई०), पृ० ७।
५. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

देवानन्द

आपकी रचनाओं में आपके नाम के पूर्व 'आनन्द' शब्द मिलता है। संभव है, वह आपके नाम का ही अंश हो।

आप दक्षिण-मिथिला के 'परहटपुर' ग्राम के निवासी थे।[१] आपके पिता का नाम रघुनाथ[२] और माता का नाम गुणवती देवी था। उमापति की परम्परा में लिखे आपके 'उषा-हरण' नाटक की खण्डित हस्तलिखित-प्रति प्राप्य है।

उदाहरण

(१)

जय जय दुर्गे जगत जननी, दुर कए भवभए होइ दहिनी।
खने नीला खने सित निरमान, खन कुङ्कुम पङ्क तनु अनुमान।
राका विधुमुख नवविधु मरल, तत नयन सोम केश कराल।
लोहित रदन लोहित कर पान, भृकुटि कुटिल पुनु मोन धेआन।
श्रुति भुजेँ वसु भुजेँ हर दुख मोर, ऋषिहि पुरान गनल भुज तोर।
करे वर अभय खडग-जयमाल, मुकुर शूलधनु खेटक विशाल।
न जानिअ आगमे तुअ कत रूप, तेतिस कोटि देव तोहि निरूप।
पुनि पुनि इइहो देवि गोचर लेह, नाग पास बन्धन मोच देह।
आनन्दे देवानन्द नति गाव हरि चढ़ि रिपु हनि पुरह भाव।[३]

(२)

ए धनि ए धनि सुनह सरूप। कहि न होअ वर कनेआ रूप॥
त्रिभुवन दुहू नव अभिराम। देखहु न पारिय दुनक उपाम॥
रभसे वेकत कय नीअ नीअ हाव। दुअउ करे रतिरंग सुभाव॥
आनन्द देवानन्द भनभाव। दुहुकाँ सकल भेल परथाव॥[४]

❀

---

१. A History of Maithili Literature (वही), P. 211.
२. इनकी उपाधि 'कवीन्द्र' होने से ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये स्वयं भी एक कवि रहे होंगे।
३. A History of Maithili Literature (वही), P. 301.
४. वही, पृ० ३०१।

धरणीदास

आपका नाम 'धरणीधरदास' भी मिलता है।

आपके बचपन का नाम 'गैबी' था। आप एक पहुँचे हुए संत और भक्त थे।

आपका जन्म सारन जिले के माँझी-ग्राम[१] में हुआ था।[२] आपके पिता का नाम परसरामदास[३] और माता का नाम विरमादेवी था। आप अपने माता-पिता के प्रथम पुत्र थे।[४] कहते हैं, अपने धर्मनिष्ठ पिता का आपके जीवन पर विशेष प्रभाव था। अतः उनकी मृत्यु से आपके हृदय पर बहुत आघात पहुँचा, जिसके परिणामस्वरूप आप सांसारिक कार्यों से उदासीन होकर भगवद्भजन में अधिक लीन रहने लगे।[५] आप १७१३ वि० तदनुसार सन् १६५६ ई० में संन्यास लेने के समय माँझी के जमींदार के यहाँ दीवान थे। प्रारम्भ में 'चन्द्रदास' आपके गुरु हुए। वैराग्य ग्रहण करते समय आपने सेवानन्द से मंत्र लिया। किन्तु इतने से आपको तृप्ति नहीं हुई। अतः आप परमतत्त्व से परिचय कराने योग्य गुरु की खोज करने लगे। अन्त में मुजफ्फरपुर जिले के पातेपुर-निवासी विनोदानन्द[६] के पास जाकर आपने दीक्षा ली। अपने गुरु के यहाँ से लौट आप अपने जन्म-स्थान के पास ही कुटी बनाकर भजन-भाव में लीन रहने लगे।[७] आपने अपना प्राण-विसर्जन गंगा और सरयू के संगम पर किया, जो छपरा नगर के पास है।

आपके सम्प्रदाय का नाम 'धरणीश्वर-सम्प्रदाय' है। इसमें अब भी बिहार और उत्तर-प्रदेश के बहुत-से लोग हैं।[८]

---

१. धरनीदासजी की बानी (द्वितीय सं०, १९३१ ई०), पृ० १।

२. माँझी सरयू तट पर है। यहाँ पूर्वोत्तर-रेलवे का एक बड़ा पुल है, जो बिहार और उत्तर-प्रदेश (सारन और बलिया जिलों) को जोड़ता है। आपके दादा टिकैतराय एक धार्मिक व्यक्ति थे। वे मुसलमानी आक्रमण के भय से प्रयाग से माँझी चले आये थे।

३. ये एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। इनके पाँच पुत्र हुए—धरणी, वेणी, लछिराम, छत्रपति और कुलपति।

४. आपके दो पुत्र और चार पुत्रियाँ थीं। दोनों पुत्र निस्सन्तान रहे, पर एक पुत्री की सन्तानों का अस्तित्व है।

५. अपने परिवार और अपने जीवन के सम्बन्ध में भी बहुत-सी बातें आपने अपने 'प्रेमप्रगास' में लिखी हैं। उसी में वैराग्य-ग्रहण-काल का भी उल्लेख है—

संमत सत्रह सौ चलि गेऊ। तेरह अधिक ताहि पर भेऊ॥
शाहजहाँ छोड़ी दुनियाई। पसरी औरंगजेब दुहाई॥
सोच बिसारी आत्मा जागी। धरनी धरेउ भेष बैरागी॥

६. ये रामानन्द स्वामी की परम्परा के आठवें संत थे। धरणीदासजी ने अपनी 'रत्नावली' में इनकी मृत्यु का समय १७३१ वि० (श्रावण कृष्ण-नवमी) लिखा है।

७. यह स्थान अब 'रामनगर' कहलाता है और यहाँ का मंदिर 'धरणीश्वर का द्वारा'। यहाँ आपकी एक जोड़ी खड़ाऊँ आज भी देखने में आती है।

८. इसकी गद्दियाँ साढ़े बारह बतलाई जाती हैं। इनमें माँझी की गद्दी प्रमुख है। इसके अतिरिक्त बिहार में परसा, पचलक्खी और ब्रह्मपुर की गद्दियाँ भी प्रसिद्ध हैं। माँझी की गद्दी पर आपके बाद क्रमशः सदानन्द, अमरदास, मायाराम, रतनदास, बालमुकुन्ददास, रामदास, सीतारामदास, हरनन्दनदास और सन्तरामदास बैठे।

आपके द्वारा रचित ग्रंथों में 'प्रेम-प्रगास'[1], 'शब्द-प्रकाश'[2] और 'रत्नावली' प्रसिद्ध हैं। 'बोधलीला' और 'महराई' नाम की आपकी दो और छोटी रचनाएँ[3] मिलती हैं। उक्त रचनाओं में प्रथम, अर्थात् 'प्रेम-प्रगास' में आपने जीवात्मा और परमात्मा के मिलन की प्रेम-कहानी, सूफियों की शैली में कही है। इसी प्रकार 'रत्नावली' में आपने अपनी गुरु-परम्परा की बातें कही हैं और अनेक संतों के परिचय दिये हैं। 'शब्द-प्रकाश' आपकी सबसे अधिक प्रौढ़ रचना मानी जाती है। इसी में आपने अपने धार्मिक विचारों एवं सिद्धान्तों को छन्दोबद्ध रूप में व्यक्त किया है। इसकी रचना के लिए आपने खड़ीबोली और भोजपुरी का सहारा लिया है।

उदाहरण

(१)

ज्ञान को बान लगो 'धरनी', सोवत चौंकि अचानक जागे ॥
छूटि गयो विषया विष बंधन, पूरन प्रेम सुधा रस पागे ॥
भावत बाद विबाद बिखाद न स्वाद जहाँ लगि सो सब त्यागे ॥
मूँदि गईं अँखियाँ तब तें जबतें हिय में कछु हेरन लागे ॥
जननी पितु बंधु सुता सुत संपति, मीत महाहित संतत जोई ॥
आवत संग न संग सिधावत, फाँस मया परिनाहक खोई ॥
केवल नाम निरंजन को जपु चारि पदारथ जाहितें होई ॥
बूझि बिचारि कहै 'धरनी' जग कोई न काहु के संग सगोई ॥[4]

(२)

'धरनी' जहँ लगि देखिये, तहँ लों सबै भिखारि।
दाता केवल सतगुरु, देत न मानै हारि ॥
'धरनी' यह मन मृग भयो, गुरु भये ज्यों व्याध।
बान शब्द हिय चुभि गयो, दरसन पाये साध ॥[5]

(३)

पाव हुबी पउआ परम झलकार। दुरहुर स्याम तन लाम लहकार ॥
लँमहरि केसिआ पतरि करिहाँव। पीअरि पिछौरि कटि करतेन आव ॥
चंदन खोरिया भरेला सब अंग। धारा अनगनित बहेला जनु गंग ॥
माथे मनि मुकुट लकुट सुठिलाल। झीनवा तीलक सोभे तुलसी के माल ॥
नीक नाक पतरी ललौहिं बड़ि आँखि। मुकुट मझोर एक मोरवा के पाँखि ॥

---

१. इसकी एक हस्तलिखित प्राचीन-प्रति माँझी (सारन) के धरनीदासजी के मठ में सुरक्षित है।
२. इसका एक संस्करण १८८७ ई० में नरसिंहशरण प्रेस (छपरा) से प्रकाशित हुआ था।
३. आपकी बानियों का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।
४. धरनीदास की बानी (वही), पृ० ३३।
५. वही, पृ० ५३।

कान दुनौ कुंडल लटक लट झूल। दारूही मोछ नूतन जैसन मखतूल ॥
परफुलित बदन मधुर मुसुकाहिं। ताहि छवि उपर 'धरनी' बलि जाहिं ॥
मन कैला दंडवत भुइयाँ धरि सीस। माथे हाथे धरि प्रभु देलन्हि असीस ॥[१]

(४)

हाथ गोड़ पेट पिठि कान आँखि नाक नीक, माँथ मुँह दाँत जीभि ओठ बाटे ऐसना ॥
जीवन्हि सताईला कुभच्छ भच्छ खाईला, कुलीनता जनाईला कुसंग संग बैसना ॥
चलिला कुचाल चाल ऊपर फिरेला काल, साधु के सुमंत्र बिसराईला से कैसना।
धरनी कहे भैया ऐसना में चेतीं ना तऽ, जानि लेबि तादिना चीरारी गोड़ पैसना ॥[२]

❀

धरणीधर[३]

आप मिथिला-निवासी थे। आपने कुछ पद मैथिली में लिखे थे। आपका एक ही पद 'रागतरंगिणी' और अन्य संग्रहों में मिलता है।

उदाहरण

रितुराज आज विराज हे सखि नागरी गन वन्दिते
नवरङ्ग नवदल देखि उपबन सहज सोभित कुसुमिते
आरे कुसुमित कानन कोकिल साद, सुनिहुँक मानस उपजु विषाद ॥
साजनि हम पति निरदय बसन्त, दारुन मदन निकारुन कन्त ॥
अतिमत्त मधुकर मधुर रव कर मालती मधु सञ्चिते
समनेकन्त उदन्त नहिकिछु हमहि विधि-वस वञ्चिते।
वञ्चित नागरि सेहे संसार, एहि रितु सजो न करु विहार ॥
अति हाव भाव मनोज मारए चन्द रवि ससि भानए ॥
पुरुबपाप सन्ताप जतहोअ मन मनोभव जानए ॥
जारए मनसिज मार सरसाधि, चाँदमे देह चौगुन होअ धाधि ॥
सवे धाधि आधि वेआधि जाइति करिअ धैरज कामिनी
सुपहु मन्दिर तोरित जाएत सुफले जाइति जामिनी ॥
जामिनी सुफले जाइति अवसान, धैरज कर धरणीधर भाँन ॥[४]

❀

---

१. भोजपुरी के कवि और काव्य (श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, प्रथम सं०, १९५८ ई०), पृ० ९६।

२. वही, पृ० ९७।

३. एक धरणीधर १६८० ई० में रमापति उपाध्याय की 'वृत्तसार' नामक पुस्तक के लिपिकार हो गये हैं। संभव है, ये आप से अभिन्न व्यक्ति रहे हों।

४. रागतरंगिणी (वही), पृ० ९८। श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त की 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में यह पद किंचित् परिवर्त्तन के साथ भनिता बदलकर विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। भनिता इस प्रकार है—

जामिनि सुफले जाइति अवसान। धैरज धरु विद्यापति भान ॥

—वही, पद सं० ७९३, पृ० ४०१-२।

प्रबलशाह

आप डुमराँव (शाहाबाद) के राजा नारायणमल्लदेव[१] के द्वितीय पुत्र थे।[२] आपके बड़े भाई का नाम अमरेश या अमलशाह था। आपकी 'रस-मंजरी' नामक एक पुस्तक मिलती है।[३] आपने बारहमासा-विषयक कुछ कविताएँ भी हिन्दी में लिखी थीं। एकबार बादशाह औरंगजेब (सन् १६५८-१७०७ ई०) के समय में आप कैद होकर दिल्ली गये थे। घर पर आपने अपने दो पुत्रों को रामयति नामक एक मित्र की देखरेख में रख छोड़ा था। दिल्ली के कारागार से आपने रामयति के पास जो पत्र लिखा था, वह भी पद्यबद्ध ही है।[४]

---

१. दिल्ली के मुगल-सम्राट् शाहजहाँ (सन् १६२८-५८ ई०) ने नारायण-शाही को 'मल्ल' और 'राजा' की उपाधि, अपनी तलवार भेंट करते हुए, दी थी। मनसबदार का ओहदा और भोजपुर-प्रान्त का राज्य भी शाहजहाँ ने ही दिया था। आप बड़े अच्छे शिकारी और साहित्यानुरागी थे। गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों से भक्ति, नीति और शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली कविताओं का आपने संग्रह किया था। महाराज बाबू रामदीनसिंह लिखित 'बिहार-दर्पण' नामक प्राचीन पुस्तक के आरम्भ में ही आपकी विस्तृत जीवनी और तुलसी-साहित्य से संगृहीत अंश भी प्रकाशित हैं। यह पुस्तक खड्गविलास प्रेस (पटना) से पहली बार १८८२ ई० में छपी थी और १८८३ ई० में ही इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था।

२. बिहार-दर्पण (रामदीनसिंह, द्वितीय सं०, १८८३ ई०), पृ० १ तथा १७।

३. यह पुस्तक भारत-जीवन प्रेस (बनारस) से छपी थी। आपके एक और काव्य-ग्रन्थ की हस्त-लिखित-प्रति श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह (दिलीपपुर, शाहाबाद) के पास है। इसी पुस्तक के आरम्भ में आपने अपना परिचय दिया है—

सूबा मध्य बिहार के, नगर भोजपुर नाम। भूप नारायण मल्ल तहँ, प्रगटे सब सुख धाम॥
तिनके पुत्र प्रसिद्ध द्वै, बड़े भूप अमरेश। जाको यश चहुँ खंड में, फैलो देश विदेश॥
दान कृपा दुहूं सरस, भयो अमरनृप जान। ताको अनुज प्रबल कहूँ, कहौ सुनौ दय कान॥
जाहि काव्य को शक्ति लस, पढ़े नहि किछु ग्रन्थ। अँटकर ही ते सब कियो, अन्ध चलत ज्यों पंथ॥
मति लाठी मन कर गहे, अच्छिर ऊँचे नीच। टकरोरनि अति डरनिते, गिरे न ताके बीच॥

४. (क) उस पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है—

कुसल इहाँ को जैसो जानत हो नीके तुम, कुसल तिहारो रामा भारती जू चाहिये।
बालक दोऊ तो तुम्हें सौंपे हैं पढ़ायो जू, जाकी चित्त छोभ सों सुनावें हम का कहिये।
ज्यौं ज्यौं डर आवति है होत है संताप हिये, को है उहां हितू मेरो लिखैं हम जाहिये।
भाई अमनैक अधिकारी द्विज दासी दास, लेत न खबरि दुख में न हित ताहिये॥

(ख) अधिक कहो हम क्यों लिखैं, दुख की बात बनाय।
बाँचत पैहो दुख मनहिं ताते कह्यो न जाय॥
जौ क्यों हूँ विधि बाम तैं तुच्छ बचैगो सीस।
पुनि पायन तर आइ है कृपा करहिं जो ईस॥
नहिं अवलम्ब रह्यौ कछू, रही आस एक आय।
दई असीखा रावरी, ह्वै है वहै सहाय॥
हित अनहित दोउ विपति में, सहज परत है चीन्ह।
करुणा सिन्धु छोड़ाइ है, गज मोचन जिन कीन्ह॥

उदाहरण

(१)

माघ नहीं है निदाघ प्रचंड, ये चन्द नहीं तन भानु दहै री।
राति नहीं दिन बाढ्यो अपार, सो सीरे समीरन लूवैं बहैरी।
फूले री वारिज हैं सरमें, भ्रम भूलि, कुमोदिनी ताहि कहै री।
जाड़ों नहीं यह आतप है, प्रबलेश, बिना दुख केते सहै री ॥[१]

(२)

पट मैलो पेन्हे ओ निपट तन भूखो न कहि न सकत मति रीझि आई जैसी है।
नीची नाइ रहति निहारति न नेकु ऊँचे, तिरछी चितौनि मेरो उर बेधि पैसी है।
कंज ऐसो कर वलि विधु से बदन दै के, भुवनरव लिखटि उसास लेति बैसी है।
'प्रबल' सखाई लखि ठगि से रह्यो है मन, रोसमें रसीली ऐसी रसमें धौं कैसी है।[२]

भगवान मिश्र

आप मिथिला-निवासी थे।[३] भारत के देशी-राज्यों में मिथिला से जाकर जिन पण्डितों ने प्रतिष्ठा और सम्पत्ति अर्जित की थी, उन प्रवासी मैथिल-पण्डितों में आपका प्रमुख स्थान माना जाता है।

मध्य-प्रदेश के बस्तर-राज्यान्तर्गत 'दन्तावारा' नामक प्राचीन स्थान में १७६० वि० (१७०३ ई०) का लिखा आपका एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। शिलालेख गद्य में है और वह गद्य पण्डित सदलमिश्र से एक सौ वर्ष पूर्व का है।

उदाहरण

सोमवंशी पांडव अर्जुन के सन्तान तुरुकान हस्तिनापुर छाड़ि ओरंगल के राजा भये। ते वंश महँ काकती प्रतापरुद्र नाम राजा भए जे राजा शिव के अंश नउ लाख धानुक के ठाकुर जे के राज्य सुवर्न वर्षा भैते राजा के भाई अन्नम राज बस्तर महँ राजा भए ओरंगल छाड़ि कै। ते के सन्तान हंमीरदेव राजा भए। ताके पुत्र भैरव राजदेव राजा। ताके पुत्र पुरुसोत्तम देव महाराजा ताके पुत्र जैसिंह देव राजा ताके पुत्र नरसिंहराय देव महाराजा जेकर महारानी लछिमादेई अनेक ताल बाग करि सोरह महादान दीन्हें।[४]

---

१. श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह द्वारा प्राप्त सामग्री से।

२. वही।

३. मिश्रबन्धु-विनोद (भाग २, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ५३५।

४. 'सरस्वती' (प्रयाग, भाग १७, खण्ड २, संख्या ५, १९१७ ई०) तथा रजत-जयंती-स्मारक-ग्रन्थ (वही), पृ० ६३८। इस शिलालेख की पूरी प्रतिलिपि इस पुस्तक की प्रस्तावना में देखिए।

भूधर मिश्र

आप मुँगेर के निवासी थे।[१] आपके पिता का नाम भार्गवमिश्र था। आप औरंगजेब के पुत्र आजमशाह की समर-यात्रा में सम्मिलित थे। अपनी पुस्तक की प्रशस्ति में आपने अपने को 'वैद्य, राजपण्डित और सकल विद्याविनोद' कहा है।

आपने १७३० वि० की माघकृष्ण नवमी को 'रागमंजरी' नामक पुस्तक लिखना आरम्भ किया था, जो १७४० वि० में समाप्त हुई।[२]

उदाहरण

स्याम घन-स्याम सुख आनन्द को धाम, जाको, राधावर नाम काम मोहन बखानिऐ।
मन अभिराम मुरली को सुर ग्राम धरें, याम याम यम यम ध्यान उर आनिऐ।
लसे वनमाला दाम वाम प्यारी गोपीवाम, मुनि गावें जाको साम काम रूप जानिऐ।
भूधर नेवाज्यो राम वस्यो आए नन्द ग्राम, तिहू लोक ऐक धाम साची जिय मानिऐ॥[३]

❀

भृगुराम मिश्र

आप मुँगेर के निवासी थे।[४] आपके वंशज अब भी उसी स्थान के पुरानीगंज-मुहल्ले में रहते हैं।

आपकी लिखी तीन पुस्तकें हैं—'रासविहार', 'सुदामाचरित' और 'दान लीला' इनमें प्रथम पुस्तक की गणना बहुत ही लोकप्रिय पुस्तकों में होती है। इसमें श्रीकृष्ण की रासलीला का वर्णन है। यह पुस्तक संभवतः व्रजभाषा में लिखी गई थी।

आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

---

१. 'सूबा नाम विहार है, गढ़ मुगेरि निज धाम'—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित-ग्रन्थों की खोज (द्वितीय भाग, १९४७ ई०), पृ० ६६।

२. इस पुस्तक की एक प्रति बीकानेर राज-पुस्तकालय—'अनूप-संस्कृत-पुस्तकालय' में संगृहीत है। यह प्रति ग्रंथ-रचना के दो वर्ष बाद बीजापुर (महाराष्ट्र) में तैयार की गई थी। यह कई 'प्रकासों' में तैयार की गई है। इसमें राग-रागिनियों के सम्बन्ध में विभिन्न-मत, इनके भेद, लक्षण तथा इनके गाने के समय दिये गये हैं।

३. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित-ग्रन्थों की खोज (वही), पृ० ६६।

४. फ्रैंसिस बुकानन ने सन् १८०९-१० ई० में ही अपने पूर्णिया जिले के विवरण में आपका समय '५०० वर्ष पूर्व' लिखा था, जिसका अर्थ १४वीं सदी का प्रारम्भ कहा जा सकता है। बुकानन के लेख का आवश्यक उद्धारण इस प्रकार है—"Many other poets are read or repeated by note, especially the following—Rasvihar, Composed by Bhriguram Mishra of Monghyr. whose descendants live at Puraniganj near that place but he is supposed to have lived 500 years ago".—An Account of the district of Purnea in 1809-10 by Francis Buchanan Published by the Bihar and Orissa Research society, (Patna), PP. 173-174. हमारा अनुमान है कि आपकी ये रचनाएँ इतनी पुरानी तो नहीं, पर १७वीं-शती के आसपास की हो सकती हैं।

मँगनीराम

आपका जन्म १६८७ ई० में चम्पारन-जिले के पदुमकेर[1] (पद्मकेलि) नामक स्थान में हुआ था।[2] आपके पिता पं० कमलापति झा[3] तथा अन्य पूर्वज[4] भी विद्वान् तथा कवि थे। आपके ज्येष्ठ पुत्र स्पर्शमणि झा प्रकाण्ड वैयाकरण तथा पौत्र भुवनेश्वर झा भी कवि हुए। इस प्रकार आपकी कवित्व-शक्ति बहुत-कुछ वंश-परम्परागत थी।

आपका विवाह मुजफ्फरपुर जिले के 'पकड़ी' नामक ग्राम में हुआ था। आपका ननिहाल नैपाल-तराई के बसतपुर-ग्राम में था। आपके मामा नैपाल-नरेश रणबहादुर-सिंह के यहाँ कर्मचारी थे। वे एक बार राजकीय कोष का रुपया गबन कर जाने के अपराध में पकड़ लिये गये। एक दिन जब रणबहादुरसिंह ने अपने दरबार में कवियों के सामने एक समस्या रखी, तो उसकी सबसे अच्छी पूर्त्ति आपने ही की। इसी पर प्रसन्न होकर राजा ने आपके मामा के अपराध को क्षमा कर दिया और आपको अपने दरबार में कवियों के बीच सबसे उच्च पद दिया। कहते हैं, नैपाल-नरेश ने आपको पारितोषिक-स्वरूप दो गाँव (गढ़हरिया और डुमरिया) भी दिये थे।[5] कहा जाता है कि एक दिन अनायास किसी बात पर मतभेद हो जाने के कारण आपने राज्याश्रय त्याग दिया। यह सूचना जब महाराज को मिली, तब उन्होंने पुनः आपसे वापस आने का आग्रह किया; किन्तु आप न आये और आमंत्रण को अस्वीकार करते हुए एक कवित्त लिख भेजा, जिसका अंतिम चरण इस प्रकार है—'मंगन के द्वार कहीं मंगन अघात है'। आप स्वभाव के बड़े सरल और विनोदी भी माने जाते थे। अपने विवाह के अवसर पर अपनी 'विधिकरी' से आपने जो चुटकी ली थी, वह उस इलाके में आज भी प्रचलित है। एक सौ आठ वर्ष की आयु तक जीवित रहकर १२५१ फसली में, काशी में, आप परलोक सिधारे।

आपने 'ऊषा-हरण' एक खण्ड-काव्य लिखा था, जो अब अप्राप्य है। आप आशु-कवि कहे जाते थे। बात-की-बात में कविताएँ रच डालते थे। आपकी रचनाएँ व्रजभाषा के साथ मथिली में भी मिलती हैं। आपकी उपलब्ध रचनाओं में 'श्रीकृष्ण-जन्म', 'श्रीगंगास्तव' और 'द्रौपदी-पुकार' शीर्षक कविताएँ लम्बी हैं। दुर्गास्तुति-परक आपका एक मैथिली-गीत भी मिलता है।[6]

---

१. यह स्थान मोतिहारी नगर से बीस मील पूरब है।

२. पंचामृत (श्रीशुकदेव ठाकुर, प्रथम सं०, १९४१ ई०), पृ० ४३।

३. श्रीरमेशचन्द्र झा आपको कुलपति झा का पुत्र बतलाते हैं।—'वार्षिकी' (नवयुवक पुस्तकालय, मोतिहारी, सन् १९५८-५९ ई०), पृ० २५।

४. इनमें हरपति झा, उमापति झा, कमलापति झा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

५. इसकी सनद आपके वंशधर श्रीराधारमण झा के पास आज भी सुरक्षित है।

६. आपकी एक हस्तलिखित-पुस्तक, कहते हैं, नैपाल-राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। कहा नहीं जा सकता कि वह आपकी कौन-सी पुस्तक है।

उदाहरण

(१)

कंचन के गजराज बनाय जड़ाय जवाहिर लाल नसानी।
पावन पुच्छक सुंडन मे मनि मस्तक दन्त कहाँ लौं बखानी।
इक पर्व महोदय लागि गयो तहँ दान कियो नृप की महरानी।
गंग-तरंग में सरित दई कर हाथी बुड़ो है हथेली के पानी।[1]

(२)

कोटि-कोटि संपति औ लाखन सिपाइ खड़े झूमत गजराज द्वार हलका हजार हैं।
कोठरी भरी है हेम हीरा औ जवाहिरात अंग-अंग गूँथी मणि मोतिन की हार हैं।
महल में भीतर चटकीली चन्दमुखी नारि बाहरे हजार भूप करत जुहार हैं।
मँगनी कवि कहे सुरसति से सनेह नहीं तो धुँआ की धरोहर शृँगार सब छार हैं।[2]

❀

महीनाथ ठाकुर

आप सन् १६७३ से ९४ ई० तक मिथिला के राजा[3] थे। आपके पिता का नाम सुन्दर ठाकुर था। 'रागतरंगिणी' के रचयिता लोचन के प्रसिद्ध आश्रयदाता नरपति ठाकुर आपके ही अनुज थे। कहते हैं, लोचन कुछ दिनों तक आपके भी आश्रय में थे। आपने मैथिली में बहुत-से सुन्दर पदों की रचना की थी, जो लोककंठ में आज भी बसे हुए हैं

उदाहरण

बदन भयान बदन शव कुण्डल, विकट दशन घन पाँती।
फूजल केश भेश तुअ के कह, जनि नव जलधर काँती॥
काटल माथ हाथ अति शोभित, तीक्ष्ण खड्ग कर लाई।
भए निर्भय वर दहिन हाथ लए, रहिअ दिगम्बर माई॥
पीन पयोधर उपर राजित, लिधुर श्रवित मुण्ड हारा।
कटि किङ्किनि शव कर करु मण्डित, सृक बह शोनित धारा॥
बसिअ मसान ध्यान शिव ऊपर, योगिनिगन रहु साथे।
'नरपति' पति राखिअ जग ईस्वरि, करु 'महिनाथ' सनाथे॥[4]

❀

---

१. पंचामृत (वही), पृ० ४८।
२. चम्पारन की साहित्य-साधना (श्रीरमेशचन्द्र झा, प्रथम सं०, २०१३ वि०), पृ० ३२।
३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ३१, पृ० ७५। डॉ० सुभद्र झा शास्त्री के अनुसार आपका राज्य-काल सन् १६६८ से ९० ई० तक था।
—Patna University Journal (Vol. I, No 2, Jan. 1945), P. 39.
४. A History of Maithili Literature (वही), P. 228.

रामचरणदास

आपका उपनाम 'जन-सेवक' मिलता है।

आप पटना के एक कायस्थ-वंश में उत्पन्न हुए थे।[१] आपके पिता का नाम श्रीदुर्गादास था। आप एक 'प्रेममार्गी' कवि थे। आपने 'पद्मावत' की परम्परा में, उसी के अनुकरण पर, 'चन्द्रकला'[२] नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना शुक्रवार, कार्त्तिक कृष्ण-त्रयोदशी को, शक सं० १६१६ (२ अक्टूबर १६६७ ई०) में[३] की थी। इसमें राजकुमार 'चन्द्रसेन' और राजकुमारी 'चन्द्रकला' के प्रेम और फिर उनके विवाहित जीवन की कथा अवधी-भाषा में वर्णित है। कतिपय स्थलों पर छंदोभंग के रहते हुए भी इसमें प्रमुख अलंकारों के सुन्दर प्रयोग हुए हैं।

उदाहरण

मुख शोभा कछु बरनि न जाई। सूजं जोतिं जनु जाइ समाई॥
नैन-कपाट खोहैं मनिआरा। चन्द्रकला जनु कीन्ह लिलारा॥
मोतिन्ह माल संवारेहु हारा। जैसे गगन छाय जलधारा॥[४]

❀

रामदास

आपकी रचनाओं में आपका नाम कहीं 'सरसराम' और कहीं 'राम' मिलता है।

आपका जन्म दरभंगा-जिले के 'लोहना' नामक ग्राम में हुआ था।[५] आपके पिता का नाम कृष्णदास झा था। आप प्रसिद्ध मैथिल-कवि गोविन्ददास के सबसे छोटे भाई थे तथा मिथिला के राजा सुन्दर ठाकुर (सन् १६४१—६८ ई०) के राज-पण्डित और कवि थे। आपके द्वारा रचित एक 'आनन्द-विजय-नाटिका'[६] मिलती है, जो चार अंकों में लिखी गई है। इसमें माधव का, अपने एक 'आनन्दकन्द' नामक मित्र द्वारा राधा का परिचय पाकर उसकी सहायता से, राधा से मिलना दिखलाया गया है।

---

१. Patna University Journal (Vol II, No I, Aug, 1945), P. 16.

२. इस ग्रंथ की सम्पूर्ण प्रति नहीं मिल सकी है। बीच के पाँच और अन्त के कुछ पृष्ठ नहीं मिलते।

३. मूल ग्रन्थ में इसका रचना-काल शुक्रवार, कार्त्तिक कृष्ण-त्रयोदशी शक सं० १६३१ दिया हुआ है।

संत केर अब करौं पौधारा। सोरह सै एकतीस सिधारा॥
कातिक मास कृस्न पछ भयेउ। तीर्थ त्रीदशी शुक दिन भयेउ॥
बादशाह नौरंग सुल्ताना। सूबा इबराहीम बखाना॥

किन्तु, इस ग्रंथ का पता देनेवाले प्रो० कृष्णनन्दन सहाय का कहना है कि लिपिकार ने भ्रमवश 'उनीस' को 'कतीस' पढ़ लिया है। देखिये—Patna University Journal (वही), P. 17.

४. वही, पृ० २२१।

५. गोविन्द-गीतावली (वही, भूमिका), पृ० १०।

६. यह नाटिका राजप्रेस (दरभंगा) से मुद्रित और प्रकाशित है।

उदाहरण

(१)

एकसर सुजन कलपतरु लाख। सम बुझि हमे भेल तुअ अभिलाख ॥
वसु परिनति तति कि कहब आज। अपन गमरपन कहितहुँ लाज ॥
तुअ गुन रसन महध मनु रङ्क। अनुभव प्रेम पयोनिधि पङ्क ॥
निसि-रिपु तुअ मुख अनुगत जानि। ताहि रहए देह पिकरव वानि ॥
रूपे जितली रति तोहे हमें जोर। तैं पचसर सर हनहिं अंगोर ॥
देखि दुखल तुअ लोचनलागि। तैं वर कमल कलेवर आगि ॥
'सरसराम' भन सुनि भरि कान। हसि ससिमुखि परिरम्भल कान्ह ॥
कमलावतिपति गुनक निधान। बुझ सुन्दर नृप महि पचवान ॥[१]

(२)

आगे कमलिनि! करह कुसुम परगास।
तुअ रस भूषल भमर मही भम, कतहु न कर थिर बास ॥
केतकि जातकि माधवि मालति, परिहरि कुन्द नेबारि।
अवसर अनुखन भूर मनहिँ मन, तुअ गुणगण अवधारि ॥
शिशिर उसरि गेल सुरभि समय भेल, अबहु न करह गेआन।
अधर अमिअरस काहि पिअएवह, के अछि अलिसम आन ॥
रुचि सुवास गरवेँ उनमति की, भूलह भमर उपेखि।
विसरि जाएत अलि तोहर भुगुति भलि, करब कीट अवशेखि ॥
'सरसराम' भन सेहे चतुरजन, जे बुझ निअ भल मन्द।
पाए प्रेम रस परसन कए मन, पिबए भमर मकरन्द ॥[२]

❀

रामप्रिया शरण सीताराम

आप मिथिलावासी थे।[३] आपने प्रायः ४०० पृष्ठों में 'सीतायन'[४] नामक ग्रंथ लिखा था, जिसमें सीताजी की कथा वर्णित है। इससे अधिक और आपका कोई परिचय नहीं मिला

उदाहरण

पितु दरसन अभिलाख जुगुल कुँवरन मन आई;
गुरु सनमुख कर जोरि भाँति बहु बिनय सुहाई।
पुलके गुरु लखि सील राम को अति सुख पाये;
ताहि समै सब सखा संग लछिमीनिधि आये।[५]

❀

१. A History of Maithili Literature (वही), PP. 98-99.
२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० २७, पृ० १५।
३. मिश्रबन्धु-विनोद (द्वितीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ५२९।
४. मिश्रबन्धुओं ने छतरपुर-दरबार के पुस्तकालय में यह ग्रंथ देखा था।
५. मिश्रबन्धु-विनोद (वही), पृ० ५३०।

रामयति

आप भोजपुर (शाहाबाद) के महाराज प्रबलशाह के मित्र थे।[१] कवि तो आप सामान्य कोटि के ज्ञात होते हैं; पर महाराज के मित्र होने के कारण धनी-मानी व्यक्ति रहे होंगे। औरंगजेब के समय में प्रबलशाह जब कैद करके दिल्ली ले जाये गये थे, तब उनके दो पुत्र आपके ही पास थे। दिल्ली के कारागार से उनके द्वारा प्रेषित पद्यबद्ध पत्र के उत्तर में आपने भी पद्यबद्ध पत्र लिख भेजा था।

उदाहरण

राम गये बन से तुम जानत, सीय हरी है सो तुम जानो।
कौरव पाण्डव की विपदा को, सो नीके ही जानो कहा लो बखानो॥
देवकि औ वसुदेव बँधे दोउ, राम कहै सोउ ही यह आनो।
भावि प्रभावति है सबको, प्रबलेस सुनो जिय रोस न आनो॥[२]

रुद्र सिंह

आप रामगढ़ (हजारीबाग) के राजा थे।[३] आपके पिता महाराज दलेलसिंह स्वयं एक कवि थे। आपके पढ़ने के लिए ही पदुमनदास ने 'हितोपदेश' का हिन्दी-पद्यानुवाद किया था। पिता की अनुमति प्राप्त कर और युवावस्था में ही संन्यास ग्रहण कर आप वृन्दावन में रहने लगे थे, जहाँ आपकी मृत्यु हुई।

आपने अनेक ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें सर्वोत्तम 'ज्ञानसुधाकर' बतलाया जाता है। आपकी रचना के उदाहरण अनुपलब्ध हैं।

लोचन

आप दरभंगा-जिले के 'उद्यान' (वर्त्तमान 'उजान') नामक ग्राम में रहते थे।[४] आपके पिता का नाम बाबू झा था। आप मिथिला के राजा महीनाथ ठाकुर (सन् १६७३—९४ ई०)[५] और उनके अनुज नरपति ठाकुर (सन् १६९५-१७०५ ई०) के आश्रित[६] कवि थे। आप मध्यकालीन भारतीय संगीत-कला के भी मर्मज्ञ कहे गये हैं।

१. दिलीपपुर (शाहाबाद) निवासी श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह से प्राप्त सूचना के आधार पर।
२. वही।
३. श्रीसूर्यनारायण भण्डारी (इचाक, हजारीबाग) के द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।
४. रागतरंगिणी (वही, भूमिका), पृ० ख। आज भी आपके वंशज उक्त ग्राम में निवास करते हैं।
५. डॉ० सुभद्र झा शास्त्री के अनुसार सन् १६६८ से ९० ई० तक।
—Patna University Journal (Vol I, No 2, Jan. 1945), P. 39.
६. 'अखिल भारतीय ओरियण्टल कान्फरेन्स' के द्वादश अधिवेशन के अवसर पर आचार्य क्षितिमोहन सेन (शान्तिनिकेतन) ने आपकी गणना बंगाल के प्रमुख संगीताचार्यों में करते हुए, आपको १२वीं शती में, राजा लक्ष्मणसेन का आश्रित कवि बतलाया था। किन्तु अब यह धारणा नितान्त भ्रामक सिद्ध हो चुकी है।—देखिए, वही, पृ० ३६-३९।

आपने शकाब्द १६०७ (१६८५ ई०) में नरपति ठाकुर की आज्ञा से संगीत-विषयक एक पुस्तक 'रागतरंगिणी'[१] लिखी थी। इसकी पाँच तरंगों में आपने राग-रागिनियों की उत्पत्ति और उनके सम्बन्ध की अनेक बातों का वर्णन किया है। साथ ही इसमें आपने अपने समकालीन तथा अपने पूर्ववर्त्ती लगभग चालीस प्रमुख मैथिली-कवियों के गीत उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किये हैं। मुख्यतया इसी कारण इस पुस्तक का विशेष महत्त्व हो गया है। आपके द्वारा रचित एक और ग्रंथ 'संगीत-संग्रह' कहा जाता है जो अनुपलब्ध है। आपके हाथ की लिखी हुई 'नैषध' की एक प्रति भी मिली है, जो राज-लाइब्रेरी, (दरभंगा) में सुरक्षित है।[२]

उदाहरण

(१)

कलधौत कङ्कन कलित कर तामरस, चामर करति पति राग सिरदार सर्जो।
लतिका सी कासीपति पतिका सहासी गीत, गतिका बिराजए बरनारी उरहार सर्जो।
रागिनि बराडी सुरपादप सुमन सर्जोन भूषन बनाए बनी सोरह सिंगार सर्जो।
दामिनी-सी कामिनी कला में काम-भामिनी सी, जामिनी में देति सुख भैरव भरतार सर्जो।[३]

(२)

चामर चिकुर वदन सानन्द। सरबस सनि जनि पुनिमक चन्द॥
चञ्चल विमल विलोचन मीन। अञ्जन परिचित खञ्जनजीन॥
विधि-निधि सौँइ तिला एक। मिलिलि कहलि नहि जाइ॥
दशन दालिमदुति भौँह कमान। कुटिल विलोकन तिख त्रिषवान॥
नासा दशन वसन बहुमूल। तिलफुल फुल्ल मधुरिफुल तूल॥
रुचिर कम्बुग्रिव मोतिम पाँति। बाहुलता कर पल्लव काँति॥
कुचयुग यमल कमल शिरमाल। निचिल रोमावलि समुचितनाल॥
नाभिकूप करिकुम्भ निलम्ब। जङ्घ केदलि भेल तसु अवलम्ब॥
उरुयुग युगल करभ अनुमान। पद-पङ्कज नख केतु समान॥
कुल गुन गौरव विनय विवेक। बुझल विनोदिनि सब अतिरेक॥
सरस सुमति कवि 'लोचन' भान। एहन रमनि रुकुमिनि-पति जान॥[४]

❀

---

१. यह पुस्तक पं० बलदेव मिश्र के सम्पादन में राजप्रेस (दरभंगा) से प्रकाशित हो चुकी है। पता चला है कि बम्बई से भी श्रीभालचन्द्र सीताराम सुकथांकर के सम्पादन में भी इसका प्रकाशन हुआ है और दोनों के पाठान्तर में अन्तर है।

२. Patna University Journal (वही), P. 39—इस प्रति का अंतिम वाक्य इस प्रकार है—'शाके १६०३ विजयादशम्यां रैँआग्रामे स्वार्थमिदमलिखित् श्रीलोचनशर्मा एकलङ्गलवंशीयः॥' इसी वाक्य के आधार पर डॉ० सुभद्र झा लोचन कवि को दरभंगा-जिले के 'रैँआम' नामक ग्राम का निवासी मानते हैं।

३. रागतरंगिणी (वही), पृ० ११।

४. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ३२, पृ० १८।

विधातासिंह[1]

आपका जन्म पुनपुन-नदी तटस्थ तारणपुर[2] (पटना) में, १७३८ वि० (सन् १६८१ ई०) में, हुआ था। आपके पिता खुशहालसिंह लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त आपको अधिक शिक्षा न दे सके। किन्तु स्वाध्याय के बल पर आप एक बड़े कवि हुए। आप कसरत करने, घोड़े पर चढ़ने तथा तीर-गोली चलाने में सिद्धहस्त थे। समाज-सेवा में भी आपकी विशेष दिलचस्पी थी। आपने अपने इलाके के कृषकों की भलाई के लिए अनेक उल्लेखनीय कार्य किये थे। आपको देशाटन से भी विशेष प्रेम था। देशाटन कर आपने उस समय के प्रायः सभी प्रमुख कवियों से सम्पर्क स्थापित किया था। जिन कवियों से आपका निकट-सम्पर्क था, उनमें प्रमुख के नाम इस प्रकार हैं—अनन्य, आदिल, केशव, गिरिधर गोपालशरण, गुरुगोविन्दसिंह, चन्द, बिहारी, बैताल, मतिराम, रसिकबिहारी, लाल, आदि। कहते हैं, बादशाह शाहजहाँ ने आपको अपने दरबार में रखना चाहा था, किन्तु उसी समय औरंगजेब के द्वारा स्वयं बादशाह बंदी बना लिये गये, इसी कारण उनके दरबार में आप न जा सके। जब औरंगजेब गद्दी पर बैठा, तब उसने भी आपको आमंत्रित किया, किन्तु उसके द्वारा शिवाजी के कैद कर लिये जाने की सूचना पाकर आप वहाँ नहीं गये। १७८८ वि० में, पुनपुन, मोरहर नामक नदियों के संगम पर एक युद्ध में आप वीरगति को प्राप्त हुए।

उदाहरण

मूरख सो कछु पूछिए, उत्तर देहैं काह।
क्रोध बिबस दुर्बाद कहि, सुजन हृदै को दाह॥
पंडित मूरख प्रश्न तैं, समुझि परत हैं मीत।
कोयल बचन सुनाय इक, एक कहत बिपरीत॥
प्रश्नोत्तर जब बनत नहिं, दुष्ट न सों सुन भाय।
कहि गँवार तिन्ह बिज्ञ को, मनमें अति हर्षाय॥
प्रथम पढ़हु विद्या सकल, और करहु कछु ध्यान।
कृषी कर्म वाणिज्य में, हो सब सजग सुजान॥[3]

※

शंकर चौबे[4]

आपका नाम 'शंकरदास' भी मिलता है।

आपका जन्म १७२६ वि० (१६६६ ई०) में सारन-जिले के इसुआपुर-ग्राम (परगना-गोआ) में हुआ था।[5] आपके पिता का नाम शोभा चौबे था। आरम्भ में घर

---

१. महाराज कुमार रामदीनसिंह ने खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित अपने 'बिहार-दर्पण' में आपकी विस्तृत जीवनी दी है।

२. बिहार-दर्पण (वही), पृ० ८४। यह ग्राम पटना से दक्षिण चार कोस पर बसा है।

३. वही, पृ० ८६।

४. बाबू रामदीनसिंह ने अपने 'बिहार-दर्पण' में आपकी भी विस्तृत जीवनी दी है।

५. बिहार-दर्पण (वही), पृ० १४३।

पर ही आपको साधारण शिक्षा मिली थी। पीछे आपकी कुशाग्रबुद्धि तथा विलक्षण स्मरण-शक्ति को देखकर एक पंडित ने आपको काशी जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सलाह दी, जिसके अनुसार वहाँ जाकर आपने 'शास्त्री' की उपाधि प्राप्त की।

कहते हैं, एकबार दुर्दैववश आपको कुष्ठरोग हो गया था, जिससे मुक्ति पाने के लिए आप छपरा से तीन कोस पूरब 'चिरान' नामक स्थान में जाकर गंगा-सेवन करने लगे। वहाँ आपने गंगा की स्तुति में बहुत-सी कविताएँ बनाईं। नीरोग होकर घर लौटने पर आपने विवाह किया। आपके दो पुत्र हुए। प्रसिद्ध कवि और पण्डित जीवाराम चौबे[१] आपके ही ज्येष्ठ पुत्र थे। अपने द्वितीय पुत्र के जन्म के बाद आप अपने घर से एक कोस पर 'अगथवर' नामक ग्राम (वर्त्तमान 'अगौथर') में रहने लगे। आपकी ज्ञान-गरिमा तथा भगवद्भक्ति को देखकर सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर आदि जिलों के सैकड़ों व्यक्ति आपके शिष्य हो गये।

वृद्धावस्था में आप घर का कामकाज अपने बड़े पुत्र को सौंपकर स्वयं गंगा-सरयू के संगम (छपरा) पर हरि-भजन में लीन रहने लगे। तभी से आप 'शंकरदास' कहलाये। आपकी क्षमाशीलता, और निष्कामता की कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।[२] १८०६ वि० में, ८० वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

आप एक आशुकवि थे। फलतः अनायास दोहा-चौपाइयों की रचना कर डालते थे। आपने 'राम-माला' नामक एक बृहत् काव्य-ग्रंथ की रचना की थी, जिसके १०८ खण्डों में ११६६४ भजन संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त शिव, पार्वती, गंगा, यमुना आदि के माहात्म्य पर भी आपने बहुत-से भजन, कवित्त, सवैये, दोहे, चौपाई आदि की रचना की थी।

उदाहरण

उद्यम साहस धैर्य्यबल, बुद्धि पराक्रम जाहि।
ये छः जेहि उर बसत है, देव शङ्क करु ताहि॥
लालच बस जननी जनक, पुत्र भ्रात गुरु जान।
मित्र स्वामी को बधत हैं, अस कह नीति सुजान॥[३]

१. कविता में ये अपना नाम 'युगल-प्रिया' लिखते थे। इनकी एक पुस्तक 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल' है, जिसमें इन्होंने अपने पिता पं० शंकर चौबे की विस्तृत जीवनी लिखी है। यह पुस्तक खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित हुई थी।

२. इस प्रकार की कहानियों के लिए देखिए 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० १५७-१६०।

३. उक्त दोहों की रचना आपने अपनी बाल्यावस्था में ही, अनायास की थी। कहते हैं, एक दिन आपके सामने किसी विद्वान् ने निम्नांकित दो श्लोक पढ़े। श्लोक का अर्थ ज्ञात होते ही आपने उसके अनुवाद के रूप में उक्त दोहों की रचना कर डाली। श्लोक इस प्रकार थे—
उद्यमं साहसं धैर्य्यम्बलम्बुद्धिः पराक्रमः। षडेते यस्य विद्यन्ते तस्माद्दैवोपि शङ्कते॥
मातरम्पितरं पुत्रं भ्रातरं च गुरुन्तथा। लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनं वा सुहृत्तमम्॥
—बिहार-दर्पण (वही), पृ० ४४-४५।

(पाण्डेय) शीतलसिंह

आपने दिल्लीके सम्राट् शाहजहाँ के समय (सन् १६२८-५८ ई०), राजकीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर चिरैयाकोट (गोरखपुर) से बिहार के सारन-जिले में आकर 'शीतलपुर' ग्राम बसाया था।[१] आपके वंश में उर्दू, फारसी और हिन्दी के अनेक कवि हुए। वर्त्तमान युग के स्व० दामोदरसहाय 'कविकिंकर' आपके ही वंशज थे।

आप एक अच्छे कवि थे। आपकी रचनाएँ आपके वंशजों के पास थीं, पर १९३४ ई० के भूकम्प में नष्ट हो गईं, इसी कारण कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं हुआ।

साहबराम

आप शाहाबाद-जिले के अम्बा-ग्राम निवासी थे।[२] प्रसिद्ध-कवि चन्दनराम[३] आपके ही पुत्र थे, जिनपर परिवार का भार सौंपकर आप काशीवास करने चले गये। वहीं आपका कैलास-वास हुआ।

आप अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि थे। पद्माकर, दत्त, भंजन आदि कवियों से आपकी गहरी मित्रता थी। अनेक राजाओं ने आपको विभिन्न उपाधियाँ दी थीं। किसी राज-दरबार में अनेक कवियों को परास्त करने के कारण आपको 'कविराजाधिराज' की उपाधि मिली थी।

आपने तीन पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें 'रसदीपिका' प्रसिद्ध है। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

हलधरदास[४]

आपका जन्म मुजफ्फरपुर-जिले के बिसौरा (वर्त्तमान 'बिसारा') परगने में 'पद्मौल' नामक गाँव में हुआ था।[५] जन्म के कुछ ही दिनों बाद आपके माता-पिता चल बसे। बाल्यावस्था में ही आपने संस्कृत एवं फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पुराणों तथा व्याकरणों के अध्ययन की ओर आपकी विशेष अभिरुचि थी। दुर्भाग्यवश शीतला से आक्रान्त हो जाने के कारण आपकी दोनों आँखें जाती रहीं और आप भगवान् श्रीकृष्ण के शरणापन्न हुए। आप अक्सर गाँव के लड़कों को बुलाते और हरिकीर्त्तन के सुन्दर-सुन्दर पद बनाकर गाते-गवाते थे। कहते हैं, एकबार जब आप जगन्नाथजी जा रहे थे, तब स्वप्न में भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको शंकर के चरणों का ध्यान करने तथा भक्त सुदामा के

---

१. 'शीतलपुर' (छपरा, सारन)-निवासी पाण्डेय जगन्नाथप्रसादसिंह से प्राप्त सूचना के आधार पर।

२. आरा-निवासी स्व० शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखित सूचना-पत्र के आधार पर।

३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

४. पुस्तक-भण्डार (लहेरियासराय) के रजतजयन्ती-स्मारक-ग्रंथ में श्रीअच्युतानन्ददत्त-लिखित आपका विस्तृत-परिचय द्रष्टव्य है।

५. रजत जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ (वही), पृ० ४३४।

चरित-वर्णन करने का आदेश दिया[१], जिसके परिणामस्वरूप आपने हिन्दी में 'सुदामाचरित'[२] और संस्कृत में 'शिवस्तोत्र' की रचना की। पद्‌मौल-ग्राम में आपके स्थापित किये हुए 'नर्मदेश्वर महादेव' हैं, जिन्हें लोग 'हलधरेश्वर' भी कहते हैं।

आपने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत लिया था। कहते हैं, १०१ वर्ष की आयु में आपने जीवित समाधि ले ली थी। वह स्थल आज भी पद्‌मौल में वर्त्तमान है।[३]

उदाहरण

(१)

एक समय दुःख-भरी नारि कतहि समुझावे।
सुनहु कन्त मम विनय दीनता अधिक सतावे॥
बिनु उद्यम संतुष्ट आतमा सुन्यौ न साईं।
बिनु हरि-भक्ति न मुक्ति करहु त्रिभुवन में पाई॥
कनिक भरिव से नाहिं धन, अधिक मान आदर न रह।
जौं महेश त्रिभुवन धनी, तौं भिखारि संसार कह॥[४]

(२)

दहिन कमल कर लिये कनक झारी हरिवामा।
वाम कमल कर तै पखारती चरन सुदामा॥
जासु चरन-रज धरत ध्यान मुनि जन्म गँवायो।
जाकी गति नहि सिव विरंचि पन्नगपति पायो॥
जेहि सुर सदा पुकारते जगदम्बा जगतारिणी।
तिन्हें आजु सुर देखते भिक्षुक-चरण-पखारिणी॥[५]

❀

---

१. अवचक ही प्रभु स्वप्न में, टेरि सुनायो बेनु।
जागु जागु रे हलधरा, चन्द्रचूड़-पद-रेनु॥
चन्द्र चूड़-पद-जपन करु, जग सपना को ऐन।
और कछुक तू कान धरु, सुधा-सरिस मो बैन॥
तू चरित्र मम मित्र को, करु प्रसिद्ध संसार।
जासु बाहुरी प्रेम सों, हम कीन्हीं आहार॥—वही, पृ० ४३६।

२. इस पुस्तक की रचना करने में आपके मित्र मुंशी रामलाल ने बड़ी सहायता की थी। इसकी चार प्राचीनहस्तलिखित प्रतियाँ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रन्थ अनुसंधान-विभाग, तीन नागरी-प्रचारिणी-सभा (काशी) में सुरक्षित हैं।
सन् १८६६ ई० में सुधानिधि प्रेस, कलकत्ता और १६०३ ई० में खड्गविलास प्रेस, पटना से यह प्रकाशित भी हुई थी।

३. एकबार मुंशी मजलिस सहाय ने इसे खुदवाया, तो उसमें से एक माला और एक खड़ाऊँ निकली थी।

४. रजत-जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ (वही), पृ० ४४०।

५. वही, पृ० ४४०।

हिमकर

आप दरभंगा जिले के सरिसब-ग्राम-निवासी[1] और सुप्रसिद्ध कवि गोविन्ददास के छोटे भाई हरिदास झा के पौत्र थे।

आपने मैथिली में शिव-पार्वती-सम्बन्धी पदों की रचना की थी, जिनमें से कुछ लोककंठ में सुरक्षित हैं।

उदाहरण

देखु सखि ! देखु सखि ! उमत जमाए।
ग्रिव वासुकि शशि तिलक बनाए॥
गमन कएल हर गौरि-उपदेश।
सिन्दुर धार पद दइल महेश॥
विधु भीतर मृग ऊठल काँपि॥
बाघ-छाल वसन वदन लेल झाँपि।
हँसि गेलि सभ सखि हर-रूप देखि।
गोचर 'हिमकर' करथि विशेखि॥[2]

※

अठारहवीं शती

अग्निप्रसादसिंह[3]

आप सोनपुर (सारन) के निवासी थे।[4] आपने गद्य और पद्य दोनों में रचनाएँ की थीं। रचनाएँ मुख्यतः भक्ति-सम्बन्धिनी होती थीं। पुस्तकाकार आपकी तीन रचनाओं का पता चलता है—'गंगा-गंडक-महिमा', 'सोनपुर-मेला-वर्णन' और 'ज्यौतिष-तन्त्र'। आपके लिखे भजन, प्रभाती, ठुमरी आदि आज भी वहाँ के ग्रामीण लोग गाते हैं।

आपकी मृत्यु १९वीं शती के प्रथम चरण में हुई। उसी समय के लगभग आपके एक पौत्र की भी मृत्यु हो गई, जिसके वियोग में, विक्षिप्तावस्था प्राप्त कर आपकी पुत्रवधू ने आपकी रचनाएँ जला दीं। इसी कारण, आज वे रचनाएँ बहुत ही कम उपलब्ध होती हैं।

उदाहरण

भोला के दे न जगाई रे माई।
दर्शन के हित आये खड़े हैं, ब्रह्मा, विष्णु गोसाई।
सनक, स्यनन्दन, सनत, कुमारा, नारद वीणा बजाई॥

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ७९।
२. वही, पद सं० ५३, पृ० ३०-३१।
३. आपका परिचय श्रीमित्रजीतसिंह ने सोनपुर की 'आभा' नामक पत्रिका के सोनपुर-अंक (मई, १९५६ ई०) में लिखकर प्रकाशित कराया था।
४. 'आभा' (वही), पृ० २४३।

गंगा जमुना औ सरस्वती, झारी भर जल लाई।
उठो भोला, मुख मंजन कीजै, गंग भंग बन आई॥
कोई चढ़ावे भोला अच्छत चन्दन कोई बेलपत्र बनाई।
कोई बैठत शिव ध्यान धरत हैं, कोई शिव स्तुति गाई॥
भोला जागे, सब दुख भागे, चार पदारथ पाई।
अगिनप्रसाद रहे कर जोरी सुखि करावहु भाई॥[1]

※

अचल कवि

आपकी रचनाओं में कहीं-कहीं आपका नाम 'अच्युतानन्द' भी मिलता है।

आप 'परसरमा' (सहरसा)-निवासी और मिथिला-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के दरवारी कवि थे।[2] वर्त्तमान वयोवृद्ध श्रीजगदीश कवि आपके ही पुत्र हैं। आपके पिता का नाम कृष्णाकवि[3] था। आपकी गणना बाबा लक्ष्मीनाथ गोसाईं के परमप्रिय शिष्यों में होती थी। मृदंगाचार्य और योगी के रूप में भी आपकी अच्छी ख्याति थी। आप रायबहादुर लक्ष्मीनारायणसिंह, पचगछिया के भी प्रथम गुरु कहे गये हैं। लगभग १०७ वर्ष की आयु में आप परलोक सिधारे।

आप एक प्रसिद्ध भक्त-कवि थे। पुस्तकाकार तो आपकी कोई रचना नहीं मिलती, किन्तु पदों के रूप में कतिपय स्फुट रचनाएँ मिलती हैं। इन रचनाओं में 'तारा का ध्यान' शीर्षक कविता, जिसकी रचना आपने अपने आश्रयदाता के आदेशानुसार की थी, बहुत प्रसिद्ध है। अपनी रचनाओं के लिए आपने व्रजभाषा और मैथिली का आश्रय लिया है।

उदाहरण

(१)

विश्वव्याप्ति कमल मध्य विलसति है नीलवर्ण
व्याघ्र चर्म वसन दिव्य सोभित सुखमान
युगल चरण नूपुर धुनि कटि किंकिन अति पुनीत
गले मुण्डमाल उर व्याल लिपटान
वाम उर्द्ध नील कमल तद् अधकरनरकपाल
सब्बे भुजकत्री असि केयूर झलकान
चुबुक चारु बिम्बाधर सीखर विह पाँति दसन
नासा कीर तीन नयन भृकुटी सर तान

---

१. 'आभा' (वही), पृ० २४३।
२. श्रीजगदीश कवि, (सुखपुरा-परसरमा, सहरसा) से प्राप्त सूचना के आधार पर।
३. इनका परिचय इसी ग्रंथ में यथास्थान मुद्रित है।

भाल इन्दु सिन्दूर लाल विन्दु जटिल जट विशाल
अच्छोभ ऋषि राजै सिर सोभा की खान
अच्युदानन्द जयत नित्त तुअ पद उर धरत चित्त
आदि सक्ति तारा अभय दीजै वरदान ।[1]

(२)

हौ तूं भय हारणि दुख विपति विदारिणी मां,
तूही जगतारिणी तीनि लोक प्रतिपारैगो ।
अतल वितल तलातल रसातल पताल वारि,
कच्छप पृष्ठ धरणि तूही निरवारैगो ।
जहाँ जहाँ मन्दर समुन्दर है जहाँन माह,
तहाँ वहाँ माता नाम तेरोई पुकारैगो ।
कवि अचल आय सरन निश्चल ह्वै करहु मगन,
तू ना उबारै तारा कौन महि उबारैगो ।[2]

※

अजबदास[3]

आपका वास्तविक नाम 'अजाएब पाण्डेय' था, किन्तु आपके पिता प्यार से आपको 'अजब' कहा करते थे। पीछे संत हो जाने पर आप 'अजबदास' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आपका जन्म शाहाबाद जिले के 'कर्जा'[4] नामक ग्राम में हुआ था।[5] आप प्रसिद्ध कवि 'देवाराम'[6] के पुत्र थे। अपने पिता के आदेशानुसार आपने 'नृपतिदास' से ही दीक्षा ली थी। आप संस्कृत के एक अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत के माध्यम से आपने योग, ज्यौतिष, व्याकरण आदि विषयों का अध्ययन किया था। हिन्दी में आपके तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। उनके नाम इस प्रकार है—(१) ब्रह्म-अक्षरी-भूलना, (२) गीता-सार-संग्रह और (३) भगवद्-चर्चा। इनके अतिरिक्त भोजपुरी में रचित आपकी कतिपय स्फुट रचनाएँ भी मिलती हैं।

उदाहरण

राम नाम के अन्तर नाहीं, देख बूझो अभिअन्तर साधो।
केहू कहेला माधो मंदिर आला महजिद माहीं।
कहत-कहत जम्हु पकरि ले गइले, भेद न पावे काहीं॥

---

१. श्रीजगदीश कवि (वही) द्वारा प्राप्त।
२. वही।
३. श्रीसर्वदेव तिवारी 'राकेश' परसियाँ, शाहाबाद आपके सम्बन्ध में विशेष रूप से अनुसंधान कर रहे हैं।
४. यह स्थान शाहाबाद जिले के बिहिया रेलवे-स्टेशन से छह मील उत्तर में स्थित है।
५. श्री 'राकेश' से प्राप्त सूचना के आधार पर।
६. इनका परिचय इसी ग्रंथ में यथास्थान मुद्रित है।

केहू लंगा, केहु वस्त्र रंगावे, केहु मौनी केहु भूखे।
केहू पुजावे ताल पोखरिया, केहु पीपर के रूखे॥
उहे राम, माधो, हरि काली, ब्रह्मा, हनु शिव गौरी,
उहे करीमा आला अकबर, काहें दूर-दूर दौरी॥
एके तरु के मूल पतैया, जड़ पूजे तरु भूले।
मूल सींचि के पत्ता काटे, से चौरासी झूले॥
ब्रह्म एकछरा एके अंबुज, सोरह नाम बतावे।
श्रीगुरु नृपति मंत्र दियो है, जे भावे से धावे॥
अजबदास ए जग के माया अंगुरी पकड़ि नचावै।
छाड़ि कपट सभ एकही धावै ना चौरासी आवै॥[1]

❋

अनिरुद्ध

आप मिथिला-निवासी और मिथिलेश महाराज राघवसिंह (सन् १७०४-४० ई०) के आश्रित थे। आपने मैथिली में कतिपय पदों की रचना की थी, जो लोककंठ में जीवित हैं।

उदाहरण

ओ कि माधव! देखल वियोगिनि बामा।
अधर न हास, विलास न सखि सँ, अहनिशि जप तुअ नामा॥
आनन शरद सुधाकर समतसु, बोल मधुर धुनि बानी।
कोमल अरुण कमल कुम्हिलाएल, देखि मन अएलहुँ जानी॥
हृदयक हार भार भेल सुवदनि, नयन न होअ निरोधे।
सखि सम आए खेलाए रङ्ग कए, तसु मन किछुओ न बोधे॥
रगडल चानन मृगमद कुङ्कुम, सब तेजलक तुअ लागी।
पुनि जलहीन मीन जकाँ फिरइछ, अहनिशि रहइछ जागी॥
हरि हरि कए उठ हरिनि-नयनि धनि, चिकुरो न चेतए राही।
तुअ विषलेख बिखिन मन अनुखन, काहे बिसरलह ताही॥
दुति-उपदेशेँ पेअसि गुन सुमिरल, तहिखन चलल मधाई।
मद्गावति-पति राघवसिंह गति, 'अनिरुद्ध' कवि इहो गाई॥[2]

❋

---

१. श्री 'राकेश' द्वारा ही प्राप्त।

२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ७२, पृ० ४१-४२।
यह पद किंचित् परिवर्त्तन के साथ श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा सम्पादित 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' में विद्यापति के नाम पर संगृहीत है। उसमें भनिता इस प्रकार है—
'दूति उपदेश सुनि गुनि सुमिरल तइखन चलला धाई।
मोदवती पति राघवसिंह गति कवि विद्यापति गाई॥
विद्यापति ठाकुर की पदावली (वही), पद सं० ७४१, पृ० ३७६-३७७।

अनूपचन्द दुबे

आपका उपनाम 'रामदास' था।

आपका जन्म १८१६ वि० (१७५९ ई०) में 'धनगाई' (शाहाबाद) ग्राम में हुआ था।[१] आप सदैव अपने चचेरे भाई मानिकचन्दजी के साथ रहते थे। आपके पिता बहादुर दुबे संगीत के बड़े विशेषज्ञ थे और डुमराँव-राज के दरबार में रहते थे। आपके मन्त्र-गुरु डुमराँव-निवासी श्यामसखाजी थे। प्रसिद्ध वीणा-विशेषज्ञ निरमोल शाह को तानपुरा बजाने में परास्त कर आपने डुमराँव-दरबार से ६ हजार रुपये की सालाना तहसील का इलाका पुरस्कार-स्वरूप पाया था। आपका निधन १९१० वि० (१८५३ ई०) में हुआ।

आपकी सारी रचनाएँ संगीत से सम्बद्ध हैं। 'चतुरंग', 'सरगम', 'बोल', 'तराना', 'धम्मार' आदि गीतों के पद आपने बड़े ही ललित बनाये हैं। आपकी रचना के उदाहरण अनुपलब्ध हैं।

※

आनन्द

आप मिथिला-निवासी और मिथिलेश महाराज माधवसिंह (सन् १७७६ से १८०७ ई०) के आश्रित थे। आपने मैथिली में कतिपय पदों की रचना की थी, जो विशेषतः लोककंठ में जीवित हैं।

उदाहरण

(१)

गौरी अरधङ्गी सङ्गहिं लए हर होरी माचब ।।
वामे अतँर अरगजा केसरि, योगिनि अविर उराव ।
दहिने भूत प्रेतगण नाचए, मलि मलि भसम चढ़ाव ।।
सिन्दुर लाल वसन मणिमुक्ता वाम भाग झलकाव ।
मुण्डमाल उर व्याल दहिनदिशि, बाघ-छाल फहराव ।।
भाँति-भाँति योगिनिगण नाचए, फागु अलाप मचाव ।
नन्दी भृङ्गी भैरवगण मिलि, डम्फ मृदङ्ग बजाव ।।
मिथिला-पति माधव बड़दाता, के नहि अभिमत पाव ।
गौरीशंकर होरी खेलथि, सेवक 'आनन्द' गाव ।।[२]

(२)

शशि शेखर नटराज हे गिरिराजक घर मे ।
लएलहुँ ऊँच जमाए हे एहि रमण नगर मे ।।
छल उत्तम तोर भाग हे गिरिजा भेलि वश मे ।
मिलल नीम अति तीत हे अंगूरक रस मे ।।
नागरि एहनि के आन हे आगरि सम फन मे ।
'आनन्द' कहथि बुझाए हे धरु धैरज मन मे ।।[३]

※

---

१. श्रीजगदीश शुक्ल, राजराजेश्वरी हाईस्कूल, सूर्यपुरा (शाहाबाद) से प्राप्त सूचना के आधार पर।

२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ८२, पृ० ४७-४८।

३. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) द्वारा प्राप्त।

आनन्दकिशोरसिंह

आप बेतिया (चम्पारन) के महाराज थे।[१] महाराज नवलकिशोरसिंह[२] आपके ही अनुज थे। आप स्वयं कवि तो थे ही, कवियों के एक बहुत बड़े आश्रयदाता भी थे। आप सन् १८१६ ई० में बेतिया की गद्दी पर बैठे थे। आपके दरबार में चित्रकारों, पंडितों तथा संगीतज्ञों के अतिरिक्त नारायण उपाध्याय, दीनदयाल, मायाराम चौबे, मुंशी प्यारेलाल, कालीचरण दूबे, मँगनीराम, रामदत्तमिश्र और रामप्रसाद आदि प्रमुख कवि भी थे। दशहरे के अवसर पर आपके यहाँ एक बहुत बड़ा कवि-सम्मेलन हुआ करता था, जिसमें कवियों को बहुमूल्य वस्त्र और द्रव्य पुरस्कार-स्वरूप दिये जाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पजनेस, राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द, अम्बिकादत्त व्यास आदि सुप्रसिद्ध कवि और लेखक भी समय-समय पर आपके द्वारा सम्मानित हुए। आपके आदेश पर कवि रामप्रसाद ने सन् १८२० ई० में 'आनन्द-रस-कल्पतरु'[३] नामक ग्रंथ की रचना की थी।

आपके द्वारा रचित 'रागसरोज' नामक एक ग्रंथ का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त आपने अनेक 'ध्रुपद' भी बनाये थे, जो उत्तर-भारत के संगीतों में विशेष प्रचलित हुए। कराली काली के उपासक होने के कारण आपकी रचनाओं में दुर्गा-वन्दना का बाहुल्य है।[४]

उदाहरण

विन्ध्येश्वरी विविधरूप राजित श्री विन्ध्याचल।
जगत विदित धर सरूप, ब्रह्ममयी सिद्धस्थान॥
इन्द्रादि कर जोर द्वार, सनकादिक नहिं पावे पार।
सुर नर मुनि विनय करत, ब्रह्मादिक धरत ध्यान॥
जित तित परवत परवान, सुरसरि को धवल धार।
चन्द्रमा वितान तान, प्रदीपक मनहु भान॥
ऋद्धि-सिद्धि सकल दृष्टि सर्वमयी सर्वकला।
'आनँद' को सुख-निधान॥[५]

❋

१. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० १८।

२. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

३. इस ग्रंथ की मूल हस्तलिखित प्रति मन्नूलाल पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित है।

४. आपके अनुज की रचनाओं का एक संग्रह 'दुर्गा-आनन्द-सागर' नाम से सीमित संख्या में, लीथो में छपा था, जिसकी एक प्रति काशी-नरेश के पास हाल तक थी। कहते हैं, बेतिया-राज के भूतपूर्व मैनेजर श्रीविपिनविहारी वर्मा ने भी इस प्रकार के लगभग ५०० पदों का संग्रह कराया था। कहा नहीं जा सकता, उसका क्या हुआ?

५. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखितग्रंथ-अनुसंधान-विभाग, में सुरक्षित और श्रीगणेश चौबे (बँगरी, चम्पारन) द्वारा सम्पादित हस्तलिखित-संग्रह 'विभिन्न कवियों के पदों के संग्रह' से।

इसवी खाँ

आप भभुआ-सबडिविजन (शाहाबाद) के निवासी थे।[1] हिन्दी में शान्त और शृंगार-रस की कविताएँ आपने बहुत अच्छी लिखी थीं। आपने 'विहारी-सतसई' की टीका भी राजा छत्रसिंह की आज्ञा से लिखी थी, जिसका नाम 'रस-चन्द्रिका' है।[2]

उदाहरण

(१)

इस जगह बादि को अर्थ वृथा को है। हेत्वार्थ दोहे का यह है कि अपने मत का झगरा करना वृथा है। क्योंकि जिननै सेया तिननै मानो नन्द किसोर ही को सेया है, क्योंकि ब्रह्मा, शिव सनकादि सब विष्णु ही हैं। तौ जिननै जिसको पूजी, तिन मानो विष्णु ही को पूजी।

पमाणालंकार, तिसका लक्षण।[3]

(२)

सबेर का समै है। सारी रात मनावते सबेरा हो गया। सो सखी नायिका सो कहत है कि हा हा वदन उघारि हम सब सखियाँ दग सफल करो। और सकारे हुए सों जो एकमल खिले हैं, सो तेरा मुख चन्द देखे सों मूंदि जाहि। और सकारे हुए सो जो चाँद मन्द हुआ है, तिसे हंसी होइ, क्योंकि तेरा मुख चन्द ऐसा है कि सबेरा हुए भी उसकी जोति मन्द नहीं होती। और जो सखी सों चन्दमुखी लीजै औ सरोज सों कमल नैनी लीजै तौ अर्थ तो होते हैं पै व्यंग सो छिपै होते हैं।[4]

※

ईश कवि

आप मिथिला-निवासी और मिथिला-नरेश महाराज नरेन्द्रसिंह (सन् १७४४-६१ ई०) के दरबारी-कवि थे। महाराज नरेन्द्रसिंह ने बिहार के सूबेदार राजा रामनारायण की सेना के साथ युद्ध कर जो विजय प्राप्त की थी, उसीका वर्णन आपने आल्हा-छन्दों में 'नरेन्द्र-विजय'[5] नामक पुस्तक में किया है।

---

१. श्रीगुप्तनाथ सिंह (भभुआ, शाहाबाद) से प्राप्त सूचना के आधार पर।

२. इस ग्रंथ की मूलप्रति श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित है।

३. 'साहित्य' (वही, जुलाई १९५४ ई०), पृ० ७०।

मूल—

अपने अपने मत लगे, वादि मचावत सोर।
ज्यौं ज्यौं सबई सेइये, एकै नंद किसोर॥ —बिहारी

४ वही, पृ० ७०।

मूल -

हाहा बदन उघारि द्रिग, सफल करै सब कोइ।
रोज सरोजनि के परे, हँसी ससी की होइ॥ —बिहारी

५. यह पुस्तक उसी दरबार के लाल कवि की 'कन्दर्पीघाट' नामक पुस्तक से मिलती-जुलती है।

उदाहरण

एक एक को लियो सलाम, लिये मोजरा एक एक को ।
बाबू मनसी खास दिवान, दच्छिण बैठे महाराज के ।।
उत्तर ओझा ओ मतिमान, मन्त्र बिचारे राजकाज के ।
पच्छिम सभै सिपाही लोग, खास पास में बकशी बैठे ।।
ताके पीछे खाश खवाश, ठाढर है सभ अदब साथ सें ।।
बैठे सभके बिचमें आए, महाराज नर ईन्द्र बहादुर,
ताके सोभा कौन बखान, जैसे तारन में शशि पूरन ।।
पण्डित पच्छक करै विचार, चारो वेद पढ़े वैदिक सभ ।।
करे योतषी लगन विचार, कहूँ आगमी मंत्र विचारे ॥
बन्दी विरुद सुनावे ठाढ, कहूँ कवीश्वर रचे कहाखा ॥
सर्वजान मन करै विचार, बात सुनावे तीन काल के ॥
करै कोष साहित्य विचार, कहूँ मोलना वैत सुनावै ।।
कहूँ फारसी होत बखान, बैठे मनसी देश देश के ॥
दही वल्लभी लावे द्वार, लिए गागरी नागरि गावे ।।
राज सभा बैठे चहु ओर, लिये ढाल तलवार हाथ में ॥
राउत घर के जो रजपूत, सभे सपूता निज माता के ।।
जाके लखि डरपे सुर राज, एसौ सिपाही मिथिलापति के ।।
वैश बुनेला और चनेल, खड़े बधेला खड्ग हाथ से ।।
सेना है चौभान विशेष, सब्बर सेना महाराज के ।।[१]

※

उदयप्रकाशसिंह

आप गंगातटस्थ बक्सर (शाहाबाद) के महाराज गोपालशरणसिंह के योग्य पुत्र थे ।[२] आपने गोस्वामी तुलसीदास की 'विनय-पत्रिका' पर एक टीका लिखी थी, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई । आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला ।

※

---

१. नरेन्द्र-विजय (पं० महेश झा, प्रथम सं, १९२१ ई०), पृ० ३-४ ।

२. बिहार-दर्पण (वही), पृ० १९७ ।

उमानाथ

आपका निवास-स्थान दरभंगा जिले का भौड़ागढ़ी ग्राम था। पीछे आप 'माड़र' (दरभंगा) और फिर वहाँ से हरिपुर (दरभंगा) जाकर बस गये।[१] आपके पिता का नाम बालकृष्ण झा था। आप मिथिला-नरेश राघवसिंह के फौजी सरदार (बख्शी) थे। इसी कारण आज भी आपके वंशज 'बख्शी' कहलाते हैं। आप राजा राघवसिंह से आरम्भ कर विष्णुसिंह, नरेन्द्रसिंह और प्रतापसिंह के समय तक उस दरबार में रहे।[२] आपकी लिखी भक्तिविषयक कविताएँ मिलती हैं, जो भक्तों में बहुत प्रचलित हैं।

उदाहरण

हर हर बम्भोला बम्भोला
बाघछाल रुद्रमाल विराजै हाथ भस्म की गोला ॥ध्रु०॥
गिरिजापति की करँहि आरती फणि मणिदीप जरैया।
गाबै योगिनी सङ्ग सभै मिलि नाचै ताल लगैया ॥१॥ हर हर०।
बाजत घण्टा ढोल तमूरा भेरी ओ हरबीना।
शंख महाधुनि होत परम्पर कौतुक आरति कीना ॥२॥ हर हर०।
भूत प्रेत मिलि करत कुतूहल करताली गढ़िथैया।
सखासहित शमशान विराजै शङ्कर ताल लगैया ॥३॥ हर हर० ॥
उमानाथ करजोड़ि विनति करु, महादेव गुण गैआ।
जन्म जन्म के पाप हरहु मोर, चारि पदारथ पैया ॥४॥ हर हर०।[३]

❀

ऋतुराज कवि

आप सुखपुरा परसरमा (सहरसा)-निवासी और वर्त्तमान जगदीश कवि के पितामह कृष्णकवि के चचेरे भाई थे।[४] आपका जन्म सन् १७८८ ई० के लगभग हुआ था।

व्रजभाषा में रचित आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ मिलती हैं।

उदाहरण

नर जन्म सिराना राम बिना।
भव जल नदी भयावन गहरी, जल है अगम अथाह।
फुटी नाव टूटी करुआरा, ता बिच कुटिल मलाह।
ना कोइ अपना बिराना राम बिना ॥
ये बजार गुलजार लगी है, ता बिच करो बेपारा।
सुघर होहु हरि नाम बनीजो, उतरो भवजाल पारा।
काहे को मन घबराना राम बिना।

---

१. मिथिलाभाषामय इतिहास (वही), पृ० २४७।
२. महाराज राघवसिंह का राज्यारोहण-काल १७०४ ई० और महाराज प्रतापसिंह का राज्यावसान-काल १७७५ ई० था।
३. मिथिलाभाषामय इतिहास (वही), पृ० १७५-१७६।
४. श्रीजगदीश कवि (वही) द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

नामदेव, प्रह्लाद, सुदामा तर्यो अजामिल राय।
रहा एक रितुराज महा जड़ लीजै बाँह लगाय।
विनती सुनौ वोउ काना राम बिना। नर जन्म० ॥[१]

※

कमलनयन

आप दरभंगा जिले के सरिसब ग्राम निवासी थे।[२] आपके पिता पं० मनोहरमिश्र सुप्रसिद्ध विद्वान् म० म० पं० शंकरमिश्र के वंशज थे। मैथिली में आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ मिलती हैं।

उदाहरण

(१)

तहिआ देखल हम ओरे जे धनि। भूतल तलित लता सनि।
से आब दिन दिन ओरे तोहेँ विनु। भेलि जेहेन से पुछि जनु ॥
मनमथ विषधरेँ ओरे डाँसलि। नयन-नीरेँ जनि भासलि ॥
अमिअ अधर रस ओरे पीउति। तैहि जीउति तँ जीउति ॥
'कमलनयन' भन दिढमति। रस बुझु चम्पावति पति ॥[३]

(२)

भेल भङ्कुर मञ्जरीभर चूअ चारुहु दीस।
जनि मनोहर मधुरि मधुवन तिलक मञ्जु शिरीस ॥
कुसुमशर जयहेतु उपवन नव नगेसर भास।
अति सुगन्ध लवङ्ग पङ्कज मालती परगास ॥
समय रसमय भेल असमय चलल उड़ि अकास।
अवश उपगत भेल मधुकर पारिजातक पास ॥
आक पसरल भेल परिमल रहल लोभेँ लोभाए।
कलपतरु काँ ई उचित नहि भमर भूखल जाए ॥
'कमलनयन' विचारि निअ हिअ बुझथि रस रसमन्त।
नृपति पृथ्वीशयन रुकुमावति कलामय कन्त ॥[४]

---

१. श्रीजगदीश कवि (वही) द्वारा प्राप्त।
२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ७५।
३. वही, पद सं० ३३, पृ० १८।
४. वही, पद सं० ३४, पृ० १९।

(शेख) किफायत

आपका निवास-स्थान पूर्णिया के पूरब दवेल परगने का 'दुमका' नामक स्थान था।[1] आपकी गणना बिहार के प्रसिद्ध सूफी-कवियों में होती है। आप शाहजहाँ (सन् १६२७-५८ ई०) के पुत्र और बंगाल के दीवान शाहशुजा के समकालीन थे। आपके पिता का नाम शेख मुहम्मद था। मुहम्मद आजम आपके पीर थे और गुरु थे मौलवी मुहम्मद। लगभग पच्चीस वर्ष की अवस्था में आपका परिचय नवाब सैफखाँ के मुसाहब शेख मुहम्मद शमी नामक विद्वान् से हुआ। उनसे और नाजिरपुरवासी हजरत मियाँ की प्रेरणा से आपने 'विद्याधर',[2] नामक एक प्रेम-कथा की रचना ११३६ ई० में पुस्तक-रूप में की थी। इसकी मूलकथा एक गायक के मुख से सुनी लोक-कथा पर आश्रित है। इसके अतिरिक्त इसमें सूफी-कवियों की परम्परा का पालन करते हुए यत्र-तत्र सूफी-मत के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा प्राग्भावी सूफी-प्रेमाख्यानों का भी उल्लेख मिलता है। पूर्णिया के कई इलाकों में इसका आज भी बहुत अधिक आदर है। इन इलाकों में सभी वर्ग के लोग एक विशेष शैली से इसे गाकर प्रसन्न होते हैं।

उदाहरण

(१)

प्रथमहिं सुमिरौं नाम विधाता। जोविधि विधि किन्ह सकल रंगराता॥
सात अकास किन्ह मैं गुनी। सरंग पताल रचै बिनु थुनी॥
सातो दीप किन्ह गम्भीरा। सात समुद्र किन्ह निरनीरा॥
अंडज, पिंडज, अंकुरज किन्हा। ओ उखमज पुनि पैदा किन्हा॥
जो चरचै पावे पुनि सोई। अलख रूप लखि पारे न कोई॥
सरवन नहीं सुने चहुँ बाता। लोचन नाहि देखे सब गाता॥
हृदय माहि बुझे मन ज्ञाना। कमल कली मँह भँवर छिपाना॥[3]

(२)

कमल फूल अस कैना पाई। रूपभान कर बात सुनाई॥
सुनी के रूप भई रंग राती। उपजा बिरह बेथा सब गाती॥
रूप तोहार सुना जब लोना। अस भई कोई डारे जस टोना॥

---

१. 'पुरनिआ सो पूरब निअरे एक गाँवा। परगने दवेल दुमका नाँवा।'
—'साहित्य' (वही, अक्टूबर १९५८ ई०), पृ० ४।

२. इस पुस्तक की रचना दोहा-चौपाई में हुई है। प्रायः सात चौपाइयों के बाद दोहा दिया गया है। यह उर्दू-लिपि में प्रकाशित भी हो चुकी है। इसकी एक दुर्लभ प्रति किशनगंज (पूर्णिया) के वकील श्रीमुहम्मद सुलेमान साहब 'सुलेमान' की कृपा से प्राप्त हुई है। कैथी-लिपि में लिखित इसकी एक हस्तलिखित-प्रति भी पटना-विश्वविद्यालय के विश्रुत शोधकर्त्ता तथा इतिहास-प्राध्यापक श्रीहसन अस्करी साहब से मिली है। 'विद्याधर' पर एक महत्त्वपूर्ण परिचयात्मक लेख उर्दू की 'इनसान' नामक पत्रिका के 'पूर्णिया-विशेषांक' में छपा था, जो द्रष्टव्य है।

३. परिषद् के हस्तलिखितग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में संगृहीत पोथी 'विद्याधर' की प्रतिलिपि से।

केहि विधि पार गेआ वही सोई। जौ लगि ई अमिल बधे नहीं कोई ॥
आदर मान बहुत मोर कीन्हा। ओ लोचन पंडित संग कीन्हा ॥
जब लोचन भौ साथ हमारा। तब देखल हम दरस तोहारा ॥
अब लोचन जाने और तुह राजा। अब है नहीं मोर कुछ काजा ॥[१]

❀

कुंजनदास

आपका नाम अखौरी कुंजविहारीलाल था। पीछे कुछ दिनों के बाद कुंजविहारीदास कहलाने लगे। कविता में आप अपना नाम 'कुंजन' या 'कुंजनदास' ही लिखते थे।

आपका निवास-स्थान शाहाबाद जिले के 'पँवार' परगने का 'कोरी' ग्राम था।[२] आपके पिता का नाम अखौरी रासविहारीलाल था। आप शिव के अनन्य उपासक थे। आपने 'शिवपुराण' के आधार पर दोहा-चौपाइयों, सोरठा और विविध छंदों में 'शिवपुराण-रत्न'[३] नामक एक बृहत्काय काव्य-ग्रंथ की रचना की थी। इसके अध्ययन से इस पर 'रामचरित-मानस' का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। इस ग्रंथ के अन्त में दिये गये दो दोहों से जान पड़ता है कि आप गा-गाकर इस ग्रंथ की रचना करते जाते थे और आपके ही नाम के आपके मित्र, जो मुँगेर जिले के 'रजौरा' ग्राम के निवासी और परम प्रवीण प्रबन्ध-लेखक थे, उसे लिखते जाते थे।

उदाहरण

(१)

जै जै जग माता पंकज गाता लाजत दामिनि जोती।
छवि सुभग बिराजे रति मन लाजे भूषण माणिक मोती ॥१॥
जै शम्भू प्यारी महिमा तुम्हारी श्रुति मुनि पार न पावे।
निशि वासर धावहिं अंत न पावहिं नेति निरंतर गावे ॥२॥
तन श्याम सुहावन त्रिभुअन पावन भूषण लर लट कारी।
लक्ष्मी गुण खानी रती सयानी उपजहिं अंश तुम्हारी ॥३॥
मैं अति अघ मूला श्रुति प्रतिकूला बिनवौं सीस नवाई।
छमि अवगुण मोरी अधिक निहोरी हेरहु नैन उठाई ॥४॥
श्रुति कुंडल हलके माणीमय झलके ललके रति उर केरी।
दुति अंग जो दमके छविगण झमके मोहे युवति घनेरी ॥५॥

---

१. परिषद् के हस्तलिखितग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में संगृहीत पोथी 'विद्याधर' की प्रतिलिपि से।

२. 'साहित्य' (वही, अप्रैल १९५२ ई०), पृ० ३५।

३. इस ग्रंथ की एक मुद्रित प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना के हस्तलिखितग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित है। इसके आरम्भ के ४ पृष्ठ और अंत में ९७२ के बाद के कुछ पृष्ठ नहीं हैं, जिससे ग्रंथ के विषय में अनेक आवश्यक बातों का पता नहीं चलता। ग्रंथ में मुँगेर जिले का उल्लेख होने से ज्ञात होता है कि इसकी रचना सन् १८३२ ई० के बाद हुई थी; क्योंकि मुँगेर जिले का निर्माण सन् १८३२ ई० में ही हुआ था।

जै रम्बक परदनि शंकट गर्दनि मर्दनि विपति बरूथा।
धन केसरि गर्जनि बिघिनि बिबर्जनि सिर्जनि त्रिभुअन रुथा ॥६॥
यह सिंघ जो तड़के अरि उर करके धड़के असुरनि काया।
भव बारिधि डूबत जेहि मन ऊबत उबरे तुम्हरहिं दाया ॥७॥
यह चरण तुम्हारी नखदुतिकारी जन उर करत अंजोरा।
अब यह वर मागों चरणन लागों आस पुरावहु मोरा ॥८॥
कहे विधि कर जोरी मैं मति भोरी बिमल सुभग वर दीजै।
यह कुंज बिहारी शरण तुम्हारी प्रगट दया अब कीजै ॥९॥[1]

(२)

जै जै कृपाल दयाल शंकर हरण भाव दुख दारुणं।
महिमां उदार अपार कहे श्रुति लसत पद कंजारुणं ॥
जो शरण आवहिं विभव पावहिं बिरद बर मुनि गावहीं।
सब आस तजि गहे चरण पंकज बेगि तोहि सो पावहीं ॥
तुम शरण पालक सोच घालक दीन बंधु सो नाम है।
भक्त रंजन बिपति गंजन सिद्धप्रद सुख धाम है ॥
प्रभु चरण जब लो न जान हम सपनहुं न सुख उर पायऊ।
अब दास कुंजन शरण आये सकल सिद्ध सोहायऊ ॥[2]

कुलपति

आप दरभंगा जिले के नवटोल-सरिसब ग्राम-निवासी[3] और वर्त्तमान सुकवि प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) के वृद्ध-प्रपितामह थे। आपने मैथिली में काव्य-रचना की थी, जिनमें से कुछ यत्र-तत्र प्राप्त होती हैं।

उदाहरण

जनु होअ मास अखाढ़ हे सखि ! बाढ़ मनमथ-आधि ओ।
चीर चानन चन्द्रमारुचि, चारिगुण बढ़ धाधि ओ।
आरे-धाधिन उपशम होअ मोर। पिअ गुण बिसारि बैसल मोर ॥
मास साओन अति सोहाओन, फुबल वेलि चमेलि ओ।
रभस सौरभ भमर भमि भमि, करए मधु रस केलि ओ।
आरे-केलि करए अलि मनदए, अधिक विरह मोहि उपजए।

---

१. शिवपुराण-रत्न (पूर्वार्द्ध, खण्ड २) पृ० ७६-७७।
२. वही (उत्तरार्द्ध, खण्ड ११), पृ० ८९६।
३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ७७।

भादव घन बहराय दामिनि, गरजि गरजि सुनाव ओ।
बरिस रिमिझिमि बुन्द घनहन, मोहि किछुन सोहाव ओ।
आरे-भाविनि नयन मदन-शर, मुरुछि-मुरुछि मोर तनु भर।
कत सहब परिणाम हे सखि! करब कोन परकार ओ।[१]

❀

कृष्णाकवि

आप सुखपुरा परसरमा (सहरसा) निवासी और मिथिला-नरेश महाराज महेश्वरसिंह के आश्रित कवि थे।[२] आपके पिता हेमन[३] कवि थे। आपके पुत्र का नाम अच्युतानन्द[४] था। ये भी एक सुकवि थे। वर्त्तमान जगदीश कवि आपके ही पौत्र हैं। आपकी मृत्यु लगभग १०७ वर्ष की आयु में हुई।

आप एक कृष्ण-भक्त और अच्छे कवि थे। कहते हैं, सौरिया (पूर्णिया) के राजा महाराज विजयगोविन्दसिंह और उनकी रानी इन्द्रावती ने आपको मोती-विरदह (सहरसा) में ५१ बीघे जमीन आपकी कवित्व-शक्ति पर मुग्ध होकर दिया था। आपकी कविताएँ व्रजभाषा में मिलती हैं।

उदाहरण

देखु सखि आजु जगदम्ब सोभा बनी।
त्रिविध भवताप से नासनी हैं ठनी।
विश्वदल कंत पर सिंह संग्राम कृत चरण अरविन्द धरि असुर दल को हनी।
रंभ के खंभ पर केहरि कलि नव, वलित कल कनक की कांत सीढ़ी घनी।
पालिका मेरु पर कल्पतरु साख दस विविध विधि अस्त्र सौ सजदल पै तनी।
कंबु कल कीर चख चारु चंचल रुचिर, धनुष धरि चंद युग पच्च तापै फनी।
मुदित कृष्णाकवि मातु दुख दरद हरु राखु निज चरण यह आस कविता बनी।[५]

❀

केशव[६]

आप मिथिला-निवासी थे।[७] अनुमान किया जाता है कि आप मिथिला-नरेश महाराज प्रतापसिंह (सन् १७६१-७६ ई०) के दरबारी कवि थे। आपने मैथिली में कुछ कविताओं की रचना की थी, जो लोककंठ में उपलब्ध हैं।

---

१. मैथिली-गीत रत्नावली (वही), पद० सं० ४६, पृ० २४-२५। बारहमासा के पूरे पद के लिए, देखिए वही, पृ० २४-२६।
२. श्रीजगदीश कवि (वही) से प्राप्त सूचना के आधार पर।
३. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।
४. इनका भी परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।
५. श्रीजगदीश कवि (वही) से प्राप्त।
६. मिथिला में इस नाम के चार और भी साहित्यकार हो गये हैं, जिनकी रचनाएँ संस्कृत में प्राप्त हैं।
७. A History of Maithili Literature (वही), P. 413.

उदाहरण

सुनह वचन सखि मनदए, दहए चाहए तनु आज।
पबन परस तरसए जिब, मदन दहन सरसाज।
कोन परि उबरब हरि हरि, धैरज धरि धरि राख।
छन छन मुरुछि मुरुछि खसु, सखि न जिउति सखि भाख।
कि करब सुनि सुनि पिक रब, निक रब मोहि न सोहाए।
हहरि हहरि हरि हरि कए, निरदय अजहु न आए।
सखि सेज सिजह नलिनि दल, तैहुँ तह होअ अबसान।
बन कुहकए घन सिखिगन, सुनि सुनि दह दुनु कान।
धरम करम बिछुड़ल मोर, पुरुष कएल कत पाप।
धैरज धएरहु 'केसब', रस बुझ नृपति प्रताप।[१]

(अखौरी) गणेशप्रसाद

आपका जन्म सन् १७९८ ई० के लगभग, धमार-ग्राम (शाहाबाद) में हुआ था।[२] आप वर्त्तमान अखौरी वासुदेव नारायणजी के पितामह के ज्येष्ठ भ्राता थे। आपने सन् १८३३ ई० से सरकारी नौकरी आरम्भ की थी। सन् १८४८ ई० में आपने पदत्याग कर वैराग्य ग्रहण कर लिया। आप फारसी के बहुत बड़े विद्वान् थे। आपने 'भगवद्गीता' का उर्दू में अनुवाद किया था और हिंदी में उसकी टीका[३] लिखी थी।

आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

गुणानन्द

'करण जयानन्द'[४] के पुत्र होने के कारण आपका निवास-स्थान दरभंगा जिले का भगीरथपुर-ग्राम सिद्ध होता है। मैथिली में आपके कुछ पद यत्र-तत्र मिलते हैं।

उदाहरण

कमलिनि मन गुनि करिअ विवेक॥
तुअ गुण ऋतुपति भमर अतिथि भेल, लुबुधल कुसुम अनेक।
प्रेमक पथिक विमुख चल जाएत, अपयश होत तुअ पास।
दुरयशों सगर नगर परिपाटब, आन करत उपहास॥

---

१. Journal of the Asiatic Society of Bengal (Vol. 53, Part I, 1884, Spl. No), P. 89.

२. अखौरी वासुदेव नारायण, (धमार, शाहाबाद-निवासी, 'रूपकला-कुटीर,' मीठापुर, पटना), द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

३. इस पुस्तक को आरा के बाबू हरवंश सहाय वकील ने छपवाकर प्रकाशित किया था। आजकल यह अप्राप्य है।

४. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

सब खन सरबस न रह अपन वश, एहि महि के नहि जान।
तैं अनुमाने पथिक अलि राखिअ, मालती प्रान समान।।
भनथि जयानन्द-तनय 'गुणानन्द', मन मानिअ परतीति।
आइति पाए लाजे नहि राखिअ, करिअ सुजन सँ प्रीति।।[१]

❀

गुमानी तिवारी[२]

आपका निवास-स्थान पटना था।[३] हिन्दी में आपके द्वारा रचित दो पुस्तकों का पता लगता है—'कृष्णचन्द्रिका' और 'छंदाटवी'। यों खड़ीबोली में रचित आपके कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं।

उदाहरण

चंचल चलत चारु रतनारे ललित दृगन की आभा;
मृग खंजन गंजन मन रंजन कहैं कंज की का भा।
अलकैं छूटि रही मुख ऊपर मंजु मेच घुँघरारी;
कल कपोल बोलनि मृदु खोलनि भृकुटी कुटिल पियारी।[४]

❀

गोकुलानन्द

आप 'उजान' या 'सरिसब'[५] (दरभंगा) ग्राम के निवासी[६] और मिथिला के राजा माधवसिंह (सन् १७७६-१८०८ ई०) के समकालीन थे। आपका लिखा सात-अंकों का एक नाटक 'मान-चरित' मिलता है। इसमें मैथिली के साथ व्रजभाषा के भी पद आये हैं।

उदाहरण

जय जय भारति भगवति देवि। छ (क) ने मुदित रहु तुअ पद सेवि।
चन्द्रधवल रुचि देह विका(स)। श्वेत कमल पर करहु निवास॥
वीणारव रसिता वरनारि। सतत मगन गिरिराज कुमारि॥
जन्म मरण नहि तोहि भवानि। त्रिदशदास तव त्रिगुणा जानि॥
अरुण अधर बन्धूक समान। तीनि नयन विद्या वरदान॥
गोकुल तुअ सुत सविनय मान। देहु परम पद दायक जान॥[७]

❀

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ३०, पृ० १७।
२. मिश्रबन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, द्वितीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०) में जिस 'गुमान तिवारी' का नामोल्लेख किया है, वे वस्तुतः आपसे भिन्न नहीं जान पड़ते। देखिए—वही, पृ० ८२०।
३. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० ९६७।
४. वही (द्वितीय सं०, द्वितीय-भाग, १९८४ वि०), पृ० ८२०।
५. ये दोनों गाँव आस-पास ही हैं।
६. A History of Maithili Literature (वही), P. 328.
७. वही, पृ० ३२८-३२९।

गोपाल

आप दरभंगा जिले के बेहटा ग्राम-निवासी[1] और मिथिला के महराज नरेन्द्रसिंह (सन् १७४४-६१ ई०) के दरबारी कवि थे। आपके पिता का नाम पं० लक्ष्मण झा था। आप संस्कृत के विद्वान् थे। हिन्दी में आपकी रची तीन पुस्तकें मिलती हैं—'काव्यमंजरी', 'काव्य-प्रदीप' तथा 'श्रीमत्खण्डवलाकुल-विनोद'[2]। प्रथम दो पुस्तकें छंद एवं नायिका-भेद की हैं। तीसरी में मिथिला के खंडवला-वंश के नरेशों की वंशावली तीन-सर्गों में काव्यबद्ध है। आपकी शृंगार और वीर-रस की कविताएँ अच्छी हैं।

उदाहरण

(१)

महराज शुभङ्कर ठाकुर जू मिथिला तजि गौ सुर धाम जवै।
चढि दिव्य विमान निशान लिये सुर सुन्दरि गान मचाइ तवै॥
शिव ब्रह्म शची पति रारि करै हमरे हमरे पुरवास पवै।
हरि दूत पठाय मङ्गाय लिये तव धाम दिये निज रूप सवै॥[3]

(२)

साजि सिंगार सुहागिनी सैन चली रचि लैन सुमैन लजाहीं।
स्याम लिए करवाल बिसाल लखै ततकाल न जात है पाहीं।
ज्यौं सुसुकाए कै लाय रही अति प्रौढ़ महारथ्र मैं गहि बाहीं।
नाह को देखि नवोढ़ तिया जिमि गेह गई रति चाहत नाहीं।[4]

※

गोपालशरणसिंह[5]

आप गंगातटस्थ बक्सर (शाहाबाद) के राजा थे।[6] आपके पूर्वजों ने उज्जैन (मालवा) से शाहाबाद में आकर जगदीशपुर, बक्सर और डुमराँव में राज्य स्थापित किये थे। गोस्वामी तुलसीदासजी की सुप्रसिद्ध 'विनय-पत्रिका' के टीकाकार उदयप्रकाशसिंह आपके ही पुत्र थे।

आप एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। पं० शिवलाल पाठक नामक एक विद्वान् की सहायता से आपने 'रामचरित-मानस' की टीका लिखी थी, जिसका नाम आपने 'मानस-मुक्तावली' रखा था। कहते हैं, पच्चीस रुपये दक्षिणा के साथ आपने इसकी ५०० प्रतियाँ संतों के बीच में बँटवा दी थीं। आपकी उक्त टीका अब अप्राप्य है।

※

---

१. जरइल तप्पा के विषैं, नाम बेहटा ग्राम। सरिसव छाजन मूल हैं, कविता वसु तेहि ठाम॥
भूसुर वंश पवित्र मैं, जनमैं परम उदार। धर्मनिरत सम्मत सकल, सदा शास्त्र होसियार॥
—श्रीमत्खण्डवलाकुल-विनोद (कवि पं० गोपाल झा, १६१८ ई०), पृ० १-२।

२. इसी पुस्तक के आरम्भ में आपने अपना वंश-परिचय देते हुए अपनी रचनाओं की भी चर्चा की है।

३. श्रीमत्खण्डवलाकुल-विनोद (वही, प्रथम सर्ग), पृ० २३-२४।

४. वही (द्वितीय सर्ग), पृ० ६७।

५. विस्तृत परिचय के लिए देखिए बा० रामदीनसिंह-कृत 'बिहार-दर्पण'।

६. बिहार-दर्पण (वही), पृ० १६७।

गोपीचन्द

आपका निवास स्थान वर्त्तमान मगही-क्षेत्र में कहीं था[१]। आपके मगही में रचना करने का उल्लेख मिलता है। आपकी रचना के उदाहरण नहीं मिले।

❀

गोपीनाथ

आप सहरसा जिले के 'शाहआलम नगर' नामक स्थान के निवासी थे।[२] आपका जन्म चैत्रशुक्ल ९, १८४५ वि० में और मृत्यु वैशाख शुक्ल ११, १९४४ वि० में हुई। हिंदी में आपने दो पुस्तकें लिखी थीं—'जयमंगलाप्रकाश' और 'गोपीनाथप्रकाश'। आपकी रचना के भी उदाहरण नहीं मिले।

❀

गौरीपति

आपकी रचना में आपका नाम कहीं-कहीं केवल 'गौरी' मिलता है। आप दरभंगा जिले के निवासी और वर्त्तमान मैथिल-विद्वान् कविशेखर पं० बदरीनाथ झा के अतिवृद्ध-प्रपितामह थे।

आपने मैथिली में पदों की रचना की थी, जिनमें कुछ यत्र-तत्र उपलब्ध हैं।

उदाहरण

चललि मधुरपुर साजि दधि बेचन बाला।
यमुना निकट तट जाए रे रोकल नन्दलाला।।
मुख अन्चल पट ओट रे दए बिहुँसलि वामा।
पुलक पुरल तन नेह रे देखि सुन्दर श्यामा।।
मुरली अधर बिराज रे सुन्दर मुख रासी।
मन मोर हरल गोपाल रे गोकुल केर बासी।।
करब कओन परकार रे सोचए ब्रजबाला।
पड़ल कुञ्ज वन साँझ रे बैरी भेल काला।।
जाए देब उपराग रे यशोमति महरानी।
हरि हटलो नहि मान रे लुट माल बिरानी।।
'गौरीपति' कवि भान रे सुनु गोप कुमारी।
सब तेजि भजिअ मुरारि रे नोखे गिरिधारी।।[४]

❀

---

१. (क) मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० ९९८।
(ख) डॉ० ग्रियर्सन ने भी अपने Linguistic Survey of India में आपकी चर्चा की है।

२. परिषद् में प्राप्त अज्ञात व्यक्ति की सूचना के आधार पर।

३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ८२।

४. वही, पद सं० ७०, पृ० ४०-४१।

चन्दनराम[1]

आपका निवास-स्थान शाहाबाद जिले का 'अम्बा' नामक ग्राम था[2]। आप कविराज साहबराम के सुपुत्र थे। आपका जन्म १७९६ वि० में चैत्र शुक्ल, रामनवमी को हुआ था। आप बड़े ही प्रतिभाशाली और परिश्रमी छात्र थे। अतएव थोड़े ही दिनों के अध्ययन से आप अनेक विषयों के अच्छे विद्वान् हो गये। आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता होने से आपकी गणना प्रसिद्ध वैद्यों में होती थी। १९ वर्ष की अवस्था में ही आपको गृहस्थी सौंपकर आपके पिताजी काशीवास करने चले गये। उनके जीवन-काल तक आप बराबर काशी जाकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करते रहे। उनकी मृत्यु के बाद आपने देशाटन कर अनेक राज-दरबारों से सम्बन्ध स्थापित किया। हिन्दी के कवि कालिदास के पुत्र कवीन्द्र उदयनारायण त्रिवेदी के द्वारा आपका परिचय अमेठी (अवध) के राजा से हुआ। कदाचित् इसी राज-दरबार से आपको 'कविराज' की उपाधि मिली थी। राज-दरबारों से आपको समय-समय पर हाथी-घोड़े भी मिलते रहे। हिन्दी के तत्कालीन कवि पद्माकर, बेनी, दत्त, भंजन, खुमान, भानु आदि से भी आपका बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क रहा। जीवन के अंतिम दिनों में आप घर पर ही एक पाठशाला स्थापित कर विद्यादान करने लगे। इस पाठशाला के लिए आपको बिहार के बक्सर, डुमराँव, जगदीशपुर तथा उत्तरप्रदेश के हरदी, मझौली, बलरामपुर, विजयपुर आदि राज्यों से आपको दो-दो सौ रुपये मासिक की आर्थिक सहायता मिलती रही। १८७० वि० में आप परलोक-वासी हुए।

आप एक सफल कवि थे। आपके पिता ही आपके काव्य-गुरु थे। एक प्रकार से आपके वंश की जीविका-वृत्ति ही काव्य-रचना थी। सर्वप्रथम आपने 'अमात्रिक हरस्तोत्र' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका की रचना की थी।[3] इसके पश्चात् नन्ददास-कृत 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' से प्रेरणा पाकर आपने 'नामार्णव'[4] और 'अनेकार्थ-ध्वनि-मंजरी'[5] नामक ग्रंथों की रचना की थी।[6] इन दोनों ग्रंथों की रचना १८६६ वि० (१८०९ ई०) में हुई थी।

उदाहरण

(१)

सूर्य्य शुक्र केहरि किरिणि, इन्द्र हरित हरि भेक।
हय कपि यम विधु विष्णु हरि, जल अलि पवन अनेक।।

---

१. विस्तृत-परिचय के लिए देखिए, बा० रामदीनसिंह-कृत 'बिहार-दर्पण'। इसके अतिरिक्त, आरा से प्रकाशित 'भोजपुरी' पत्रिका (जनवरी १९५६ ई०) में श्रीउदयशंकर शास्त्री ने भी आपका जीवन-परिचय और आपकी रचनाओं का उदाहरण प्रकाशित किया था।

२. बिहार-दर्पण (वही), पृ० १७२।

३. इसमें मात्रा-रहित शब्दों में शिवजी की स्तुतियाँ संगृहीत हैं।

४. इसमें दोहा-सोरठा छन्दों में एक शब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त आपने इसमें अपना परिचय भी लिखा है।

५. इसमें एक शब्द के विभिन्न अर्थ दिये गये हैं। साथ ही इसमें भी आपने अपना परिचय दिया है।

६. ये दोनों ग्रन्थ मुद्रित हुए थे, किन्तु अब ये प्राप्य नहीं हैं।

श्रवण कमल धन शर धनुष, हरि कुरंग नभ काम।
पावक पय गिरि गज कनक, भिरु शुक अहि हरि नाम ॥[१]

(२)

पावक पंकज पीक पट, धन धनु घन घट चीर।
कनक कठिन कुच कीर करि, नभ नग नव निसि नीर ॥
दादुर द्विज दग दीप द्युति, बिधु विष बीना बच्छ।
मदन मयुर मृदु मृग मधुप, गो हय हरि धनु अच्छ ॥[२]

❋

चन्द्रकवि

आप मिथिला के राजा नरेन्द्रसिंह (सन् १७४५-६० ई०) के दरबारी कवि थे।[३] आपने बिहार के नवाब के साथ हुए राजा नरेन्द्रसिंह के युद्ध का वर्णन अपनी कविता में किया था।

उदाहरण

ऐसे महाजोर घोर गङ्ग सुलतानी बीच झूमत बबर जङ्ग सङ्गर करीन्द्र हैं।
औलिया नवाब नामदार पूछैं बार-बार ये दोऊ कौन अरिवानरपरीन्द्र हैं ॥
शाहेब सुजान जयनुद्दीन अहमदखाँन सामने ह्वै अर्ज करै कहै 'कवि चन्द्र' हैं।
ये तो दोनवार केशोसाह के अजीतशाह, आगे राघोसिंह जी के नवल नरेन्द्र हैं ॥[४]

❋

चन्द्रमौलिमिश्र

आप कविता में अपना नाम 'मौलि' लिखा करते थे।

आप गया के निवासी थे।[५] आपके पूर्वज कांपिल्य (उत्तरप्रदेश) से गया आये थे। आपके पिता का नाम पं० वंशीधरमिश्र और पितामह का नाम पं० लक्ष्मीपतिमिश्र था। आप भोजपुर के जमींदार प्रबलशाह[६] के पौत्र उदवन्तशाह के दरबार में रहते थे।

आपने अपने आश्रयदाता के आदेश पर 'उदवन्त-प्रकाश' नामक नायिकाभेद-सम्बन्धी एक सुन्दर ग्रंथ की रचना १७५२ ई० (१८०९ वि०) में की थी। इस ग्रंथ में भोजपुर-राज-वंशावली के साथ कविवंश-वर्णन भी आया है।

---

१. बिहार-दर्पण (वही), पृ० १७८।
२. वही, पृ० १७८-७९।
३. मिथिलाभाषामय-इतिहास (वही), पृ० १८३-८४।
४. वही, पृ० १८४-८५।
५. परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित 'उदवन्त-प्रकाश' की मूलप्रति की अविकल प्रतिलिपि के आधार पर।
६. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

उदाहरण

(१)

बोले मनोहर मोर जहाँ, अलि कूजै कपोत करै पिक गानन।
मौलि कहै जहाँ आपुहि तौ, पिय कंठ लगै तरुनी तजि मानन॥
जाति जहाँ तू न खेद करै, सुख रासि तहाँ हूँ करि चतुरानन।
सीत समीर कलिन्दी के तीर, करील के कुञ्ज कदम्ब के कानन॥[१]

(२)

काम कली सी लली वृषभान की, संग अली के हुती जहाँ वैसी।
आये तहाँ बनि नंद कुमार, तिन्हैं लखि मार की ज्योति अनैसी॥
मोलि धरे ब्रजमोलि सो मोलि, लवंग की मंजरी मंजुल तैसी।
देखत राधिका के मुखचंद, गहि दुति है दिन चंद की तैसी॥[२]

❀

चक्रपाणि[३]

आप मिथिला-निवासी[४] और मिथिला के महाराज राघवसिंह के आश्रित कवि थे। वर्त्तमान नबानी ग्राम के पं० रत्नपाणि झा आपही के वंशज थे। आपने मैथिली में पदों की रचना की था, जिनमें कुछ उपलब्ध हैं।

उदाहरण

(१)

आज सपन हम देखल सजनी गे, हरि आएल मोर गेह॥
देखि देखि नयन जुड़ाएल सजनी गे, पुलके पुरल मोर देह॥
लहु लहु कर-पंकज धए सजनी गे, हृदय हमर हरि लेल॥
हम धनि किछुओ ना गुनल सजनी गे, हँसि परिरम्भण देल॥
यतने रतन धन पाओल सजनी गे, मोहि भेल हरिक समाज॥
कतेक रभस हम कएलहुँ सजनी गे, सुखें बिसरल सब लाज॥
राघव नृप रसविन्दक सजनी गे, सकल सुरत-सुख भेल॥
'चक्रपाणि' कवि गाओल सजनी गे, विषम विरह दुख गेल॥[५]

---

१. परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित 'उदवन्त-प्रकाश' की मूलप्रति की अविकल प्रतिलिपि से।

२. वही।

३. वस्तुतः बिहार में इस नाम के दो साहित्यकार हो गये हैं। एक 'प्रश्नतत्त्व' के लेखक और दूसरे 'तिथि-प्रकाश-व्याख्या' के लेखक। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि जिस कवि का परिचय यहाँ दिया जा रहा है, उसने किस ग्रंथ की रचना की थी।

४. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०); स्पष्ट है कि दूसरे चक्रपाणि का कुछ पता नहीं लगा।

५. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ३७, पृ० २०।

(२)

अलक विरचि ललाट शशिमुखि देल सिन्दुर विन्दु रे ।
भान हो जनि राहुतर रवि ताहितर बसु इन्दु रे ।।
भौँह काम कमान जीतल नयन खञ्जन राज रे ।
देखि सुललित नासिका शुक-चञ्चुकाँ होअ लाज रे ।।
अलक तिलक निहारि सुवदनि कएल मधुरिम हास रे ।।
गगन ऊपर चन्द्र-मण्डल चन्द्रिका परगास रे ।।
श्याम अभिनव रोमराजी कनक सुन्दर देह रे ।
काम जनि जय-पत्र पाओल देल विहि मसि-रेह रे ।।
चललि मदजराज-गामिनि साजि सुपहु समीप रे ।
पहिल पास तरास दुरिकए सङ्ग मदन महीप रे ।
'चक्रपाणि' विचारि निज मन ऊह कए किछु गाब रे ।
रमणि राधा रसिक यदुपति विहि मेराओल आए रे ।।[१]

चतुर्भुजमिश्र[२]

आप मिथिला के निवासी थे ।[३] मिश्र-बन्धुओं के अनुसार आपने हिन्दी में 'भवानी-स्तुति' नामक ग्रंथ की रचना की थी । मैथिली में आपके कुछ पद भी मिलते हैं ।

उदाहरण

नव तनु नव अनुराग । माधव । नव परिचय रस जाग ।।
दुहु मन वसु एक काज । माधव । आँतर भए रहु लाज ।।
दिनदिन दुहु-तनु छीन । माधव । एकओ ने अपन अधीन ।।
विनय न एको भाख । माधव । निअ निअ गौरव राख ।।
हृदय धरिअ जत गोए । माधव । नयन बेकत तत होए ।।
चतुर 'चतुरभुज' भान । माधव । प्रेम न होए पुरान ।।[४]

---

१. मैथिली गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ३८, पृ० २०-२१ ।

२. वस्तुतः इस नाम के चार कवियों का पता मिलता है । इनमें तीन की चर्चा डॉ० जयकान्त मिश्र ने की है । उन्होंने एक को 'साहित्य-विकास' (काव्य-प्रकाश के पंचम-अध्याय की टीका) का रचयिता, दूसरे को 'अद्भुत-सागर' का प्रणेता और तीसरे को 'विद्भाकर-सहस्रकम्' नामक ग्रंथ में उल्लिखित व्यक्ति बतलाया है ।—A History of Maithili Literature (वही), P. 41.

३. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० ६६६ ।

४. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ३५, पृ० १९ ।

चूड़ामणिसिंह

आप हजारीबाग जिले के निवासी थे।[१] आपने कई ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें एक 'सुखसागर' का ही पता है। आपकी रचनाएँ वाग्विदग्धता और उक्तिवैचित्र्य के लिए प्रसिद्ध हैं। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

※

छत्तरबाबा[२]

आप चम्पारन के 'पण्डितपुर' नामक-स्थान के निवासी थे।[३] आपके पिता का नाम शिवसिंह था। आप सात भाई थे।[४] सातों में आपका स्थान दूसरा था। आप पहले बेतिया-राज के तहसीलदार थे। अपने काम से आप एकबार 'ढेकहा' नामक गाँव में जा रहे थे। उस मार्ग पर 'झखरा' नामक स्थान में एक बरगद के पेड़ के नीचे मनसाराम साधु रहते थे। वहाँ आपने घोड़े से उतरकर उक्त साधु से उनके शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। इसपर पहले तो उन्होंने कहा कि तुम इस पोशाक में शिष्य नहीं बन सकते; किन्तु जब आपने अपनी पोशाक उतारकर उसे धूनी में फेंकना चाहा, तब उन्होंने आपको अपना शिष्य बना लिया। मनसाराम के अतिरिक्त चूड़ामनराम (बनवटवा, अरेराज से पश्चिम) भी आपके गुरु कहे जाते हैं। आपके शिष्यों में प्रमुख थे केशवदास और महावीरदास।

कहते हैं, श्रीभिनकराम से आपकी बड़ी घनिष्ठता थी। एकबार वे आपके यहाँ एक महीना ठहरे भी थे। आपकी पूँजी एक हाँड़ी थी। उसी में दिन में स्वयं भोजन बनाते और रात में उसीको तकिया बनाकर सो रहते थे।

आप सरभंग-सम्प्रदाय के एक प्रमुख संत थे।[५] कुछ लेखक आपको उक्त सम्प्रदाय का आदिकवि होने का श्रेय देते हैं।[६]

आपने अपनी रचनाएँ भोजपुरी में की थीं।

---

१. श्रीसूर्यनारायण भंडारी (इचाक, हजारीबाग) के द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

२. सरभंग-सम्प्रदाय की माधोपुर-परम्परा के प्रीतमराम के शिष्य भी एक 'छत्तरराम' हो गये हैं। वे गोरखपुर के निवासी थे।

३. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, प्रथम सं०, १९५९ ई०), पृ० १६४। पण्डितपुर में आज भी आपकी समाधि वर्त्तमान है।

४. वयःक्रम से उनके नाम इस प्रकार थे—तिलकधारीसिंह, छत्तरबाबा, पुरुषोत्तमसिंह, पसरामसिंह, जानकीराम, सियाराम और आत्माराम।

५. आपके अनुयायी पीछे कबीर-पंथी हो गये। डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने आपको सूर्यपंथी बतलाया है। इसी सिलसिले में श्रीशास्त्री ने लिखा है कि आप प्रातः सूर्योदय से सायं सूर्यास्त तक सूर्य की ओर दृष्टि किये खड़े रहते थे।—संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (वही), पृ० १५८।

६. भोजपुरी के कवि और काव्य (श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, प्रथम सं०, १९५८ ई०, भूमिका), पृ० ४०।

उदाहरण

(१)

देखली में ए सजनिया सइयाँ अनमोल के।
दूसो दुअरिया, लागे केवड़िया मारे सबद का जोर के।
सून भवन में पिया निरेखो नयनवा दुनू जोर के।
छत्तर निज पति मिललऽ भर कोर के॥[1]

(२)

तड़ तड़ दामिनी दमके, बिजली झनकोर के,
झर झर झर झर मोती झरे, हीरा लाल बटोर के।
गुरु के चरण रज पकड़ि सहोर के,
छतर निज पति मिले झकझोर के।[2]

❀

छत्रनाथ[3]

आपकी रचनाएँ 'छत्रनाथ,' 'छत्रपति,' 'नाथ,' कविदत्त', 'कवीश्वर दत्त' आदि नामों से भी मिलती हैं।

आपके पूर्वज मूलतः 'हाटी-उझटी' (दरभंगा) नामक स्थान के निवासी थे, पीछे सहरसा जिले के बनगाँव नामक स्थान में आकर बस गये।[4] आप मिथिला-नरेश महाराज श्रीमाधव-सिंह (सन् १७८५-१८०७ ई०) और लक्ष्मीनाथ गोसाईं के समकालीन थे। आपके पिता का नाम नन्दलाल झा था। आप दो भाई थे। बड़े भाई का नाम जीवनाथ झा था। प्रेमनाथ झा नामक आपके एक पुत्र भी थे।

आप एक बड़े निर्भीक और प्रतिभाशाली कवि थे। जनश्रुति है कि आप निरक्षर थे और महादेव के वरदान से कवि बने थे। आपकी ख्याति एक आशुकवि के रूप में भी थी। 'द्रौपदी-पुकार' 'हनुमान-रावण-संवाद,' 'बनगाँव-वर्णन' और 'सुदामा-चरित' इन लघु काव्यों के अतिरिक्त कुछ समस्या-पूर्त्तियाँ, कवित्त, सवैया आदि फुटकल रचनाएँ भी आपके नाम पर मिलती हैं।[5] इन सभी में 'सुदामा-चरित' ही आपकी प्रौढतम रचना है। इन रचनाओं की भाषा मैथिली और व्रजभाषा है।

---

१. भोजपुररी के कवि और काव्य (वही), पृ० १२४।
२. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (वही), पृ० ८९। रघुवीरदास (बेलसंड, मुजफ्फरपुर) के पास आपकी रचनाएँ हैं।
३. श्रीकामेश्वर चौधरी (बनगाँव, सहरसा) आपके विषय में विशेष रूप से अध्ययन कर रहे हैं।
४. श्रीचौधरी से प्राप्त सूचना के आधार पर।
५. इस प्रकार की फुटकल रचनाओं का संग्रह आपके वंशज श्रीशुभनारायण झा ने बड़े ही परिश्रम से किया है।

उदाहरण

(१)

जय, देवि, दुर्गे, दनुज गंजनि,
भक्त-जन-भव-भार-भंजनि,
अरुण गति अति नैन खंजनि,
जय निरंजनि हे।

जय, घोर मुख-रद विकट पाँती,
नव-जलद-तन, रुचिर कांती,
मारु कर गहि सूल, काँती,
असुर-छाती हे।

जय, सिंह चढ़ि कत समर धँसि-धँसि,
विकट मुख विकराल हँसि-हँसि,
शुम्भ कच गहि कएल कर बसि,
मासु गहि असि हे।

जय अमर अरि सिर काटु छट् छट्,
गगन गथ महि परत भट्-भट्,
खप्पर भरि-भरि शोषित भट्-भट्,
घोंटल घट-घट हे।

जय कतहु योगिनि नाचु महि मद्,
उठति, महि पुनि गिरति भद्-भद्,
रिपुर छुरिकत मौंसु सद्-बद्,
गिरल गद्-गद् हे।

जय कतहु योगिनि नाचु हट्-भट्,
कतहु करत शृगाल खट्-खट्,
दनुज हाड़ चिबाव कट्-कट्,
उठत भट्-भट् हे।

जय 'छत्रपति' पति राखु श्यामा,
हरखि हँसि दिअ सकल कामा,
जगत-गति अति तोहरि नामा,
शंभु बामा हे।[१]

१. श्रीकामेश्वर चौधरी (वही) से प्राप्त।

(२)

राम नाम जगसार और सब झूठे बेपार।
तप करु तूरी, ज्ञान तराजू, मन करु तौलनिहार।
षटधारी डोरी तेहि लागे, पाँच पचीस पेकार।
सत्त पसेरी, सेर करहु नर, कोठी सन्त समाज।
रकम नरायन राम खरीदहुँ, बोझहुँ, तनक जहाज।
बेचहुँ विषय विषम बिनु कौड़ी, धर्म करहु शोभकार।
मन्दिर धीर, विवेक बिछौना, नीति पसार बजार।
ऐसो सुघर सौदागर सन्तो, जौं आवत फिरि जात।
'छत्रनाथ' कबहूँ नहिं ताको, लागत जमक जगात।[१]

※

जगन्नाथ

आपका पूरा नाम 'जगरनाथ राम' था।

आप हवेला खड़गपुर (मुंगेर) के निवासी[२] और मुगल-सम्राट् औरंगजेब के समकालीन थे। आपके आश्रयदाता खड़गपुर-नरेश राजा तहेउरसिंह थे। आपने रामायण (सुन्दरकाण्ड) की कथा पर एक काव्य-रचना की थी।[३] इसी रचना में आपने खड़गपुर के आकर्षक वर्णन के साथ अपने आश्रयदाता का नामोल्लेख किया है।

तुलसीदासजी की रामायण के सुन्दरकाण्ड में रामचन्द्र की कथा का जो अंश वर्णित है, वही इसमें बहुत विस्तार पा गया है। इसकी भाषा तो अवधी है, किन्तु कहीं-कहीं खड़ी-बोली और पंजाबी का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है।

उदाहरण

(१)

देखेउ मारुत सुत भै मंता। बांधे रहहिं महा चौदंता॥
जनु गिरिवर चढ़े चहुँ ओरा। गहि गहि दंत सों मुंड मरोरा॥
श्याम घटा सम देखहिं ठाढ़े। झूमहिं झुकहिं सर्ग लै बाढ़े॥
महा भेआवन देखत कारे। सुंड मुंड सिर धुनहि निनारे॥
मदमाते गर्जहि गज राजा। कविवर देखि रहे सब साजा॥
मदमाते चौदंत सब बांधे रहहिं अपार।
पग जंजीर पैकर विखम गनति गनै को पार॥[४]

---

१. श्री कामेश्वर चौधरी (वही) से ही प्राप्त।

२. मुंगेर जिला-हिन्दी-साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव के सभापति श्रीकृष्णनन्दन सहाय के भाषण से। देखिए—'प्रदीप' (हिन्दी-दैनिक, पटना) २७ अगस्त, १९४९ ई०।

३. इस पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति उक्त श्रीकृष्णनन्दन सहाय (प्राचार्य, देवघर-कॉलेज) के पास है। इसके लिपिकार हैं चैन गोरिया नामक कोई व्यक्ति, जिन्होंने १८१९ वि० में इसे लिखा था।

४. श्रीकृष्णनन्दन सहाय (प्राचार्य, देवघर-कॉलेज, देवघर) से प्राप्त।

(२)

लड़त मरत महि ऊपर आये। तब कपीश भुज दैत उठाये॥
लै घुमाय परवत दै मारा। उठि दानौ पुनि करत विचारा॥
पुनि हनुमंत लंगूर घुमाये। बाँधि दैत कै बार घुमाये॥
पुनि उठाय पुहुमि दै मारा। नहिं फुटेउ सिर दैत अपारा॥
पुनि पछारि महि मध्य गिराएउ। उर पगु धरिकै मुंड उखारेउ॥
लीन्ह उखारि मुंड कपी, धर छाती पर पाउ।
धसी गएउ धरनी तहाँ, रुधिर नदी बहि आउ॥[१]

जयरामदास

आपका पूरा नाम गोस्वामी जयरामदास ब्रह्मचारी था। पीछे आप 'सिद्धबाबा' के नाम से भी प्रसिद्ध हुए।

आप शाहाबाद जिले के जोगियाँ-ग्राम निवासी थे।[२] आपके पिता का नाम वसन पाण्डेय था। आपके गुरु काशी के कोई दण्डीं संन्यासी थे। कहते हैं, साहित्य-साधना के पूर्व आप कैमूर-पर्वत की एक गुफा[३] में यागिक साधना करते थे। किंवदन्ती है कि वहीं पर आपको हनुमान्‌जी की सिद्धि प्राप्त हुई थी और भगवान् शंकर के दर्शन हुए थे। यह भी प्रसिद्ध है कि उसी गुफा से भीतर-ही-भीतर आप 'बदरीनारायण' की यात्रा किया करते थे। पीछे इस स्थान से आप बराँव-पहाड़ी पर चले गये, जहाँ आप 'सिद्धबाबा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। वहाँ आपके चरण-चिह्न आज भी अंकित हैं।[४] अपने जीवन के अंतिम दिनों में उक्त बराँव-पहाड़ी से आप बक्सर (शाहाबाद) चले आये, जहाँ आपका गोलोकवास हुआ।[५]

आपके एक पुत्र और दो कन्याएँ थीं—वैदेही[६] और मैदेही। इनमें वैदेही जिन्हें लोग 'योगिनी' भी कहा करते थे, आपकी रचनाओं को लिखती थीं। आपके द्वारा रचित और

---

१. श्री कृष्णनन्दन सहाय (वही) से प्राप्त।

२. आपके वंशज श्रीराधिकारमण शर्मा, 'बच्चनजी' (वकील, सहसराम, शाहाबाद) से प्राप्त सूचना के आधार पर। श्रीबच्चनजी का अनुमान है कि उनके पूर्वज अयोध्या के रहनेवाले थे। वहाँ से किसी काल में काशी आ गये और फिर वहाँ से बराँव (शाहाबाद)।

३. यह स्थान सहसराम (शाहाबाद) से १२ मील दक्षिण स्थित है। इन दिनों यह 'श्रीगुप्तेश्वरनाथ महादेव की गुफा' के नाम से विख्यात एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। इस गुफा के भीतर थोड़ी दूर जाने पर श्रीगुप्तेश्वरनाथ का शिवलिंग है। इसी लिंग के पास 'पाताल-गंगा' बहती है।

४. इस स्थान पर आजकल किसी भक्त का बनवाया हुआ एक मंदिर है। यह मंदिर 'सिद्धबाबा का मंदिर' के नाम से विख्यात है।

५. बक्सर में आप जिस स्थान पर रहते थे, वह स्थान इन दिनों 'रामचउतरा' (चरित्रवन) के नाम से प्रसिद्ध है।

६. आपकी कई पुस्तकों पर लिखा है—'वैदेही दस्तखत कियो, सन्मुख पवनकुमार। जयराम की नन्दिनी भवजल उतरो पार।' विशेष—इस समय आपकी सातवीं-पीढ़ी में श्रीराधिकारमण शर्मा हैं, जो सहसराम (शाहाबाद) के एक अच्छे हिन्दी-लेखक, प्रसिद्ध वक्ता और वकील हैं।

अनूदित, ग्रंथों की संख्या २६ है।[१] इनमें प्रमुख के नाम इस प्रकार हैं—'रामायण' (सात काण्डों में निर्गुणरामायण), 'रामदीपक', 'अमरदीपक', 'शिवदीपक', 'जगन्नाथ-दीपक', 'भगवद्गीता', 'भक्ति-प्रबन्ध', 'जगन्नाथ-महातम', 'कार्त्तिक-महातम', 'गोपाल-मुक्तावली', 'कर्मविपाक', 'आरती-संग्रह', 'एकादशी-महातम' तथा 'छन्द-विचार'।[२] इन रचनाओं की भाषा अवधी और भोजपुरी है।

उदाहरण

(१)

अंतवंत सब देह हैं, जीव रहतु है नित्त।
अविनाशी यह वस्तु है, युद्ध करै कि निमित्त॥
जो याको हन्ता गनै, हन्यौ गनत जो कोइ।
यह न मरै मारै नहीं, अज्ञानी वे दोइ॥
यह न मरै उपजै नहीं, भयो न आगे होइ।
सदा पुराण अजन्म नित, मारे मरै न सोइ॥
जो जानत यह आत्मा, अज अविनाशी नित्त।
सो नर मारै कौन को, ताहि हने को मित्त॥
जैसे पट जीरण तजै, पहरे नर जु प्रवीण।
देह पुरानी जीव तजि, नई जु गहतु प्रवीण॥[३]

(२)

करता अजपालक भगवाना। सिव घालक कहु वेद पुराना॥
अंडज पिंडज उषमज नाना। कीऐ कलपतरु वेद बषाना॥
अंकुरज विपुल कीन्ह जगमाहिं। महादेव सम दोसर नाहीं॥
पुहुमी गिरवर सकल पसारा। महादेव जस वेद पुकारा॥[४]

※

---

१. इन सात काण्डों में से केवल तीन ही (बाल, सुन्दर और उत्तर) काण्ड परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में हैं।

२. इनमें कुछ पुस्तकें बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) और बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पटना) के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

३. परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित 'श्रीमद्भगवद्गीता' की हस्तलिखित प्राचीन प्रति से।

४. उक्त स्थान में ही संगृहीत 'शिव-दीपक' की हस्तलिखित प्राचीन प्रति से।

जयानन्द

कविता में आपका नाम 'करणजयानन्द' मिलता है।

आपका जन्म दरभंगा जिले के भागीरथपुर-ग्राम में हुआ था।[१] आप महाराज माधवसिंह (सन् १७७६-१८०८ ई०) के समकालीन थे।[२] आपके द्वारा रचित एक नाटक 'रुक्मांगद' की खंडित प्रति मिलती है।

उदाहरण

(१)

चौदिस हरि पथ हेरि हेरि, नयन बहए जलधार।
भवन न भाव दिवस निसि, करव कओन परकार॥
हुनि हम विलहु न आँतर, दुहुक प्रान छल एक।
परदेस गए निरदय भेल, कि कहव तनिक बिबेक॥
कुदिवस रहत कतेक दिन, के मोहि कहत बुझाए।
बिहि बिपरीत भेल अब, के मोहि होएत सहाय॥
करनजयानन्द गाओल, चित जनु करिअ उदास।
धैरज सम तह बर थिक, आओत भमर अबास॥[३]

(२)

की जनु कएल कलानिधि-हर भालानल वास।
मुख सुषमा देखि खिन तनु अनुखन भमए अकास॥
बिहि थिर चान कएल तुअ मुख संसारक सार।
तुलना तुलित न पावए तैँ थिर रहए न पार॥
आपत तापित कए तनु तप जे कर बहु भाँति।
आधेँ आधेँ भेल दालिम से देखि दशनक पाँति॥
नासा निरखि विषम वन भमइछ चञ्चल कीर।
गति देखि सहज लजाएल गज रज पुरए शरीर॥
सरसिज जँ जल सेबए गिरए अङ्गार चकोर।
तइओ गरब नहि मोचए सुललित लोचन तोर॥
तुअ गुण-गरिमा कि कहब 'करणजयानन्द' गाव।
कमलादेह-पति शुभ मति नृप सुन्दर बुझ भाव॥[४]

❀

---

१. A History of Maithili Literature (वही), P. 423.

२. कविशेखर पं० बदरीनाथ झा का कहना है कि आप मिथिलाधीश सुन्दरठाकुर (सन् १६४४-७० ई०) के आश्रित कवि थे। देखिए—मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ७४।

३. Journal of the Asiatic Society of Bengal (Vol. 53, Part I, 1884, Spl. No.), P. 85.

४. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० २९, पृ० १६।

जॉन क्रिश्चियन[१]

आपका नाम 'जॉनअधम' और 'अधमजन' भी मिलता है।

आपका जन्म-काल अनिश्चित है। आप बनगाँव (सहरसा) के निवासी एक मिशनरी पादरी थे।[२] वहाँ आपने नील की कोठा भी बनवाई थी। उक्त स्थान में रहकर आपने गोस्वामी लक्ष्मीनाथ परमहंस से संस्कृत, हिंदी और योग की शिक्षा प्राप्त की। हिंदी में कविता करना भी आपने उन्हीं से सीखा।

आप यहूदी थे, पीछे ईसाई हो गये। इस सम्बन्ध में एक बड़ी रोचक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि कुछ अँगरेजों के साथ आप समुद्र-मार्ग से जहाज पर भारत आ रहे थे। रास्ते में बहुत जोरों की आँधी आई। अकस्मात् आँधी आते देखकर अँगरेजों ने जहाज पर किसी यहूदी के होने का अनुमान किया और वहाँ उसकी खोज करने लगे।[३] खोज में आप ही पकड़े गये। जब आपको समुद्र में फेंक देने की तैयारी होने लगी, तब एक दयालु अँगरेज से न रहा गया। उसने सलाह दी कि जान से मार डालने से अच्छा है कि आपका ईसाई बना लिया जाय। अन्त में वही हुआ। आप ईसाई हो गये और इस प्रकार उपद्रव शान्त हुआ।

आपका स्वर्गवास सं० १९४० (सन् १८८३ ई०) के आसपास हुआ।[४]

आप कविता भी करते थे। आपकी कविता की भाषा सरल तथा व्रजभाषा और खड़ीबोली से मिली-जुली होती था। आप बिहार की सभी बोलियों को अच्छी तरह जानते थे।[५] हिंदी में आपकी पहली और प्रसिद्ध पुस्तक 'मुक्ति-मुक्तावली' है, जिसमें ईसा मसीह का जावनी पद्य में लिखा गई है।[६] आपकी दूसरी हिन्दी-पुस्तक 'सत्य-शतक' है, जो ईश्वर-भक्ति, प्रेम और वैराग्य पर रचित आपके एक सौ सोलह भजनों का संग्रह है।[७]

उदाहरण

(१)

मन मरन समय जब आवेगा।
धन सम्पत्ति अरु महल सराएँ, छूटि सबै तब जावेगा॥
ज्ञान मान विद्या गुन माया, केते चित उरझावेगा॥

---

१. हास्यरसावतार पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने आपका जीवन-परिचय दैनिक 'आज' (काशी) तथा 'वेङ्कटेश्वर-समाचार' (बम्बई) में छपवाया था।

२. श्रीछेदी झा 'द्विजवर' (बनगाँव, सहरसा) के द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

३. अँगरेजों का विश्वास है कि जहाज या नाव पर यदि कोई यहूदी हो, तो अवश्य उपद्रव होगा।

४. देखिये—डॉ० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन-कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास (किशोरीलाल गुप्त, प्रथम सं०, नवम्बर, १९५७ ई०), पृ० २९४ तथा भाषासार (बा० साहबप्रसाद सिंह, संशोधित और परिवर्द्धित सं०, १९३३ ई०, लेखकों का संक्षिप्त परिचय), पृ० ङ।

५. 'प्रोवर्ब्स ऑफ् बिहार' नामक एक पुस्तक अँगरेजी में मिलती है, जिसमें बिहार की सभी बोलियों की कहावतें दी गई हैं और उनका तात्पर्य समझाया गया है तथा उससे मिलती-जुलती अँगरेजी की कहावतें भी दी गई हैं। यह पुस्तक इंगलैंड के किसी प्रेस में छपी थी। कुछ विद्वान् इसे आपकी ही रचना मानते हैं। किन्तु वस्तुतः यह जॉन नामक किसी अन्य व्यक्ति की रचना है।

६. इस पुस्तक के दो-दो संस्करण हुए थे। आजकल कोई भी संस्करण उपलब्ध नहीं होता।

७. इस पुस्तक का भी प्रकाशन कलकत्ता से हुआ था।

मृगतृष्णा जल तिरषित आगे; तैसे सब भरमावेगा ॥
मातु पिता सुत नारि सहोदर, झूठे माथ ठहावेगा ॥
पिंजर घेरे चौदिस विलपे, सुगवा प्रिय उड़ जावेगा ॥
ऐसो काल समसान समाना, कर गहि कौन बचावेगा ॥
जॉन 'अधमजन' जौं बिश्वासी, ईसू पार लगावेगा ॥[१]

(२)

अब क्या सोचत मूढ़ नदाना।
हित सुत नारी ठामहि रहिहै, धन-संपत के कौन ठिकाना ॥
माया मोह के जाल पसार्‍यो, बेरि पयानक क्या पछताना ॥
वास आपनों इतहि बँधायो, नात लगायो विविध विधाना ॥
दूत बुलावन आये द्वारा, मोह विवश भै माथ ठठाना ॥
काह करों कछु सक नहिं मेरे, सुध-बुध यहि अवसर बिसराना ॥
जॉन अधम कर जोरे टेरत, नाथ दिखावहु प्रेम अपाना ॥[२]

❀

जीवन बाबा[३]

आपका जन्म शाहाबाद जिले में, नोखा-थाने के राजापुर-ग्राम में हुआ था।[४] आपके पिता का नाम परमानन्द पाठक था। बचपन से ही पूजा-पाठ की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति थी। आप देवी के उपासक थे। आगे चलकर एक प्रसिद्ध महात्मा हुए। टेकारी-राज-दरबार में आपकी बड़ी कद्र थी।[५]

हिन्दी में रचित आपकी कई हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं। इनमें एक अधूरी है। इसी में आपकी कलम भी रखी है। आपकी रचना का उदाहरण नहीं मिला।

जीवनराम[६]

कविता में आपका नाम 'रघुनाथ' मिलता है।

आपका निवास-स्थान मुजफ्फरपुर जिले में कटरा थाने का 'शिवदाहा' नामक ग्राम था।[७] आपके पुत्र राजवल्लभसिंह 'ईस्ट-इंडिया-कम्पनी' के समय पटना-कचहरी में

---

१. 'श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार', (दैनिक, मार्गशीर्ष १९९० वि०, शुक्रवार)।

२. वही।

३. आपका एक छोटा-सा परिचय श्रीभुवनेश्वरप्रसाद 'भानु' ने ११ जून, १९५५ ई० को 'साप्ताहिक-शाहाबाद' में लिखा था।

४. 'साप्ताहिक-शाहाबाद' (११ जून, १९५५ ई०), पृ० ७।

५. आपके जन्म-स्थान में आपका कुंड, खप्पड़ और माला आदि सामग्रियाँ आज भी सुरक्षित हैं। वहाँ इनकी पूजा नियमित रूप से होती है।

६. आपका परिचय श्रीदेवनारायणलाल कर्ण ने त्रैमासिक 'साहित्य' (पटना) के जुलाई, १९५४ ई० के अंक में लिखा था।

७. 'साहित्य' (वही, जुलाई, १९५४ ई०) पृ० ७४।

काम करते थे। उस समय दरभंगा के महाराज माधवसिंह (सन् १७७६-१८०८ ई०) का राज खतरे में पड़ गया था। आपने कम्पनी के कर्मचारियों के सहयोग से उस खतरे से उस राज्य की रक्षा की, जिसके पुरस्कार-स्वरूप आपको 'लंढा' का विशाल जंगल मिला।[१] आप एक बहुत बड़े ईश्वर-भक्त थे, इसीलिए आपको लोग 'महात्मा' भी कहा करते थे।

आपकी दो पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनमें एक 'अनुभव-कल्पतरु' हिन्दी में है।[२]

उदाहरण

(१)

भानुकुल-कुमुद चन्द चंद-कुल-कमल-भानु, दोऊको उदै जासो नारायन ध्याइए।
कमल मध्य कुमुद आदि नाम रूप सुख सरूप, लीला गुन कर्म काहे पृथक करि गाइए॥
सबरी के आँगन इन कुबरी के भौन गौन, दीनबन्धु सील सिन्धु चरन मनाइए।
परमधाम राम स्यामरूप कृष्णनाम राम, एही रघुनाथ द्वैतभावनो मिटाइए॥[३]

(२)

श्यामा पलक हेरिअ हर वामा।
तव वारिद सम वदन भयङ्कर, भालहिं चन्द्र ललामा॥
लहलह जीह विकट रद घनरूप, मुख छवि अति अभिरामा॥
बाल समय हम खेल बिताओल, तरुण समय सुखयामा॥
वृद्ध समय पुनि व्याधि ग्रसित भए, जपलहुँ नहि तुम नामा॥
माया केर किङ्कर भए रहलहुँ, निस दिन आठो जामा॥
भव केरि भारैं प्रेम मगन नहि, गाओल तुअ गुनगामा॥
अब अपराध छमा करु माता, पुरिअ सकल मनकामा॥
अन्त समय 'रघुनाथ' दरस, दिअओ रुचिर निजधामा॥[४]

❀

जीवाराम चौबे

कविता में आपका नाम 'युगलप्रिया' मिलता है।

आप सारन जिले के इसुआपुर-ग्राम के निवासी थे।[५] आपके पिता का नाम शंकर चौबे था, जो पीछे शंकरदास[६] कहलाये।

---

१. इस स्थान पर इन दिनों हरिहरपुर-ग्राम बस गया है।
२. इस पुस्तक की रचना १८५० वि० (१७९३ ई०) में हुई थी। इसके पाँच विश्रामों में अनेक छंदों एवं राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा बहुत ही साफ और सुन्दर है। दूसरी पुस्तक उर्दू में है। उसका नाम है 'बहर तवील'।
३. 'साहित्य' (वही), पृ० ७७।
४. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त।
५. बिहार-दर्पण (वही), पृ० १४३ तथा १५५।
६. इनका परिचय इसी ग्रंथ में यथास्थान मुद्रित है।

आप एक अच्छे पंडित, कवि, और भजनानंदी थे। टेकारी के महाराज रामकृष्णदेव बहादुर ने आप से ही भक्ति-तत्त्व पाया था। वे आपका बड़ा आदर करते थे। आपका लिखा 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल' है।[१] यह नाभादास-कृत 'भक्तमाल' की टीका है।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

(दीवान) झब्बूलाल[२]

आपका जन्म सारन जिले के परगना 'कसमर', मौजा 'नयागाँव'[३] में फसली सन् ११६२ (१७५७ ई०) में हुआ था।[४]

आपके पिता का नाम लाला साहो रामदास था। ये अपनी दीवानगिरी-वृत्ति से ही काल-क्षेप करते थे। इनके पश्चात् आप भी दीवान ही हुए। कहते हैं, आपकी चतुराई से ही बेतिया का राज्य वीरेश्वरसिंह बहादुर के हाथ लगा था; इसी कारण आपको राजा बहादुर ने अपने यहाँ की दीवानगिरी का काम दिया और कहा कि 'यह राज्य मेरी संतानों के लिए और दीवानगिरी का काम आपके वंशधरों के लिए सुरक्षित रहेगा'। तभी से आपने दीवानगिरी का कार्यारम्भ किया।

आपकी शिक्षा अरबी-फारसी से आरम्भ हुई। अरबी-फारसी की शिक्षा प्राप्त कर आपने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया, और हिन्दी में भी काव्य-रचना करने लगे। आज तक आपकी बनाई होली लोग गाते हैं। पुस्तकाकार आपकी कोई भी रचना आज नहीं उपलब्ध होती है। आप फसली सन् १२४४ (१८१७ ई०) में परलोक सिधारे।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

टेकमनराम

आप चम्पारन जिले में धनौती-नदी के तट पर स्थित 'झखरा' ग्राम के निवासी लोहार थे।[५] निर्धनता के कारण आप राज-मिस्त्री का काम करते थे। कहते हैं, माधोपुर (चम्पारन) के मन्दिर का किवाड़ आपका ही बनाया हुआ है। माधोपुर में किवाड़ बनाते समय ही आपका बाबा भीखमराम से सम्पर्क हुआ और आप उनके शिष्य बन गये। कहा जाता है कि बाबा भीखमराम के आपके अतिरिक्त दो और शिष्य थे। एकदिन उन्होंने अपने तीनों शिष्यों को बिठाकर उनके आगे लोटा, गिलास तथा 'करवा' रख दिया और अपनी इच्छा के अनुसार एक-एक उठाने को कहा। आपने मिट्टी का 'करवा' उठाया। उसी

---

१. यह पुस्तक खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित हुई थी।

२. आपके विस्तृत परिचय के लिए देखिए, बाबू रामदीनसिंह-कृत 'बिहार-दर्पण' (वही), पृ० ६६-१२०।

३. नयागाँव को अक्सर दूरवाले लोग 'नयागाँव-डुमरी' कहते हैं। यह स्थान हरिहरक्षेत्र (सोनपुर) से तीन कोस पश्चिम मही-नदी के किनार पर बसा है।

४. बिहार-दर्पण (वही), पृ० ६६।

५. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (वही), पृ० १४४।

दिन से आप 'सरभंग-सम्प्रदाय' में दीक्षित हो गये। आपके प्रमुख शिष्य थे—टहलराम, मिसरी माई, दर्शनराम तथा सुदिष्टराम।

आप एक सिद्ध-पुरुष थे, जिसके कारण आपको ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ था। आपके सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रचलित हैं।[1] आप झखरा 'फाँड़ी' (परम्परा) के प्रवर्त्तक कहे जाते हैं। आपकी परम्परा के मठ चम्पारन, सारन और मुजफ्फरपुर जिलों में फैले हुए हैं। आपने माघ वसन्त-पंचमी को अपने निवास-स्थान 'झखरा', में ही समाधि ली थी।[2]

ग्रंथाकार आपकी कोई रचना नहीं मिलती। लगभग एक सहस्र भजन और भक्ति-गीत ही यत्र-तत्र मिलते हैं। इन स्फुट रचनाओं की भाषा भोजपुरी है।

उदाहरण

(१)

बिना भजन भगवान राम बिनु के तरिहे भवसागर हो।
पुरइन पात रहे जल भीतर करत पसारा हो।
बुन्द परे जापर ठहरत नाहीं ढरकि जात जइसे पारा हो।
तिरिया एक रहे पतिबरता पतिवचन नहीं टारा हो।
आपु तरे पति को तारे तारे कुल परिवारा हो।
सुरमा एक रहे रन भीतर पीछा पगुना धारा हो।
जाके सुरतिया हव लड़ने में, प्रेम मगन ललकारा हो।
लोभ मोह के नदी बहत बा लछ चौरासी धारा हो।
सीरी टेकमन महराज भीखम सामी कोई उतरे संत सुजाना हो।[3]

(२)

सुतल रहलीं नींद भए, गुरु दिहिले जगाय।
गुरु का चरन रज अंजन हो, नैना लिहल लगाय।
वोही दिन से नींदो न आवेला हो, नाहीं मन अलसाय।
प्रेम के तेल चुआवहु हो, बाती देहु न जलाय।
राम चिनिगिया बारहु हो, दिन राति जलाय।
सुमति गहनवा पेन्हहु हो, कुमति धर न उतार।
सत के माँग सँवारहु हो, दुरमति बिसराय।
उचित अटारी चढ़ि बैठे हो, वाहाँ चोरवो न जाय।
रामभिखम ऐसे सतगुरु हो, देखि काल डराय।[4]

---

१. इस प्रकार की कथाओं के लिए देखिए, वही, पृ० ११८, तथा १४८।

२. उक्त तिथि को प्रत्येक वर्ष 'झखरा' में आपकी समाधि पर आज भी पूजा होती है। इसी अवसर पर यहाँ एक बहुत बड़ा मेला लगता है। यह मेला सरभंगियों के मेलों में सबसे बड़ा माना जाता है। इसमें टेकमनराम, भिनकराम की शाखा के सभी अनुयायी भाग लेते हैं। ये अपने साथ रुपये, गाँजा, भाँग लाते और मंदिर में चढ़ाकर महन्थ को दे देते हैं।

३. भोजपुरी के कवि और काव्य (वही), पृ० १२,१।

४. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (वही), पृ० ५८।

तपसी तिवारी

आप चम्पारन जिले के ममरखा-ग्राम के निवासी थे।[१] आपके पिता का नाम भोरीराम तिवारी था, जो संस्कृत के एक प्रकांड विद्वान् थे। बेतिया के महाराज युगलकिशोरसिंह (राज्यारोहण-काल १७६३ ई०) आपकी रचनाओं पर बहुत मुग्ध थे। उन्होंने आपको अपने दरबार में रखने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु आप इसके लिए तैयार नहीं हुए।

हिन्दी में आपकी कुछ कविताएँ मिलती हैं।

उदाहरण

हिमगिरि नन्दिनि कानन-क्रंदिनि जय नारायणि वाणी वन्दिनि,
लोलित लुंबिनि चम्पा चुम्बिनि तरल तरंगिनि विपिन विहंगिनि।
नरदुख भंगिनि राजित रंगिनि पुरुषोत्तम नारायण संगिनि,
प्रेम पोषिणी तरणि तोषिणी यशः योषिणी, करुणा-कोषिणी।
भक्ति भामिनी वृथा दायिनी सलिल शामिनी गति प्रदायिनी,
दु:ख विनाशिनि सौख्य प्रकाशिनि उर-उर वासिनि वसुध विलासिनी।
रजत मुकुट द्रवि स्रवत हेतु शिला देत भव को नित रस नव,
युगलकिशोर करत तव पूजा जेहिजन औरो आस न दूजा।
तपसी करत तपस्या भारी जे नित चरणन के अधिकारी,
मांगो एक मातु वर देहू मम उर बहहु सदा बनि नेहू।[२]

*

तुलाराममिश्र

आप चम्पारन जिले के सतबरिया-ग्राम (चनपटिया थाना) के निवासी थे।[३] आप पहले गोरखपुर जिले के मझौली-दरबार में रहते थे। पीछे बेतिया (चम्पारन) के महाराज युगलकिशोरसिंह के आश्रित हुए। आपका अधिक समय बकुलहर (चम्पारन)[४] में भी व्यतीत हुआ था। आपके पुत्र लक्ष्मीप्रसादमिश्र और पौत्र मोहनदत्तमिश्र भी कवि हुए।[५] आपने सरस-ललित भाषा में 'हरिहर-कथा' की रचना की थी। कहते हैं कि जीवन के अन्तिम दिनों में कुष्ठ रोग से ग्रस्त होने पर आपने एक सूर्यस्तुति-परक ग्रंथ की भी रचना की थी। किन्तु यह रचना उपलब्ध नहीं हो सकी।

---

१. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० २८।

२. वही, पृ० २८-२९।

३. वही, पृ० २०।

४. आज भी इस स्थान में आपकी स्मृति में गंडक के एक घाट का नाम 'तुलाराम-घाट' है।

५. इस वंश के वर्त्तमान वंशधर श्रीउपेन्द्रनाथमिश्र एवं श्रीकमलेशमिश्र हैं। श्रीउपेन्द्रनाथमिश्र से जो दो सौ हस्तलिखित ग्रंथ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) को प्राप्त हुए हैं, उनमें ही 'हरिहरकथा' नामक ग्रंथ संगृहीत है।

(१)

हरि अस जब हम धरि हिय ध्याना। सुनि हरखे हरि कृपा निधाना ॥
गरुड़ चढ़ल आयउ ततकाला। संख-गदाधर चक्र बिसाला ॥
पदुम हाथ परमारथ लायक। असुर-संहारन सुर-सुखदायक ॥
श्यामल सरस सरोरुह लोचन। सुमिरन जासु सकल अघ मोचन ॥
मोर पच्छ सिर परम सोहावन। भृकुटी कुटिल सकल मनभावन ॥
नयन अरुन दल कमल प्रकासा। नील पुत्तरिय भृंग पियासा ॥
चन्द्र भाल सुभ स्रवन समीपे। कुंडल झलक मनोहर नीके ॥[१]

(२)

आजु पहुसंग रमित कामिनि करत कौतुक वितल यामिनि।
अति अनादरि भेलि बाहरि चितने ठाहरि रे ॥१॥
नविन नागरि झोरि डारल घाम भीजल वसल गारल।
जनि पराभव कतेक साज छूटल रे ॥२॥
ननदि मंदिर धाय पैसलि चरण गहि हिय हारि बैसलि।
बैसि नारि डोलाव पंखा करत रस भाषा रे ॥३॥
तुलाराम भन समुझि कामिनी। छूटल डर पुनि दोसर जामिनि।
ससरि कय रस पसरि जायत मन जुरायत रे ॥४॥[२]

❋

दयानिधि[३]

आप पटना-निवासी ब्राह्मण थे।[४] हिन्दी में आपकी काव्य-रचनाएँ मिलती हैं, जिनमें कुछ लोक-कंठ में भी सुरक्षित हैं। मिश्रबन्धुओं ने आपकी कविता को 'बहुत रोचक और उत्तम' बतलाया है।

उदाहरण

कुन्द की कली-सी दन्त पांति कौमुदी-सी, दीसी बिच-बिच मीसी-रेख अमी-सी गरकि जात।
बीरी त्यों रची-सी बिरची-सी लखैं तिरछी-सी, रीसी अँखियाँ वै सफरी-सी फरकि जात ॥
रस की नदी सी 'दयानिधि' की नदी-सी, थाह चकित अरी-सी रति डरी-सी सरकि जात।
फन्द में फसी-सी भरि भुज में कसी-सी, जाकी सी-सी करिबे में सुधा सीसी-सी ढरकि जात[५] ॥

❋

१. परिषद् के हस्तलिखितग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित हस्तलिखित 'हरिहरकथा' से।
२. मिथिला-गीत-संग्रह (वही, चतुर्थ भाग), पद सं० १३, पृ० ८।
३. इस नाम के दो कवि बिहार के बाहर हो चुके हैं।
४. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० १२८५।
५. शिवसिंह-सरोज (शिवसिंह, चतुर्थ सं०, १९३४ वि०), पृ० १२६।

दिनेश द्विवेदी

आप हिन्दी-साहित्य के एक अनुभवी विद्वान् और टेकारी-राज्य (गया) के प्रसिद्ध महाराज मित्रजीतसिंह के प्रधान दरबारी कवि थे।[१]

आपका जन्म १८५० वि० (१७९३ ई०) के लगभग हुआ था और आप १९१५ वि० तक जीवित थे। आपने 'रस-रहस्य'[२] नामक एक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना १८८३ वि० में की थी। इसमें नायिका-भेद-वर्णन के अतिरिक्त टेकारी-राज्य, टेकारी-राजवंश, फल्गु-नदी, मगध-महिमा आदि विषयों का वर्णन है। मिश्रबन्धुओं ने आपके एक और ग्रंथ 'नखशिख' की चर्चा की है।

(१)

औचक ही भेटत लपेटत गोपालजो के डरपि सलोनी सलि धसी मनो आरा पै ॥
रोवत रिसौहें सतरौहें बैन सौहें सीस मनि उचरो है ज्यों चढ़ो है राहुतारा पै ॥
भनत दिनेश नव नागही विवस आँखें, बहे जलधारा मनो जलधार धारा पै ॥
गोद में न ठहरात हहरात दारा इमि, थहरात पारा मनों नील-मणि थारा पै ॥[३]

(२)

सोहै भाल बाल-इन्दु सुन्दर सिन्दूर सोभा, एक रद करवर चारि पाइयत है ॥
नंद जगदंब को उदरलंब चारु तन, मूषक प्रसिद्ध जाको यान गाइयत है ॥
जाहिर अनाथनि सनाथ के करनहारे ऐसे गननाथ तिन्हें माथ नाइयत है ॥
चारि छौ अठारह 'दिनेस' सबग्रंथ आदि, जाको नाम पीठ पठियार पाइयत है ॥[४]

देवाराम[५]

आपका जन्म शाहाबाद के 'कर्जा'[६] नामक ग्राम में, अनुमानतः १७१० ई० में, हुआ था। आपके पिता का नाम पं० तारा पाण्डेय[७] था, जा अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण सारन जिले के 'हँसुआ-नगराजपुर' से 'कर्जा' में आ बसे थे।

बाल्यावस्था से ही आप बड़े उदासीन प्रकृति के थे। आपकी प्रकृति से चिंतित होकर आपके माता-पिता ने आपका विवाह कर दिया, जिससे आपको चार पुत्रियाँ और दो पुत्र हुए।

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, द्वितीय-भाग, द्वितीय सं० १९८४ वि०), पृ० ८८२।

२. इसकी एक हस्तलिखित प्रति मन्नूलाल-पुस्तकालय (गया) में है। इसकी पृष्ठ सं० ९७ है। इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस (पटना) से हुआ था।

३. परिषद् में टेकारी-निवासी एक हिन्दी-प्रेमी द्वारा प्रेषित।

४. प्राचीन हस्तलिखित-पोथियों का विवरण (दूसरा खण्ड, प्रथम सं०, २०१२ वि०), पृ० ६३।

५. श्रीसर्वदेव तिवारी 'राकेश' परसियाँ (शाहाबाद) आपके विषय में विशेष रूप से अध्ययन कर रहे हैं।

६. यह ग्राम बिहियाँ (शाहाबाद) स्टेशन से छह मील उत्तर स्थित है।

७. इनकी ख्याति ज्योतिष के एक प्रकांड पंडित के रूप में थी।

पुत्रों के नाम थे—अजबदास[1] और रतन पाण्डेय। रतन पाण्डेय की सर्प-दंश से मृत्यु हो जाने के कारण आप विरक्त हो गये। फलतः भाइयों ने आपको अलग कर दिया।

आप सारन जिले के खोड़ी-पाकड़-निवासी संत नृपतिदास के शिष्य और पं० रामेश्वर-दास[2] के गुरुभाई थे। आप व्यक्तिगत रूप से संप्रदायवाद के विरोधी थे। अतः आपका कोई स्वतंत्र पंथ नहीं चला। फिर भी आपके शिष्यों की संख्या आज भी कम नहीं है। आपके प्रमुख शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—प्रह्लाद गोसाईं, सुबुद्धि ओझा, बहाल ओझा और गुरुचरण ओझा। आपने कई तीर्थ-स्थानों की यात्राएँ भी की थीं। एक बार जब आप चुनारगढ़ (उत्तर-प्रदेश) के पास गंगातट पर योग-साधना में लीन थे, तब किसी ने आपको एक 'दिव्य-पट' प्रदान किया था।[3]

आप एक बड़े प्रगतिशील विचार के भक्त-कवि थे। अनेक विरोधों के होते हुए भी आपने अपने गाँव में काली-पूजा के समय होने वाली जीव-हिंसा का विरोध किया था। उसी विरोध का परिणाम है कि आज तक आपके ग्राम में कालीमाता को कोई जीव नहीं चढ़ाया जाता। कहते हैं, एक बार आपकी ख्याति सुनकर जगदीशपुर के जमींदार महाराज भूपनारायणसिंह आपसे मिलने आये। उस समय आप समाधिस्थ थे। अतः महाराज वापस चले गये। समाधि टूटने पर अपने शिष्यगण, अपनी माता और स्त्री के दबाव डालने पर आप उनसे मिलने जगदीशपुर जा रहे थे, किन्तु रास्ते में बिहियाँ से दक्षिण 'दावा' के जंगल में अपने प्रिय शिष्य प्रह्लाद से यह कहकर आपने योग-समाधि द्वारा अपना प्राण-विसर्जन कर दिया कि 'भगवान के सिवा किसी मनुष्य से याचना करना अनुचित है'। इस घटना की सूचना जब महाराज को मिली, तब उन्होंने आपके परिवार के लिए कुछ भूमिदान कर दिया।[4]

कहा जाता है कि आपने ग्यारह सौ फुटकर भजन, आठ अष्टक, चौंतीसा, चालीसा आदि ग्रंथों की रचना की थी। किन्तु अब एक सौ पैंसठ फुटकर भजन, केवल एक अष्टक-रामाष्टक और चौंतीसा ही प्राप्त है। इन रचनाओं के अतिरिक्त आपके अनेक बारहमासा,

---

१. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

२. इनका भी परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है। इनके गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज माने जाते हैं। कुछ विद्वान् आपके गुरु का नाम नृपतिदास भी कहते हैं। वस्तुतः स्वामी पूर्णानन्दजी और नृपतिदास एक ही व्यक्ति थे।

३. इस घटना का बड़ा ही रोचक वर्णन आपने अपने एक पद में किया है। वह पद इस प्रकार है—

मैं जाना साँचों हरि दानी।
यह जग में कोउ दान करतु हैं, साँझे देत विहान बखानी॥
बैठ रह्यो मैं प्रातकाल में, हरिमूरत हृदया में आनी॥
मन बुधि चित्त लगे हरि पद में, सफल सुमंगल आनंद खानी॥
नयन उघारि निहारि दिव्य-पट देखत बने न जात बखानी॥
ना कोउ कहेउ, न देखेउ नयन ते, कौन दिया मैं मन अनुमानी॥
दीनदयाल दयानिधि हरि दियो मन में, यह निहिचै मैं जानी॥
देवाराम प्रतीति भयो उर गुरु पितु मातु है सारँग पानी॥

४. इसकी सनद आज भी आपके वंशजों के पास है।

होली, चैता, झूमर, सोहर, जेवनार आदि के गीत भी लोक-कंठ में मिलते हैं। आपकी उक्त रचनाएँ मुख्यतः योग-परक हैं।

उदाहरण

(१)

योग नहीं, हठ धर्म नहीं, अभिअंतर श्रीगुरु भेद लखायो।
चंद सूर भयो एक अंग, त्रिवेनी के संगमे जाय नहायो।
दान दियो सभ कर्म जहाँ लगि, सून सने हित नेह लगायो।
द्वादश बाजन के झंकारन, शब्द अनाहद जाय समायो।
चौंतीस ऊपर है प्रभु पावन, परम पदारथ साहेब पायो।
देवाराम निहाल भयो जब, एक अनूप सरूप लखायो।[१]

(२)

प्रभु तेरो अजब नगरिया, बरणत बरनी न जाई।
नव दस मास में सिरजल, निज कर रुचिर बनाई।
पानी के सुद्द पवन के धागा, पाँच-पचीस मिलाई॥
सोरह खाई दस दरवाजा, सोभित ससि अरु सूर।
या गढ़ माँह बहत्तर पँखुरी, बावन है कंगूर॥
सात-द्वीप नव खंड विराजै, चौदह भुवन समाई।
तीनों लोक बसै घट भीतर, तँह हरि रहत रमाई॥
देवाराम गुरु दया कियो है, साहेब दियो लखाई।
पद्म असंख लहालहि जहँवा बिनु जल कमल फुलाई॥[२]

❋

देवीदास

आपका निवास-स्थान रामगढ़ (हजारीबाग) था।[३] आपके पिता का नाम राघवदास और पितामह का नाम धरणीधरदास था। आपने रामगढ़ के राजा मणिनाथसिंह के आश्रय में रहकर १८४२ वि० में 'पांडव-चरितार्णव' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना ७८ तरंगों में की थी।[४] इसमें महाभारत की कथा के आधार पर पाण्डवों के चरित्र का चित्रण अनेक प्रकार के छंदों में किया गया है।

---

१. श्री 'राकेश' से प्राप्त।
२. वही।
३. प्राचीन हस्तलिखित-पोथियों का विवरण (वही, दूसरा खण्ड), पृष्ठ ४१।
४. इसकी हस्तलिखित-प्रतियाँ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) और मन्नूलाल पुस्तकालय (गया) में संचित हैं।

उदाहरण

(१)

उपवन की सोभा नहीं, कही जात कछु मोहि।
तकि निवसे तहि ठाम जनु, ऋतु सभ ई सुख जोहि ॥
फुली मल्लिका रासि जनु, वारिद में ससि सोह।
मुक्ता की हीराकनी, रुचिर गुथे मन मोह ॥[१]

(२)

फूल्यो कहूँ गुलाब बहु, अरुन स्वेत छवि-धाम।
रवि प्रभात झाँई सरिस, सोभा ललित ललाम ॥
फलित कदम्ब-कदम्ब रुचि, निरखत सरस सोहाय।
रचि सुवर्न कन्दुक मनों, वज्र कनी लटकाय ॥[२]

⊕

नंदनकवि

आप दरभंगा जिले के उजान-ग्रामवासी थे।[३] आपके ही वंश में पीछे हर्षनाथ झा एक प्रसिद्ध कवि हुए, जिन्होंने मिथिला-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के सभा-पंडित रहकर अनेक ग्रंथों की रचना की थी। मैथिली में रचित आपके कुछ पद मिलते हैं।

उदाहरण

देखु देखु अपरुब माई! दुहुक वदन देखि दुअओ लजाई ॥
दुहु मन अति सानन्दा। दुहुक वदन जनि पूनिम चन्दा ॥
कर-कङ्कण भल छाजे। दुहु मिलि अगिनि होम कर लाजे ॥
सुललित अम्बर रागे। दुहु मन उपजल नव अनुरागे।
'नन्दन' कह भल जोरी। ओ अति सामर, ई अति गोरी ॥[४]

⊕

नंदीपति

आपने अपने बारह उपनाम बतलाये हैं। इनमें केवल दो उपनामों 'बादरि' और 'कलानिधि' से ही आपकी कविताएँ अधिक मिलती हैं।

आप मिथिला के निवासी थे।[५] आपके पिता का नाम कृष्णपति था, जो स्वयं भी एक कवि थे। आप मिथिला के राजा माधवसिंह (सन् १७७६-१८०८ ई०) के समकालीन

---

१. परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित 'पाण्डव-चरितार्णव' से।

२. वही।

३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ७७।

४. वही, पद सं० ४३, पृ० २३-२४।

५. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय-भाग, द्वितीय सं० १९८५ वि०), पृ० ९८१।

माने जाते हैं। आपकी गणना मिथिला के लोकप्रिय कवियों में होती है। आपने 'श्रीकृष्णकलिमाला' नामक एक नाटक लिखा है। इसमें संस्कृत और प्राकृत के अंश बहुत थोड़े हैं। अधिकांश स्थल मैथिला-गीतों से ही भरे हैं।

उदाहरण

(१)

माधब एहन दिवस भेल मोरा।
अपन करम फल हम उपभोगब, ताहि दोस कोन तोरा॥
जाहि नगर चानन नहिँ चीन्हथि, अछइ आदर के रोपे।
बिनु गुन बुझले जनिक अनादर, उचित न तापर कोपे॥
सगुन पुरुख निरगुन ननिल जौँ, जीबन जड़ के देला।
जौँ करमी फुल सबहु सराहिए, तौँ कि कमल गुन गेला॥
थल गुन आन ठाम परगासल, तैँ की तनिक अभेला।
गिरि दरि ताहि तिमिर रहु ता पर, रबि महिमा दिन भेला॥
जनिक सरस मन ताहि कहिए गुन, पसु सिसु अबुध न बूझे।
नन्दीपति भन तैँ देखु दरपन, आन्हर कौँ की सूझे॥४॥[१]

(२)

चन्द्रवदनि नवि कामिनि सजनी यामिनि अति अन्हिआरि।
सखि सङ्ग चलवि केलि घर सजनी कर-पल्लव दिपबारि॥
पवन झिकोर जोर बह सजनी तैँलेल अञ्चल झाँपि
देखि उरज अति सुन्दर सजनी तैँ ओ रासि उठ काँपि॥
झपझप कए कत काँपए सजनी विलखि धुनए निज माथ।
कथिलए जनम देल मोर सजनी चतुरानन विनु हाथ॥
'नन्दीपति' कवि गाओल सजनी ई जग थीक कुमान।
परस उरज अति सुन्दर सजनी माधवसिंह रस जान॥[२]

*

नन्दूरामदास

आप ब्रह्मपुरा[३] (मुजफ्फरपुर) के निवासी थे।[४] आपके गुरु का नाम बलरामदास तथा शिष्य का नाम रघुनाथदास[५] था। आप अपने निवास-स्थान पर ही रहकर भजन करते हुए अपना जीवन-यापन करते थे। वहीं आपने 'शब्द-संहिता वाणीप्रमोद' की रचना प्रारम्भ की। दुर्भाग्यवश इसे बिना पूरा किये १८१४ वि० (१७५७ ई०) में आप परलोक सिधारे। आगे चलकर इसे आपके शिष्य रघुनाथदासजी ने पूरा किया।

१. Journal of the Asiatic Society of Bengal (vol. 53, Part I, 1884), P. 79.
२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ७५, पृ० ४४।
३. यह स्थान आजकल ब्रह्मपुरा चट्टी के नाम से विख्यात है।
४. शब्द-संहिता वाणीप्रमोद (श्रीविश्वम्भरदासजी, प्रथम सं०, १९२७ ई०) पृ० १।
५. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

उदाहरण

राज विराज भई पलमाहिं परी यमराज सों काज तबैंजु ।
भूलि गई सब साज समाज रही कछु लाज न तेज तबैंजु ।
न कियो सतसंग न प्रेम उमंग कथा परसंग सुने न कबैंजु ।
कहें नंदू निदान चले जब प्राण कहाँ हरि ध्यान समान अबैंजु ।[१]

❋

(महाराज) नवलकिशोरसिंह

आप बेतिया (चम्पारन) के महाराज[२] और महाराज आनन्दकिशोरसिंह[३] के अनुज थे ।[४] अपने अग्रज का तरह आप भी कवि और संगीतज्ञ तो थे ही, कवियों के एक बहुत बड़े आश्रयदाता भी थे । आप १८५५ ई० में परलोकवासी हुए ।

उदाहरण

सो सब विधि सुजान ज्ञान मान जो करत गान काली गुनवर,
सकल पुराण शास्त्र निगमागम कहत ताहि धन-धन भुव पर,
लहत सुगम चारो फल तत छिन अष्ट सिद्ध नौ निधि रहत भवन पर
नवलकिशोर ताको दास अरु ताको दास ताको अनुचर ।[५]

❋

निधि उपाध्याय

आपका वास्तविक नाम 'जिरवन झा' था । 'निधि' तो आपका उपनाम था । पीछे आप इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये ।

आप दरभंगा जिले के कोइलख-ग्रामनिवासी[६] और खंडवलाकुलोद्भव मिथिला-नरेश महाराज विष्णुसिंह के आश्रित थे। आप दरभंगा-जिले के उजान-ग्रामवासी विद्वान् कविशेखर पं० बदरीनाथ झा[७] के पूर्वज थे ।

मैथिली में रचित आपके कुछ पद मिलते हैं ।

---

१. शब्द-संहिता-वाणी प्रमोद (वही), पृ० १८५ ।

२. चम्पारन-गेजेटियर (द्वितीय सं०, १९३२ ई०), पृ० १३६ ।

३. इनका परिचय इसी ग्रंथ में यथास्थान मुद्रित है ।

४. आप दोनों भाइयों के दरबारी-कवियों में नारायण उपाध्याय, दीनदयाल, मायाराम चौबे, मुंशी प्यारेलाल, कालीचरण दूबे, मंगनीराम, रामदत्तमिश्र और रामप्रसाद प्रमुख थे ।

५. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० १९ ।

६. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही) पृ० ७९ ।

७. इस समय मिथिला में साहित्य-शास्त्र के अप्रतिम विद्वान् हैं।

उदाहरण

(१)

कनकलता सन तनुवर धनिश्राँ, चिकुर रचल जलधर विनु पनिश्राँ,
चाहए राहु गरासए विनु दोषेँ छाड़ए रेकी।
अमल कमल-दल सरस नयनमा, चातक शुक पिक मधुर बएनमा,
नहि कुचभार सम्हारए बेरि बेरि लचकए रेकी।
मदन वेदन तन कोमल धनिश्राँ, नाकहिँ वेसरि पहिरु झुलनिश्राँ,
लगइछ मदन महीपति फाँसिहु लटकल रेकी।
कविवर 'निधि' भन सुनहु सजनमा, आए मिलति मनजनु करि खिनमा,
सकल कला परिपूरलि मनहुक जूड़लि रेकी॥[१]

(२)

प्रेयसि! न करिश्र प्रेम मलान।
सब तहँ सार समय मधुयामिनि कामिनि! परिहरु मान।
मनसिज मरम सताब सबहु खन छन छन हरए गेआन॥
नयन चाष तुल, नासा तिल-फुल, नीरज वदन विराज।
कटि केहरि सन अनुखन हर मन नहि दुर करह वेआज॥
सामर चिकुर कपोल सोहाओन अधर चिबुक अभिराम।
जनि मनमथ निअकर कुच विरचल कनक कमल अनुपाम॥
कोकिल विकल वचन तुअ सुनि सुनि गति लखि विकल मतङ्ग।
विकसित वदन रदन अनुमापिअ जनि शशि दामिनि सङ्ग।
विष्णुसिंह नृप रस बुझु मैथिल-नवशिरमनि वश भेल।
'निधि' निरधन जनि मिलल महग मनि हँसि परिरमाण लेल॥[२]

❀

पण्डितनाथ पाठक[३]

आपका जन्म गया जिले में, जहानाबाद से तीन कोस दक्षिण मुहम्मदपुर ग्राम में हुआ था।[४] आप टेकारी के राजा मित्रजीतसिंह के दरबारी पंडित थे। वहाँ आप अध्यापन-कार्य भी करते थे। आपके पास लगभग ३०० विद्यार्थी पढ़ते थे। आपने अपने घर पर भी एक पाठशाला स्थापित की थी, जिसमें विद्यार्थियों के भोजनादि का प्रबंध आपने चन्दे से किया था।

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ५५, पृ० ३१-३२।

२. वही, पद सं० ५७, पृ० ३२-३३।

३. आपका जीवन-परिचय बाबू रामदीनसिंह ने अपने 'बिहार-दर्पण' में लिखा था। देखिए, पृ० १६७-१७२।

४. वही, पृ० १६७।

आपका पुत्र लक्ष्मीनारायण पाठक पढ़ने-लिखने में जी नहीं लगाता था। वह 'बिरहा' 'खेमटा', 'आल्हा' आदि गाता-फिरता था। अतएव उसे पढ़ाने के लिए, आपने सम्पूर्ण सारस्वत-व्याकरण का बिरहा आदि छंदों में अनुवाद करके उसे गाने के लिए दे दिया। इस युक्ति से उसने विद्याध्ययन की ओर ध्यान दिया और कुछ ही दिनों में वह पण्डित होकर टेकारी-राज-दरबार में रहने लगा। आपकी इस चतुरता की बात सुनकर राजा मित्रजीत-सिंह ने आपको एक हजार रुपये का पारितोषिक दिया और अपने दरबारी पंडितों से 'पंडित-प्रवर' की उपाधि दिलाई। आप १८४० वि० (१७८३ ई०) में परलोक सिधारे।

आपकी रचना का उदाहरण नहीं मिला।

❋

प्रतापसिंह

कुछ विद्वानों ने आपका उपनाम 'मोदनारायण' बतलाया है।[1]

आपने मिथिला पर सन् १७६१ से ७६ ई० तक शासन किया था। आपका राज-दरबार कवियों का एक बहुत बड़ा केन्द्र कहा जाता है।[2]

आप व्रजभाषा और मैथिली के कवि थे। १८३२ वि० (१७७५ ई०) में व्रजभाषा में रचित आपका एक काव्य-ग्रंथ 'राधागोविन्द-संगीत-सार' मिलता है।

उदाहरण

जमुना तीर कदम तर हे, एक अचरज देखी।
तड़ित जलद जनु अवतरु हे, एक रूप विसेखी॥
राधा रूप मगनि भेलि हे, कर धै हरि आनी।
कतेक जतन कटु भाखिम हे, नहिं बोलथि सयानी॥
अनुपम लोचन खञ्जन हे, बाँकहु हरि हेरी।
बदन बसन अभिनत कै हे, मुसुकलि एक बेरी॥
काम कला गुन आगरि हे, बैसलि मुख फेरी।
रङ्क समान फिरथि हरि हे, जनि रतनक ढेरी॥
थिर नहिं रहत मुगुध मन हे, जौबन जग साले।
आखीँ गन रस पसरल हे, पुलकित बनमाले॥
नृपति प्रताप मन अवतरु हे, नबतरु पचमाने।
मोदनराएन मन दए हे, से आमे रस जाने॥[3]

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, द्वितीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ८११।
२. आपके दरबारी कवियों में हरिनाथ झा तथा केशव झा प्रमुख थे।
३. A History of Maithili literature (वही), P. 414,

प्रियादास

आपका निवास-स्थान पटना था।[१] जीवन के अन्तिम दिनों में आप वृन्दावन चले गये थे। आपके पिता का नाम श्रीनाथ था, जो राधावल्लभी सम्प्रदाय में दीक्षित थे। हिन्दी में आपने छह पुस्तकों की रचना की थी—(१) प्रियादासजी की वार्त्ता (२) स्फुटपद-टीका (३) सेवा-दर्पण (४) तिथि-निर्णय (५) भाषा-वर्षोत्सव और (६) चाहबेल।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❀

बालखंडी

आपका वास्तविक नाम 'रामप्रेम साह' था। कहते हैं, आपके बाल-विवाह कर लेने पर आपके गुरु ने आपका यह नाम रख दिया।

आपका जन्म १८४३ वि० में महाराजगंज, पिपरा (गोविन्दगंज) के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था।[२] आपने रामचरित-मानस के पाठ से अपना विद्याध्ययन आरम्भ किया था। पीछे आपने संस्कृत का भी अध्ययन किया। आपके दीक्षा-गुरु थे हरिहरपुर के हरलालबाबा। चामत्कारिक शक्ति में आप अपने गुरु से भी बढ़े-चढ़े थे। आपका निर्वाण १९४२ वि० में हुआ।[३]

भोजपुरी में आपके रचित कुछ फुटकर पद मिलते हैं।

उदाहरण

धीरे धीरे धीरे चलु सैंया के नगरिया।
अजपा जाप उठत अभि-अन्तर लागि गइली हो मोरि उलटी नजरिया।
पियत अमिय रस मौन भइल मन चढ़ि गइली हो मैं तो गगन अटरिया।
बाजे अनहद धुनि नाचै सखि पांचो लागि गइले हो जहाँ प्रेम बजरिया।
स्वामी हरलाल महिमा बालखंडी गावे विहनी लखाय सतगुरु के डगरिया।
धीरे धीरे धीरे चलु सैंया के नगरिया।[४]

बुद्धिलाल

आप मिथिला-निवासी[५] और मिथिला-नरेश महाराज राघवसिंह (सन् १७०४-१७४० ई०) के दरबारी कवि थे। आपने मैथिली में कुछ पदों की रचना की थी।

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० ९८४।

२. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० ४३।

३. आपके पश्चात् आपके २३ शिष्य हुए।

४. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० ४४।

५. A History of Maithili literature (वही), P. 408.

उदाहरण

कतय रहल मोर माधव ना। तनि विनु कत दुख साधव ना ॥
हरि हरि करु व्रजनागरि ना। चिकुर फुजल लट झाइल ना ॥
शिरसो खसलि कालि नागिनि ना। चिहुँकि उठलि नव कामिनि ना ॥
फुजल कमल उर जागल ना। ताहि पर यौवन भारी ना ॥
'बुद्धिलाल' कवि गाओल ना। 'राघवसिंह' रस बूझल ना ॥[1]

❀

बेनीराम

आपका जन्म-स्थान हजारीबाग जिले का रामगढ़[2] नामक स्थान था। पीछे आप उसी जिले के 'इचाक' नामक स्थान में आकर बस गये। आप रामगढ़ के राजा शंभुनाथसिंह के दरबारी कवि थे। आपने 'प्रेम-प्रकाश', 'सीता-सौरभ-मंजरी'[3], 'कालिका-मंजरी' आदि अठाईस काव्य-ग्रंथों की रचना हिन्दी में की थी। आपकी छोटी एवं स्फुट रचनाओं की संख्या तो और अधिक कही जाती है।

उदाहरण

सुनत जानकी बचन उठै तब मारुत नन्दन।
वैदेही चरनारविन्द बन्देउ जगवन्दन ।।
सुरगिरि सरिस विशाल बाल रविछवि तन छाजै।
सिंह ध्वनि वरवारि धरि रन अंगन गाजै ।।
पवन वेग नभ में चढ़े योजन लच्छ प्रमाण गय।
रवि रथ ढिग रथ भरत के, चक्रपात भरमत चितय ।।
कूदि चढ़े रथ माँह भार विश्वंभर धरिकै।
मारुत चक्रावर्त्त मध्य रोक्यो बल करिकै ।।
जंत्रित कीन्हों जोर रत्थ दाब्यो हनुमाना।
उल्कापात समान भूमि ल्यायो बलवाना ।।
जय जनक सुता श्रीराम जय, रह्यो प्रभंजन-सुत मुदित।
साधु-साधु हनुमान कहि, भरत गहै अंकम सुखित ।।[4]

❀

१. मिथिलागीत-संग्रह (वही, प्रथम भाग), पद सं० ३२, पृ० २४-२५।

२. 'जन्मभूमि है रामगढ़ अब इचाक में धाम'—परिषद् के हस्तलिखितग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित 'सीता-सौरभ-मंजरी' से।

३. इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित-प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखितग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में है। उसमें उसका रचना-काल १९०२ वि० (१८४५ ई०) लिखा है। वह 'अद्भुतरामायण' के आधार पर लिखा जाकर १५ सर्गों में पूरा हुआ है।

४. परिषद् में सुरक्षित हस्तलिखित 'सीता-सौरभ-मंजरी' से।

ब्रह्मदेवनारायण 'ब्रह्म'

आप नयागाँव (सारन) के निवासी थे।[1] आपका जन्म सन् १७८६ ई० में हुआ था। 'बटोहिया' के सुप्रसिद्ध कवि स्व० रघुवीर नारायण आपके ही वंशज थे। आपने भक्ति-योग-सम्बन्धी कुछ फुटकर पदों की रचना खड़ीबोली और भोजपुरी में की थी।

उदाहरण

नहिं दुख रहत जपत पद पंकज, शरण लगावत बालक जानी।
यद्यपि जगत कुपुत्र जनम लइ, तदपि कुमातु न होत भवानी॥
विधि दुख लिखे कपाल सों मेटत, जो एक बार कहे शिवरानी।
'ब्रह्म' अजान अधम को तारहु, दे जननी पद मुक्ति निसानी॥[2]

❀

भंजन कवि

आपको 'कविशेखर' की उपाधि प्राप्त थी।

आप मिथिला-निवासी[3] और मिथिला-नरेश महाराज राघवसिंह (सन् १७०४ से १७४० ई०) के आश्रित कवि थे।

आपने मथिली में बहुत से पदों की रचना की थी।

उदाहरण

(१)

ई जँ हम जनितहुँ तनि तहँ, होएत बिरह दुख भार
अङ्कम भरि हरि धरितहुँ, करितहुँ, हृदयक हार॥
नत भए हँसि किछु कहितहुँ, रहितहुँ सुख निशि धाम।
जनम कृतारथ लेखितहुँ, देखितहुँ मुख अभिराम॥
कर गहि कण्ठ लगबितहुँ, गबितहुँ मेघ मलार।
घन दामिनि भए जुटितहुँ, लुटितहुँ जग-सुख-सार॥
आङ आङ नहि अँटितहुँ, जहितहुँ प्रेम शरीर।
एतेक अतनु नहि करइत, ढरइत नहि दृग नीर॥
पलओ न कल तन लीतहुँ, दीतहुँ साजि तमोर।
सम्मुख भय नहि सकितहुँ, तकितहुँ लोचन कोर॥
कह कवि 'भञ्जन' निश्च मत, रसमत मिलत मुरारि।
तिलओ मलिन मन न करह, धैरज धरु अवधारि॥[4]

---

१. श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण (नयागाँव, सारन) के द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

२. वही।

३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ७८।

४. वही, पद सं० ४७, पृ० २६-२७।

(२)

जहृतहिँ देखल विलासिनि रे, उर मोतिम हारा।
शरद रैनि कत झाँपब रे, जगमग करु तारा।
तुअ भओँह रूप कहब कत रे, तोहि दुहु भओँह आरा।
तोहि सन एहि युग नहि केओ रे, विधि रचल अपारा।
चामरु एहि युग लौथिक रे, शिर फूजल केशे।
फुजि गेल मधुरि कमल दह रे, आरुनिक प्रकाशे।
'भंजन कवि' इहो गाओल रे, अब दुरि करु माने।
तिल भरि सम्मुख हेरिअ रे, अब राखिअ प्राने।[१]

❀

भवेश

आप दरभंगा जिले के भट्टपुरा ग्राम-निवासी थे।[२] मैथिली में आपकी कुछ कविताएँ विभिन्न संग्रहों में प्राप्त होती हैं।

उदाहरण

कहओ कुशल इहो वायस सजनी न थिक पथिक परथाव।
तनि हम केहन समागम सजनी रौंक रतन की पाव॥
रहओ लाख लोक पहु बिनु सजनी मोर सुख विसरल हास।
उगओ नखत कत शशि बिनु सजनी कुमुद न होअ परगास॥
दहओ देह विरहानल सजनी हृदय नेह नहि हानि।
जइओ दहन दह सम्पुट सजनी कनकन उपजु मलानि।
करओ मदनशर वेदन सजनी मोर मन हो न उदास।
हरिन हिमकर परिहर सजनी सह वरु राहु-गरास॥
एखनुक सन जँ तहखन सजनी न तैजए विरह बेआधि।
तँ जनु दएह जलाञ्जलि सजनी निर निरवधि उठ धाधि॥
कवि 'भवेश' मन मन दए सजनी गुणमति मति नहि आन।
भिजओ वरख लख सागर सजनी कोमल न होअ पखान॥[३]

❀

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त।

२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ८०।

३. वही, पद सं० ५८, पृ० ३३।

(स्वामी) भिनकराम

आपका जन्म 'राजापुर-भेड़ियाही' से उत्तर सहोरवा-गोनरवा (चम्पारन) में हुआ था।[1] कहते हैं, कबीरसाहब के ४८४ शिष्य थे। उन्हीं की वंशावली में आप हुए। आप जाति के 'ततवा' थे।

आपके शिष्यों में प्रमुख थे कंकालिनमाई (सिमरौनगढ़, नैपाल-तराई) के मनसाबाबा। आप सरभंग-सम्प्रदाय के प्रमुख संत-कवि थे। आपने इस सम्प्रदाय में एक नया पंथ ही चलाया, जो 'भिनक-पंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2] आपकी रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं।

उदाहरण

(१)

आगि लागे बनवा जरे परबतवा,
मोरे लेखे हो साजन जरे नइहरवा।
आवऽ आवऽ बभना बइठु मोर अँगना
सोचि देहु ना मोरा गुरु के अवनवा॥
जिन्हि सोचिहें मोरा गुरु के अवनवा,
तिन्हे देबों ना साजन ग्यान के रतनवा॥
नैना भरि कजरा लिलार भरि सेनुरा,
मोरा लेखे सतगुरु भइले निरमोहिया॥
सिरि भिनकराम स्वामी गावले निरगुनवा,
धाइ धरबों हो साधु लोग के सरनवा॥[3]

(२)

तोहर बिगड़ल बात बन जाई, हरिजी से लगि रहऽ हो भाई।
उलटि के पवन गवन कर भवन में, निरसल रूप दरसाई॥
दरसन के सुख पावे नयनवा, निरखत रूप लोभाई।
प्रेम के पलरा धीरज कर डंडी, सुरति को नाथ पहिराई॥
निरगुन नाम तौलों दिन राति, सुंन में सहर बसाई।
कहे सिरी भिनकराम गुरु मिलै हकीम, जिन मोहि अम्रित पिआई॥
मुआ से जिआ कइ डारे, हंस अमर पद पाई॥[4]

※

---

१. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (वही), पृ० १४०-४१। यह स्थान बैरगनियाँ के निकट स्थित राजपुर से लगभग १६ मील पर है। वहीं आपकी समाधि भी है।

२. इस पंथ के मठ चम्पारन के अतिरिक्त पटना, शाहाबाद, बलिया आदि जिलों में भी हैं।

३. भोजपुरी के कवि और काव्य (वही), पृ० १२२।

४. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (वही), पृ० ८४।

भीखमराम

आपका वास्तविक नाम भीखामिश्र था।

आप चम्पारन जिले के माधोपुर नामक ग्राम के निवासी ब्राह्मण[१] थे। कहते हैं, आपके पूर्वज पहले सारन-जिला के सरयू-तट पर 'गड़खा' के आसपास किसी ग्राम में रहते थे, जहाँ से पीछे चम्पारन आये।

आप दो भाई थे। छोटे भाई का नाम काशीमिश्र था। आपके एकमात्र पुत्र राम-नेवाजमिश्र भी साधु हो गये। आपमें बाल्यावस्था से ही वैराग्य के सभी लक्षण वर्त्तमान थे। बड़े होने पर गरीबी के कारण खेत गोड़ने का काम करके जीवन व्यतीत करते थे।

कहते हैं, आप नियमित रूप से नित्य शाम को भोजन के पश्चात् केसरिया (चम्पारन) के पास 'नारायणी' के सत्तर-घाट के निकट 'सेमराहा' में अपने गुरु बाबा प्रीतमराम के पास चले जाते थे।[२] बाबा प्रीतमराम के देहावसान के पश्चात् वृद्धावस्था में आपने जगन्नाथपुरी आदि तीर्थों का पर्यटन किया।

तीर्थाटन से लौटते समय मार्ग में, मुजफ्फरपुर में, घर आने पर आपमें विचित्र परिवर्त्तन हो गया। आपकी नींद जाती रही और दिन-रात बैठकर ही समय बिताने लगे। पहले अन्न और फिर फल का भी त्याग कर बिलकुल निराहार रहने लगे।

आप पहले वैष्णव थे। पीछे शान्ति के अभाव में सरभंग-सम्प्रदाय में दीक्षित हुए।[३] कुछ लोगों के कथनानुसार आप जीवन के अन्तिम दिनों में शैव हो गये थे। कहा जाता है, आप तन्त्र-मन्त्र के भी बड़े साधक थे। आपके शिष्यों में प्रमुख थे—टेकमनराम[४] और हरिहरराम।

आप सिद्ध तथा चमत्कारी पुरुष थे। आपके विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।[५] जब आपके गाँववालों ने आपको बहुत ही तंग करना आरम्भ किया, तब आपने माघ सुदी तृतीया को जीवित समाधि ले ली।[६] आपके मठ मोतिहारी, बिरछेस्थान, तुरकौलिया-कोठी, जगिरहा कोटवा आदि स्थानों में हैं।

आपकी लिखी 'बीजक' नामक पुस्तक प्रसिद्ध है।[७] आपके पदों में शिव, शक्ति और विष्णु की समान वन्दना है।

---

१. संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय (वही), पृ० १४२।

२. किंवदन्ती है कि अपने शिष्य को नित्य आते देखकर बाबा प्रीतमराम अपने ग्राम सेमराहा से अपने शिष्य के ग्राम माधोपुर में ही आकर बस गये। आज भी बाबा प्रीतमराम की समाधि माधोपुर में है।

३. आश्चर्य की बात है कि आज आपके वंशज आपको सरभंगी नहीं मानते।

४. इनका परिचय इसी पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

५. आपके विषय में किंवदन्तियों और चमत्कारपूर्ण-कथाओं के लिए देखिए—'संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय' (वही), पृ० १४२, १४३ तथा १४८।

६. इस स्थान पर आज भी उक्त तिथि को मेला लगता है।

७. यह पुस्तक राजाभाड़ (सुगौली से गोविन्दगंज जानेवाली सड़क के निकट)-निवासी टेनाराम नामक व्यक्ति के पास है।

उदाहरण

हंसा करना नेवास, अमरपुर में।
चलै ना चरखा, बोलै ना ताँती
अमर चीर पेन्है बहु भाँती ॥ हंसा० ॥
गगन ना गरजै, चुए ना पानी
अमृत जलवा सहज भरि आनी ॥ हंसा० ॥
भुख नाहीं लागे, ना लागे पियासा ;
अमृत भोजन करे सुख बासा ॥ हंसा० ॥
नाम भीखम गुरु सबद् बिबेका।
जो नर जपे सतगुरु उपदेसा ॥ हंसा० ॥[1]

*

मनबोध

आपका दूसरा नाम 'भोलन' था।

आपका जन्म-स्थान दरभंगा जिले का कोई 'मँगरौनी'[2], कोई 'जमसम'[3] और कोई 'भराम'[4] नामक ग्राम मानते हैं। डॉ० ग्रियर्सन के मतानुसार आपका जन्म-स्थान 'जमसम' में ही होना ठीक ज्ञात होता है।[5] आपका विवाह भिखारी नामक व्यक्ति की पुत्री से हुआ था। डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार आप सन् १७८८ ई० (११९५ फसली सं०) में निःसंतान मरे।

प्रसिद्ध है कि आपने सम्पूर्ण 'हरिवंश'[6] का मैथिली में अनुवाद किया था, जिसके कुछ अंश उत्तर-मिथिला में बहुत प्रचलित हैं। आपने कुछ स्फुट गीतों की भी रचना की थी, जो यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं।

---

१. भोजपुरी के कवि और काव्य (वही), पृ० ११९।

२. A History of Maithili Literature (वही), P. 452.

३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ७८।

४. मिथिला-मिहिर मिथिला के (वही), पृ० ९६।

५. Journal of the Asiatic Society of Bengal (Vol. LI, Part I, 1882), P. 129. यह स्थान दरभंगा के मधुबनी सबडिवीजन में स्थित प्रसिद्ध ग्राम 'पण्डौल' के निकट है।

६. किसी-किसी हस्तलिखित प्रति में इस ग्रंथ का नाम 'हरिचरित' और किसी में 'श्रीकृष्णजन्म' भी लिखा है। 'श्रीकृष्णजन्म' के नाम से आपकी ही पुस्तक राज यूनियन प्रेस से प्रकाशित हुई थी। सम्भवतः इसी के एक अंश (दस अध्यायों) को सम्पादित कर डॉ० ग्रियर्सन ने १८८२ ई० में Journal of the Asiatic Society of Bengal में प्रकाशित किया था। आगे १८८४ ई० के उसी 'जर्नल' में उन्होंने इसका अँगरेजी-अनुवाद भी प्रकाशित कराया। म० म० डॉ० उमेश मिश्र ने भी १९३४ ई० में इस ग्रंथ का सम्पादन किया था।

उदाहरण

(१)

सारद ससधर जगमग राति। देखि हरि गेलाह मनोरथ माति ।। १ ।।
राधा पदुमिनि महरी आएलि। एक जुथ संग फूला को लाएलि ।।
ब्रिन्दावन भए कहु भेल रास। ओहि दिन राति ओतहि भेल बास ।।
दुइ गोपिक बिच एक मुरारि। दुइ कृष्णक बिच एकहोंक नारि ।।
एँ परि रासक मंडल भेल। क्यो कहओ निसिजुग बिति गेल ।। ५ ।।
रासक रस हरि छल बड़ मगन। से रस असुर कएलअन्हि भगन ।।
गोबर गौँत सगर लपटाएल। बल बस गाए सत बितहि आएल ।।
मुन्दले आँखि दहो दिस दौड़। परबत सन उच कान्ह कन्हौर ।।
ओहन बरद गोट कोनहुँ न तापि। देखि रहल सम क्यो गेल काँपि ।।
सिङ्घ नाद कै हरि हलु डाटि। लागल फेकए पाछु के माटि ।। १० ।।[१]

(२)

देखब कोन भाँती।
जम जिव मोर कपइछ कर घर करु मोहि साथी ।।
विषम विषय रस वसि रहलहु वयस सगर बीति गेला ।।
असरण सरण चरण हम सेवल मधुकर भय नहि भेला ।।
सपनहु जिव-जिव जीव नहिं भजलहु ने भजलहु भगवाने ।।
केसरि वीज ऊसर छिरिआओल ध्रग थिक हमर गेआने ।।
दुहु कर जोड़ि विनति अभिनव भय कवि 'मनबोध' इहो भावे ।।
मोर अपराध मानि सरणागत ताहि जेहन मोन आवे ।।[२]

❋

महींपति

आप मिथिला-निवासी थे। आपने मैथिली में स्फुट पदों की रचना की थी, जिनमें से कुछ लोक-कंठ में मिलते हैं।

उदाहरण

पचसर लए सर साज ना, कि कहब पहुना समाज ना ।।
हरि हरि करु कत बेरि ना, मुरुछि खसू पथ हेरि ना ।।
आएल जमुना जल बाढ़ि ना, भेलहुँ कदम तर ठाढ़ि ना ।।
आब कि करब सिर धूनि ना, कोकिल कलरव सूनि ना ।।
कवि महिपति इहो भान ना, जगत बन्धु रसजान ना ।।[३]

❋

---

१. Journal of the Asiatic society of Bengal (वही), P. 140.
२. A History of Maithili Literature (वही), P. 420.
३. Journal of Asiatic Society of Bengal (vol. 53, Part I, 1814, Supl. No) P. 85.

माधव नारायण

आपका उपनाम 'केशव' या 'केशन कवि' था।

आप मिथिला-निवासी[1] और मिथिला-नरेश महाराज प्रतापसिंह (सन् १७६१-७६ ई०) के दरबारी-कवि थे। आपकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई।

❊

मानिकचंद दूबे

आप शाहाबाद जिले के धनगाईं नामक ग्राम के निवासी थे।[2] किन्तु आप अधिकतर अपने चचेरे भाई अनूपचन्द के साथ डुमराँव-दरबार में ही रहते थे। वहाँ के नरेश ने आपको अगड़ेर ग्राम पारितोषिक में दिया था, जिसकी तहसील छह हजार रुपये सालाना थी। आपके पिता का नाम ज्ञान दूबे था। आपका जन्म १८१५ वि० (१७५८ ई०) में हुआ था। आप संगीत के मर्मज्ञ विद्वान्, गायकाचार्य और कवि हुए। आपने संगीत-शास्त्र तथा संस्कृत-साहित्य की शिक्षा काशी में, एक दक्षिणी पंडित से पाई थी। एक बार वीणा के विशेषज्ञ निरमोलशाह से प्रतियोगिता में आप विजयी भी हुए थे।

आपकी मृत्यु ९७ वर्ष की आयु में, १९१२ वि० (१८५५ ई०) में हुई थी।

उदाहरण

काफी तू विचारी मूलतानी झगरे किये री, सुर ठीक नाहीं यह कान्हरा के प्रान में।
मालकोशहू ते आये नायिकी दो चंद मानी, औ अनेक होत रहे पूर्वी विधान में।
सुख को विभास करे दीपकी सरस अंग, गौरी मेववासर है ललित मिलान में।
सारंगहू के समय मुकुरी तू काहे आहे, मोहन सो लाग मन मजा नहिं मान में।[3]

❊

मुकुन्दसिंह

आप रामगढ़ (हजारीबाग) के निवासी[4] और उसी स्थान के महाराजा दलेलसिंह के पौत्र और रुद्रसिंह के तृतीय पुत्र थे। आपने सन् १७७० ई० के लगभग ६ राज्यों को रामगढ़-राज्य में मिला लिया था। आप अपने पिता तथा पितामह की भाँति एक कुशल कवि हुए।

हिन्दी में आपकी लिखी दो पुस्तकें मिलती हैं—'पुरुषोत्तम-प्रादुर्भाव' और 'रघुवंश'। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❊

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, तृतीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० ९९५।
२. श्रीजगदीश शुक्ल (राजराजेश्वरी हाई स्कूल, सूर्यपुरा, शाहाबाद) से प्राप्त सूचना के आधार पर।
३. वही। इसमें अधिकतर विभिन्न रागों का ही नामोल्लेख है।
४. श्रीसूर्यनारायण भंडारी (इचाक, हजारीबाग) से प्राप्त सूचना के आधार पर।

मोदनारायण

आप मिथिला-निवासी और मिथिला के राजा प्रतापसिंह (सन् १७६१-७५ ई०) के आश्रित कवि थे।[१]

आपने मैथिली में काव्य-रचना की थी, जिनमें से कुछ लोक-कंठ में उपलब्ध हैं।

उदाहरण

(१)

जमुना तीर कदम तर है, एक अतरज देखी।
तड़ित जलद जनु अवतरु है, एक रूप विसेखी॥
राधा रूप मगनि भेलि है, कर धै हरि आनी।
कतेक जतन कइ माखिअ है, नहिँ बोलथि सयानी॥
अनुपम लोचन खञ्जन है, बाँकहु हरि हेरी।
बदन बसन अभिनत कै है, मुसुकलि एक बेरी॥
काम कला गुन आगरि है, बैसलि मुख फेरी।
रङ्क समान फिरथि हरि है, जनि रतनक ढेरी॥
थिर नहिँ रहल मुगुध मन है, जौबन जग साले।
आलीगँन रस पसरल है, पुलकित बनमाले॥
नृपति प्रताप मन अवतरु है, नव तरु पचमाने।
मोदनराएन मन वुए है, से आमे रस जाने॥ १॥[२]

※

रघुनाथदास

आपका निवास-स्थान पहले ब्रह्मपुरा (मुजफ्फरपुर) था, पीछे आप विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे।[१] कुछ काल तक आप गण्डकी-नदी के तीर पर 'पानापुर' में भी रहे। यों, जनक-नन्दनी सीताजी की जन्मभूमि के समीप बागमती-नदीतटस्थ पुण्डरीक मुनि के आश्रम पर भी कुछ समय तक पर्णकुटी निर्माण कर आपके रहने का उल्लेख मिलता है। आपके जीवन के अन्तिम दिन जिस स्थान पर बीते थे, उस स्थान का नाम आपने ही 'राघोपुर-बखरी' रखा था।[३]

आप एक बहुत बड़े भजनीक, योगी एवं साधक थे। आपके गुरु थे नन्दूरामदास[४] जी। आपके सम्बन्ध में कई चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रसिद्ध हैं।[५] आपके कितने

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ८३।

२. Journal of the Asiatic society of Bengal (Vol. 53, Part I, 1884, Spl. No.), P. 82-83.

३. देखिए, शब्दसंहिता-वाणी-प्रमोद (वही, भूमिका), पृ० क-ख।

४. इनका परिचय इस पुस्तक में यथास्थान मुद्रित है।

५. इस प्रकार की कथाओं के लिए देखिए—वही।

ही शिष्य हुए, जिनमें प्रमुख थे मौजीराम दास, जिज्ञासी राम, हरिनामदास तथा कृष्णदास। इनमें अन्तिम दोनों बड़े प्रसिद्ध महात्मा हुए। कहते हैं, दरभंगा-नरेश महाराज प्रताप-सिंह आपके समकालीन थे। उन्होंने आपको फाल्गुन सुदी १५ फसला सन् ११७१ में ६०० बीघे जमीन दी थी। आप आश्विन बदी फसली सन् ११९३ में परलोक सिधारे।

आपकी कोई भी स्फुट रचना नहीं मिलती। आपने अपने गुरु नन्दूरामदासजी की प्रारम्भ की हुई पुस्तक 'शब्द-संहिता-वाणीप्रमोद' को पूरा किया था। अतः उसी में आपका रचनाएँ संगृहीत हैं।

उदाहरण

(१)

सोई नर श्रोता ज्ञानो पंडित गुणवंत सोई, सोई धनवंत शूर भजत भगवंत है।
सोई जातिवंत अरु पांतिन्ह प्रसिद्ध सोई, सोई सुन्दर सुवंत सोई वेदन्त सुतंत है।
सोई दिव्यमान कल्याण के भाजन सोई, सोई सुयशवान जाहि वरणत सुसन्त है।
सोई सब लक्षण विलक्षण रघुनाथ दास आश जाके रामपद पंकज अनन्त है।।[१]

(२)

सुनह वचन सखि! मनदए, दहए चहए तनु आज।
पवन परस तरसए जिव, मदन दहन शर साज॥
कोन परि उवरव हरि हरि, धैरज धरि धरि लाख।
छन छन तन अवसन होअ, सखि नै जिउति सखि भाख॥
सखि सेज रचल नलिनि दल, तैँहुँ तन होअ अवसान।
वन कुहुकए घन पिकरव, सुनि सुनि दह दुहु कान॥
कि करव धुनि सुनि पिक रव, निक रव मोहि न सोहाए।
हहरि हहरि खसु हिरदय, निरदय अजहुँ न आए॥
धरम करम बिछुडल मोर, पुरुब कएल कोन पाप।
धैरज सब तँहँ वहथिक, रस बुझु नृपति प्रताप॥[२]

*

रमापति उपाध्याय

आप मिथिला-निवासी और मिथिला के महाराज नरेन्द्रसिंह (सन् १७४४-६१ ई०) के आश्रित कवि थे।[३] आपके पिता का नाम कृष्णपति झा था। वे स्वयं भी एक कवि थे। आपका विवाह महाराज नरपति ठाकुर के पुत्र ठाकुरसिंह की पुत्री से हुआ था।

आपने 'हरिवंश-पुराण' के आधार पर छह अंकों के एक नाटक की रचना की थी, जो 'रुक्मिणी-परिणय', 'रुक्मिणी-हरण', 'रुक्मिणी-स्वयंवर' आदि नामों से प्रसिद्ध है।

---

१. शब्द-संहिता-वाणी-प्रमोद (वही), पृ० १६६।

२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ७७, पृ० ४५।

३. A History of Maithili Literature (वही), P. 411.

उदाहरण

(१)

प्रथमहिँ, ओ रे, ससि मुखि परिजन मुख सुन ।
ओ की, तुअ गुन अनुछन नेह उपज दुन ॥
बिधि बस, ओ रे, बदन इन्दु तुअ देखि धनि ।
ओ की, भेलि जनि प्रेम पयोनिधि निगमनि ॥
अकमित, ओ रे, कोकिल पञ्चम कल धुनि ।
ओ की सेह सुनि पुनु पुनु मुरुछ दुसह गुनि ॥
तलपहिँ, ओ रे, अति कोमल नलिनी दल ।
ओ की, दिअ भल परम दगध होअ अनुपल ॥
अबधिहुँ, ओ रे न मिलत जदि निरदय हरि ।
ओ की, छन भरि न जिउति आलि कोनहु परि ॥
सुनु धनि ओ रे, सुमति रमापति बुझि कह ।
ओ की, थिर रह पुरत मनोरथ हरि तह ॥ १० ॥[१]

(२)

गिरिवर लीन मलीन निशाकर अलप नखत नहि भासे ।
मुदित कमलवनि किए नहि तुअ धनि ! नयन सरोज विकासे ।
ओगे मानिनि !
सुरपति दिशि अनुराग देखिअ धनि ! तइओ ने तोहि अनुरागे ।
तुअ मानस परसन नहि सुन्दरि ! अम्बर परसन लागे ॥
तुअ मुख मौन विचारि कलावति ! पिक पञ्चम करु नादे ।
पिञ्जर कीर धीर मृदु भाखए तैँ होअ परम विषादे ॥
इन्दु मृणाल अमिअ सरसीरुह, तुअ तनु कए निरमाने ।
मानस कुलिश वलिस तुअ बिरचल, तहि न होअ अनुमाने ॥
विसरिअ दोस, रोस सब दुरि कए, वचन अमिअ करु दाने ।
निशि-अवसान मान नहि राखिअ, सुमति 'रमापति' भाने ॥[२]

*

१. Journal of the Asiatic Society of Bengal (Vol 53, Part I, 1884, Spl. No.), PP. 83-84.

२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ६२, पृ० ३५-३६ ।

राधाकृष्ण

कविता में आप अपना नाम 'कृष्ण' भी लिखते थे।

आपका निवास-स्थान जयनगर (दरभंगा) था।[१] आप संगीत-विद्या-विशेषज्ञ और कवि थे। आपकी एक पुस्तकाकार-रचना 'राग-रत्नाकर' मिलती है, जिसमें संगीत के अनेक विषयों का विवरण है।[२]

उदाहरण

(१)

जुग याम निशा घनघोर छयो अंधियार घनौं सरसावत हैं।।
रवि सी रमणी रति मन्दिर में पति केलि कलानि रिझावत हैं।।
शिर भूषण की प्रतिज्योति जगी दुति भाम मनो दरसावत हैं।।
यह दीपक-राग महाछबि सों लखि दीपक हूँ सकुचावत हैं।।[३]

(२)

प्रात समय प्यारी उठि ओढी सेत सारी भारी फैल मुखचन्द की उजारी ज्योति जागनी।
गोरे भुजमूल सिव पूजिके चढ़ाय फूल दोऊ करताल लै बजावै प्रेम पागनी।
अङ्गो उर लाल कंज लोचन विशाल बाल फटिक सिंहासन पै बैठी बड़ भागिनी।
गावत कैलाश के बिलास में हुलास भरी भैरबी बखानी यह भैरव की रागनी।।[४]

❋

रामकवि

आप मिथिला-निवासी और सम्भवतः मिथिला के राजा राघवसिंह (सन् १७०४-४० ई०) के दरबारी कवि भी थे।[५] आपने बेतिया (चम्पारन) के राजा दिलीपसिंह के पुत्र ध्रुवसिंह को राजा राघवसिंह से युद्ध न करने के लिए अनुरोध किया था। मैथिली में इसी सम्बन्ध की आपकी कुछ रचनाएँ मिलती हैं।

---

१. द्विजवासी जयनगर के गोड़ जात अभिराम।
बरणो राधाकृष्ण कवि ग्रन्थ महा छविधाम॥
भक्तविनोद तथा रागरत्नाकर (राजितशर्मा मलिक, द्वितीय भाग, प्रथम सं०, १९३७ ई०), पृ० ४२।

२. इसकी रचना ११५३ फसली सन् (१७४६ ई०) में हुई थी। यह मुद्रित होकर राजितशर्मा मलिक की 'भक्तिविनोद' के साथ १९३७ ई० में प्रकाशित हुई थी।

३. भक्तविनोद तथा रागरत्नाकर (वही), पृ० १८।

४. वही, पृ० १८।

५. मिथिला-तत्त्व-विमर्श (पं० परमेश्वर झा, प्रथम सं०, १९४९ ई०, उत्तरार्द्ध) पृ० ३६-३७।

उदाहरण

न गहु खग्ग ध्रुवसिंह तोहि उपर यम चढ्यौ,
मिथिलापति सें वैर अवसि दिन दिन तोहि बढ्यौ।
तें कपूत कुलवधिक ये तो राघोवर राजा,
अरिदल दलन समर्थ भीम भारत जीमि गाजा।
कवि कहत राम रे मूढ़ सुनु, जेहि दल प्रचण्ड भैरो रहत।
ठहरे न फौज जथारिन जब, सरदार खाँ ओ तेगा गहत॥[१]

❋

रामजी भट्ट

आप गंगा-तट पर स्थित 'भोजपुर' के निवासी गूजरवंशी थे।[२] आपके पितामह का नाम रामदेव और पिता का नाम गौरीनाथ था।

आपने संस्कृत 'अद्भुत-रामायण' का हिन्दी में पद्यबद्ध अनुवाद किया था। इसकी रचना १७८६ ई० में हुई थी।

आपकी रचना का उदाहरण नहीं मिला।

❋

रामजीवनदास

आप परशुरामपुर मठ, तुरकोलिया (चम्पारन) के निवासी रविदास थे। कहते हैं, यौवन बीतते, बीतते आपकी आँखें जाती रहीं।[३]

हिन्दी में आपकी बहुत ही कम रचनाएँ मिलती हैं।

उदाहरण

चरन चरन रहन दिन मानो देवी कालिका
शरण शरण तोहि पुकारो भइ कठोर कालिका
डुबत जन के काहे बिसारो भइ बेहाल हालिका
लछमी सरोसती पारबती जानकी समस्त लोक मालिका
रामजीवन जन तुम्हारे डूबत भवसागर धारे,
त्राहि त्राहि मो पुकारो दरस दीन चंद्रिका।[४]

❋

---

१. मिथिला-तत्त्व-विमर्श (वही), पृ० ३८।

२. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी-ग्रंथों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण : सन् १९३५-३७ ई० (स्व० डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, २०१२ वि०), पृ० ४४।

३. आँखों के नष्ट हो जाने पर आपने एक झूमर लिखा था, जिसकी दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —
तन मोरा थकले बीति गइले,
नयनों ना सूझेला हमार हो राम!

४. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० ५२।

रामनारायण प्रसाद

आप चम्पारन के गोविन्दगंज थाने के अन्तर्गत दामोदरपुर-ग्राम के निवासी थे।[१]

आप व्रजभाषा के उच्चकोटि के कवि कहे गये हैं। आपके कुछ पद श्रीगणेशचौबे (बँगरी, चम्पारन) को प्राप्त हुए हैं। परमानन्दजी के 'विरहमासा' के साथ आपके भी कुछ पद संगृहीत हैं।

उदाहरण

(१)

सियावर असरन सरन हरि विरद सोर सगरी।
शिव गनेश प्रहलाद ब्यास ध्रुव राम नाम अगरी।
सुक कबीर नारद ऋखि मीरा विख भये अमीय भरी।
मारजार भरदूल द्रौपदी नामलेत उबरी।
जमन अजामिल गनिका सबरी सुपच सदन कूबरी।
मृग निखाद गज गिद्ध अहिल्या पदरज परसितरी।
सरनागत सुगरिब विभिषन बधिरिपु अभयकरी।
रामनाम महिमा अथाह कहि सेसहु थाकि परी।
रामनरायन राम नाम जपु उर बीच नेम धरी॥[२]

(२)

सुनु सखि साम सुनर बनवारी
मन मोहन मुरारी मो पर मोहनि डारी।
सीस बिराजित मोर पांखुरी कच कुंचित लटकारी।
सोभा भव चक्कारी॥
खंजन मीन सरोज साध दृग भँहुअ बंक धनुधारी
श्याम सीत पर तीव्र धार सर दृष्टि कटाच्छ सुधारी
श्रुति सोभित मकराकृत कुण्डल झुकि कपोल कियारी
जनु मनोज जुग भवन पैठ निज द्वारे निसान विसारी
दाड़िम फल जिमि दसन पंक्तिवर अधरविम्ब दुतिहारि
रामनरायन छवि पियुख चख चखति पलक पट डारी॥[३]

❀

---

१. श्रीगणेश चौबे (बँगरी, चम्पारन) से प्राप्त सूचना के आधार पर।

२. परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग के अन्तर्गत 'चौबे-संग्रह' में संगृहीत परमानन्द के 'विरहमासा' से।

३. वही।

रामप्रसाद

आप बेतिया (चम्पारन) के महाराज आनन्दकिशोरसिंह के दरबार में थे।[१]

आपने अपने उक्त आश्रयदाता के आदेश पर 'आनन्दरस-कल्पतरु' नामक पुस्तक की रचना की थी, जो १८७७ वि० कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी रविवार को पूरी हुई।[२] इस ग्रंथ में रस, भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, नायक-नायिका आदि के लक्षण सोदाहरण दिये गये हैं।

उदाहरण

औचक चाहि गई जब तैं मनमोहन मूरति रावरी नीकि।
दौरति है तब तैं बिरहाकुल कुन्दन सी दुति ह्वै रह्यो फीकी।
आँगन मैं खिन भौंन अटा छन सेज महादुख दायिनि जी की।
बे-तन तीर के पीरनी तें भई ऐसी दशा वृषभान लली की॥[३]

❀

रामरहस्यसाहब

आपका नाम पहले 'रामरज दूबे' था। आपकी कविताओं में 'रामरहेस' नाम भी आया है।

आप टेकारी-राज्य (गया) के मंत्री पं० भगवान दूबे के पुत्र थे।[४] आपने कबीरचौरा (काशी) के १५वें गुरु महात्मा शरणदासजी से दीक्षा ली थी। १७६२ ई० के बाद आप गया में रहने लगे। १८१० ई० में आपका परलोकवास हुआ।

आप कबीरपंथी महात्मा थे, और शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया था। कबीरपंथ के सिद्धान्तों को नियमबद्ध एवं तर्कसंगत बनाकर उसे दार्शनिक और बुद्धिवादी रूप देने का श्रेय आपको ही है। कुछ लोगों का कहना है कि आपके समान शास्त्रज्ञ विद्वान् उत्तर-भारत की संत-परंपरा में एक सुन्दरदास को छोड़कर कोई नहीं हुआ। आपके लिखे कई ग्रंथ हैं। इनमें प्रमुख 'पंचग्रन्थी' है, जिसमें पाँच ग्रंथ हैं। इसे कबीरपंथी लोग 'सद्ग्रंथ' कहते हैं।[५] कबीर के सिद्धान्तों को लोकप्रिय बनाने का इस ग्रंथ को बहुत बड़ा श्रेय है। इसके पहले ऐसा विवेचनात्मक ग्रंथ कोई नहीं था। कबीरपंथ में 'बीजक' के बाद इसी ग्रंथ की सर्वमान्यता है।

उदाहरण

(१)

जथा अनेकन लहरिते, जल थिरता नहिं पाय।
थीर जहाँ तहँ बाड़वा, नीरहिं सोख कराय॥
दुहुँ प्रकार थिरता नहीं, ब्रह्महुँ जग पर्यन्त।
जीवहि दुःख दुसह अति, त्राहि त्राहि विलखन्त॥[६]

---

१. 'साहित्य' (वही, अप्रैल १९५३ ई०), पृ० ६२।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति मन्नूलाल पुस्तकालय, (गया) में सुरक्षित है।

३. 'साहित्य' (वही), पृ० ६१।

४. श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रन्थ (२००५ वि०), पृ० ५६।

५. कबीरपंथी विद्वान् बाबा राघवदास ने अभी हाल में इसकी एक सुन्दर टीका लिखी है, जो बड़ौदा से मुद्रित होकर प्रकाशित हुई है।

६. श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रन्थ (वही), पृ० ६१।

(२)

कल्पित इच्छा ब्रह्म कहावा। ब्रह्म की इच्छा माया गावा।
ताते त्रिगुण भये मन भाई। मन माने चौरासी जाई।
कल्पित सृष्टि भयो विस्तारा। परे जीव सब ब्रह्म की धारा।
दुखित सुखित तेहि पद अनुरागी। जगैं न मोह जनित बुधि लागी॥[१]

❀

रामेश्वर

आपका निवास-स्थान मिथिला में था।[२] आप महामहोपाध्याय गोकुलनाथ उपाध्याय के शिष्य थे। आप मिथिला के महाराज राघवसिंह (सन् १७०४-४० ई०) के समकालीन थे। आपने कुछ मैथिली पदों की रचना की थी, जो लोक-कंठ में संगृहीत हैं।

उदाहरण

हे सखि ! अहूँ एकसरि एलहुँ।
बूझि पड़ल षट्पति वाहन-रिपु-रिपु-पति संङ्ग पड़ैलहुँ॥
प्रकट-सात-स्वामी तावत तो शशक डरें नुकैलहुँ॥
भेल वेद-पति-पिताक भूषण वामावश अकुलैलहुँ॥
ईश इशादिक बन्धन सागर सौं कोनहुना बहरेलहुँ॥
बारह-वरक विरह-प्रतिपत्-प्रतिमे पुनि आवि समेलहुँ॥
नव-नायिकाक वाहन-रिपु-पति जनकथ कानन धैलहुँ॥
तैं एखन पन्द्रह प्रियतम कर शर नायक सँ डरैलहुँ॥
के जानै की थिक दुइ पति गति जे अनुचित सब कैलहुँ॥
रामचन्द्र प्रियतम दश ईशाक भाय बड़ तैं घबड़ैलहुँ॥
कैल न तीनि ईश्वरिक पूजा अवढ़त खन अगुतैलहुँ॥
तैं न आठपति भेल परापति अपनहिं सुख भुजि खेलहुँ॥
रहि गेलहुँ अहि ठकक भरोसे तैं एहि काल ठकैलहुँ॥
चौदह नाथक हाथ रहै जे तहि मे जखन गँथैलहुँ॥
बहु करुणा कै गोपसुता कह अति करकशा गनैलहुँ॥
'रामेश्वर' भन पुरत मनोरथ हरि सौं हम बतिऐलहुँ।[३]

❀

---

१. श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रंथ (वही), पृ० ६३।
२. A History of Maithili Literature (वही), P. 409.
३. वही, पृ० ४०९-१०।

रामेश्वरदास

आपका जन्म शाहाबाद जिले के कवलपट्टी-ग्राम में, १७७५ वि० (१७१८ ई०) में हुआ था।[१] आपके पिता लक्ष्मीनारायण[२] का देहांत आपकी बाल्यावस्था में ही हो गया। इसके पश्चात् आप अपने मामा के साथ बभनगाँवाँ-ग्राम में रहने लगे, जहाँ आपके विवाहादि-संस्कार भी सम्पन्न हुए।

आप आरम्भ से ही भगवद्भक्त थे। एक बार एक घटना के कारण आपके मन में विराग उत्पन्न हुआ, जिसके परिणामस्वरूप आप घर से निकलकर बारह वर्ष तीर्थ-स्थानों में भ्रमण करते रहे। भ्रमण के इसी क्रम में आपको महात्मा 'पूर्णानन्दजी' से भेंट हो गई। ये तत्कालीन योगियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे।[३] उनसे योग की शिक्षा प्राप्त कर अपने ननिहाल-ग्राम के निकट ही 'गुंडी' नामक स्थान में रहने लगे। आपके घरवालों ने वहीं आपके लिए एक मठ बनवा दिया, जहाँ आपकी स्त्री भी जाकर भगवद्भजन करने लगी। धीरे-धीरे आपका सारा परिवार वहीं रहने लगा। आपके चार पुत्र हुए—गोपाल ओझा, परशुराम ओझा[४], ऋतुराज ओझा और कपिल ओझा।

आप एक सिद्ध संत थे। आपके यौगिक चमत्कार की अनेक किंवदन्तियाँ हैं। आप १८८५ वि० (१८२८ ई०) में परलोक सिधारे। आपके सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ आज भी प्रचलित हैं।[५]

आप एक सुकवि थे। आपने एक सतसई की रचना की थी, जो अब अप्राप्य है। आपके रचे फुटकर १८०० पद आपके वर्त्तमान वंशधर श्रीरघुवीरनारायण ओझा के पास हैं। इनमें खड़ीबोली के अतिरिक्त भोजपुरी के भी पद हैं।

उदाहरण

(१)

सरद चन्द आनन्द पूरन बदन इव रघुनाथ।
सुक उडगन सरस कुण्डल स्रवन सुर गुरु साथ॥
मोर मुकुतन मनिन झलकत सुभगतन छविछाये।
मनहुँ रवि ससि सकन्द उडुगन मिलि जमुनि जल आये॥
भाल लाल विशाल झलकत तिलक सुभग सुदेस।
मनहुँ छवि शृंगार सोभा प्रकट कीन्हों वेस॥

---

१. 'साहित्य' (वही, जुलाई १९५४ ई०), पृ० ७८।

२. श्रीदुर्गाशंकरप्रसादसिंह इनका नाम चिन्तामणि ओझा बतलाते हैं। देखिए—भोजपुरी के कवि और काव्य (वही), पृ० १०२।

३. इनका आश्रम शाहाबाद के 'कर्जा' नामक गाँव में, गंगा-तट पर था।

४. इनके वंशज आज भी 'गुण्डी' ग्राम में बसे हुए हैं।

५. इस प्रकार की कुछ घटनाओं के लिए देखिए—'भोजपुरी के कवि और काव्य (वही), पृ० १०२-३।

भौंह आयत सुभरूसर के बने युगल कमान।
नैन अम्बुज बान तीछन धरै मनसिज तान॥
अधर अरुन सुवेस नासा बिम्बफल मुख कीर।
दसन दाड़िम-बीज से कहत मानिक जीर॥[1]

(२)

ताल झाल मृदंग खांजड़ी गावत गीत हुलासा रे।
कबहूँ हंसा चले अकेला कबहीं संगी पचासा रे।
गेंठी दाम न खरची बाँधे राम नाम के आसा रे।
रामचन्द्र तोरे अजब चाकरी रामेश्वर बिस्वासा रे॥[2]

लक्ष्मीनाथ परमहंस[3]

महात्मा साहेबरामदास के उपरान्त मिथिला के सबसे बड़े योगाभ्यासी महापुरुष के रूप में आपकी गणना होती है। कहते हैं, आपके बाद मिथिला में आपके सदृश कोई महात्मा नहीं आविर्भूत हुआ। काव्य-कला की दृष्टि से भी आपका स्थान मैथिली-साहित्य में विद्यापति, गोविन्ददास, उमापति आदि कवियों के उपरांत ही माना जाता है।

कविता में आपके नाम 'लक्ष्मीनाथ गोसाईं', 'लक्ष्मीपति', 'लखन', 'लछन' आदि मिलते हैं।

आपका जन्म सन् १७८८ ई० में, सहरसा जिले के पास परसरमा नामक ग्राम में हुआ था।[4] आपके पिता का नाम बच्चा झा था। उपनीत होने के पूर्व जब आप पिता की आज्ञा से गौ चराने जंगल में जाते थे, तब वहाँ विनोदार्थ हठयोग की क्रियाएँ किया करते थे। इससे आपका जन्मजात योगी होना सिद्ध होता है। यज्ञोपवीत होने के बाद आप 'दुहबी-महिनाथपुर' के पं० श्रीरत झा के पास विद्याध्ययन के लिए भेजे गये। वहाँ आपने ज्यौतिष और वेदान्त का अध्ययन किया। कुछ दिनों में आप एक प्रसिद्ध वेदान्ती हो गये।

विद्याध्ययन के उपरान्त आपका विवाह 'कहुआ' ग्राम (दरभंगा) के सुखदत्त (या सोखादत्त झा) की पुत्री से हुआ। इसके दो वर्ष पश्चात्, पत्नी के गर्भवती होने पर लगभग २७ वर्ष की अवस्था में, आप घर से विरक्त होकर नैपाल की ओर चल पड़े। भगवान् पशुपतिनाथ के दर्शन कर आप इधर-उधर भ्रमण करने लगे। एक दिन अकस्मात् एक पहाड़ी गुफा में, गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा के लम्बानाथजी से आपकी भेंट हो गई। उनसे आप ९ वर्षों तक योग की शिक्षा लेते रहे। वहाँ से लौटकर आप

---

१. 'साहित्य' (वही), पृ० ८०-८१।
२. भोजपुरी के कवि और काव्य (वही), १०४।
३. आपके विस्तृत जीवन-परिचय के लिए देखिए—डॉ० ललितेश्वर झा द्वारा सम्पादित 'गोस्वामी लक्ष्मीनाथ की पदावली' की भूमिका।
४. पं० छेदी झा 'द्विजवर' (बनगाँव, सहरसा) के द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

दरभंगा जिले के 'चरबरल-रहुआ' ग्राम में पहुँचे। वहीं रहकर आपने योग-सिद्धि प्राप्त की। सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् बनगाँव में एक मन्दिर और एक कुटी बनाकर रहने लगे। बनगाँव के अतिरिक्त आपने फटिकी[1], तारागाँव, महिनाथपुर, लखनौर और परसरमा आदि स्थानों में मन्दिरों का निर्माण कराया। आसपास के सभी राज-रियासतों में आपका बहुत मान था। आपके प्रधान-शिष्यों में शकरपुरा-स्टेट के अधिपति और एक प्रसिद्ध ईसाई सज्जन श्रीजॉन[2] भी थे। आपकी मृत्यु लगभग ८५ वर्ष की आयु में १८७२ ई० (१२८० फसली, अगहन सुदी ५) में ५ दिसम्बर को हुई।[3]

आप एक भक्त के अतिरिक्त एक सुकवि भी थे। नित्य नये-नये गीत और पद्य बनाते और उन्हें संगीतज्ञों द्वारा अपने मन्दिरों में गवाते थे। इन रचनाओं पर सूर और तुलसी का विशेष प्रभाव ज्ञात होता है। आपकी लिखी छोटी-बड़ी दस पुस्तकें हैं—(१) श्रीराम-गीतावली, (२) श्रीकृष्ण-गीतावली, (३) श्रीकृष्ण-रत्नावली (अनुवाद), (४) राम-रत्नावली, (५) अकारादि-दोहावली, (६) भाषा-तत्त्वबोध (अनुवाद), (७) गुरु चौबीसा, (८) प्रश्नोत्तर-माला (अनुवाद), (९) योग-रत्नावली (१०) पंच-रत्नावली[4]। इन रचनाओं की भाषा मुख्यत: खड़ीबोली, अवधी, व्रजभाषा और मैथिली है।

उदाहरण

(१)

नाथ हो कोटिन दोष हमारो।
कहाँ छिपाऊँ, छिपत ना तुमसे, रवि ससि नैन तिहारो।।टेक।।
जल, थल, अनल, अकास, पवन मिलि, पाँचो है रखवारो।
पल-पल हेरि रहत निसि बासर तिहुँ पुर साँझ सकारो।।
जागत, सोवत, ऊठत, बैठत करत, फिरत व्यवहारो।
रहत सदा सँग, साथ न छोड़त, काल पुरुष बरियारो।।
बाहर भीतर बैठि रह्यो है, घट-घट बोलनि हारो।
दुख-सुख पाप-पुन्य के मालिक, निज जन जानि उबारो।।
कहाँ लाज करि नारि नाह सों जो देखत तन सारो।
'लच्मीपति' के स्वामी केशव भव-नद पार उतारो।।[5]

१. यह स्थान दरभंगा के अन्तर्गत झंझारपुर-स्टेशन से ७-८ मील की दूरी स्थित है। कहते हैं, यहीं आपका निर्वाण हुआ। आज भी यहाँ आपकी पूजा की सामग्री, पलंग, पादुका आदि सुरक्षित हैं।
२. ऐसा परिचय इसी ग्रन्थ में यथास्थान मुद्रित है।
३. कुछ लोग आपका मृत्युकाल सन् १८८२ ई० बतलाते हैं।
४. इनमें से कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तकों में वर्णित विषयों के लिए देखिए—गोस्वामी लक्ष्मीनाथ की पदावली (डॉ० ललितेश्वर झा, प्रथम सं०, १९५७ ई०), पृ० ५-१२।
५. बिहार की साहित्यिक प्रगति (बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रथम से पच्चीसवें अधिवेशन तक के सभापतियों का भाषण, श्रीराजाबहादुर कीर्त्यानन्दसिंह के भाषण से सन् १९५६ ई०), पृ० १५९।

(२)

जागो कान्ह कमल दोउ लोचन मैं तेरी बलि जाई।
है हूँ हरखि सरोरुह लोचन मुख से वसन दुराई।
मुख पंकज देखन के कारण द्वारे भीड़ भरि आई।
ब्रह्मा शेष महेश शारदा नारद वीणा बजाई।
करत कोलाहल ग्वाल बाल मिलि दामोदर गुण गाई।
बछरू छीर पीवत नहिं तुम विनु कहत यशोदा माई।
भोर भए रजनीचर भागे शशि हित मन मलिनाई।
हरषित भ्रमर कमल पट खूले दिनकर रथ अरुनाई।
उठे श्यामसुन्दर मनमोहन भैया हरष जनाई।
लक्ष्मीपति सब दर्शन पाई आनन्द उर न समाई।[1]

(३)

मोहन बिनु कौन चरैहैं गैया।
नहिं बलदेव नहीं मनमोहन रोवहिं यशोदा मैया।
को अब भोरे बछरू खोलिहैं को जैहैं गोठ दुहैया।
एकसरि नन्द बबा क्या करिहैं दोसरो न काउ सहैया।
को अब कनक कटोरा भरि भरि माखन चीर लुटैया।
को अब नाचि-नाचि दधि खैहें को चलिहैं अधपैया।
को अब गोप सखा संग खेलिहैं को ब्रज नागरि हँसैया।
को गोपियन के चीर चोरैहैं को गहि मुरली बजैया।
को अब इत उत तैं घर ऐहैं बबा-बबा गोहरैया।
लक्ष्मीपति गोपाल लाल गुण सुमरि-सुमरि पछतैया।[2]

(४)

लखि साओन केर आओन।
वृन्दावन तरुवर सभ फूलल, लागए कुञ्ज सोहाओन।।
गुञ्जए अलि घन-नननन-ननन-हनहन, मत्त मधुर रस पाओन।
चलए पवन सन-ननन-ननन, सुमनक वास लोभाओन।।
झननन-झननन झिल्ली झनकए, दादुर दरद बढ़ाओन।
पिहुआ पिअ पिअ पिअ पिअ पिअकहि, कोकिल कल कुहुकाओन।।
गोपी गोप सङ्ग लए मोहन, रास रचल मगभाओन।
तन-नन-ननन मुरली हेरए, सुनि मेघवा झरिलाओन।।
झम्प झम्प झुकि झुकारे नारे नारे, झलकत गहन रिझाओन।
'लक्ष्मीपति' नाचए यदुनन्दन प्रेम प्रवाह वहाओन।।[3]

---

१. गोस्वामी लक्ष्मीनाथ की पदावली (वही), पृ० ६-७।

२. वही, पृ० ३०।

३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ८३, पृ० ४८।

लाल झा

आप दरभंगा जिले के मँगरौनी-ग्रामनिवासी[१] और मिथिला के महाराज नरेन्द्रसिंह (सन् १७४४-६१ ई०) के आश्रित थे।

आपने व्रजभाषा में 'कन्दर्पीघाट की लड़ाई' और मैथिली में 'गौरी-स्वयंवर-नाटक'[२] की रचना की थी। प्रथम पुस्तक में आपने अपने आश्रयदाता के युद्ध का वर्णन किया है। आपके लिखे बहुत-से 'सोहर' भी लोक-कंठ में मिलते हैं।

उदाहरण

(१)

हे हर कोन हरल मोर नाह।
अछल अभेद भेद नहि मरमहुँ से नहि मन अवगाह।
पल विसलेख पहर साओमानिअ कोन परि होयत निवाह॥
शोक कलाप दाप दह मानस उर उपजावए धाह।
विहरक अवधि अबूह पड़ल छीअ चहुदिश लागु अथाह॥
मानक आधि वेआधि धाधि बरू, रंग रसभ गेल दूर।
बिहि भेल मोर कौन निरदय मोर हरलहिं शिरक सिंदूर॥
कुसुमक वान जहाँ न जकर वश सब गुन आगर कन्त।
से मोर साथ हाथ धए लाओल की काम बन्धु वसन्त॥
सुकवि लाल कह धैरज धय रहु हरिसुत होएत अनंग।
ओ मनमथ रति तोहि पलटि पुनु होएत ने विधि संग॥[३]

(२)

जय हरिगमनी जय हरिगमनी, देथु अभयवर हर रमनी।
अति विकराल कपाल गृम शोभित, कचतर झलक मनी॥
लम्बित कचतर छपित छपाकर, भुजपर भूषण भुजङ्गफनी।
खप्पर वर करवाल ललित कर, शुम्भ निशुम्भ असुर दलनी॥
रिपु भट बिकट निकट झटपट कए, धए पटकल चटपट अवनी॥
कुपित नयन पर नयन विराजित, अरुण-अरुण युग कमल सनी॥
लह लह रसन दसन दाड़िम बिज, निज गल जनमल दुख समनी॥
सुर नर मुनि हरखित सभ भुलि हरि, हर सुर के तोहरि सनी॥
रक्तबीज महिषासुर मारल, असुर सँहारल समर सुनी।
हमर कुमति मति तुअ पद पथ गति, विसरि सुजन मोहि एको मनी।
जगत जननि पद पङ्कज मधुकर, सरस 'सुकविलाल' भनी॥[४]

❀

१. मिथिला-तत्त्व-विमर्श (वही), पृ० ५६।
२. इस नाटक की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति पटना-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है। मिश्रबन्धुओं ने इसका नाम 'गौरीपरिणयनाटक' बतलाया है। देखिए—मिश्रबन्धु-विनोद (वही, द्वितीय भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ८१६।
३. A History of Maithili Literature (वही), P. 320.
४. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त।

वंशराज शर्मा 'वंशमनि'

आप वीरभानपुर (चनपुर-भभुआ, शाहाबाद) के निवासी थे।[१] आपके पिता का नाम बुलाकीराम शर्मा था।[२]

आपने 'रस-चन्द्रिका'[३] नाम से 'बिहारी-सतसई' की व्रजभाषा-टीका, फाल्गुन कृष्ण ६, रविवार, १८५० वि० (१७९४ ई०) में, की थी। टीका १२ अध्यायों में विभक्त और सरस कवित्त-सवैयों में है।

उदाहरण

(१)

ये सषि सुन्दर स्याम की री, यह मूरति मोहिनी मोहि लगै।
नेक निरेखत ही न बनै पै तऊ जग अद्भुत जोति जगै।
'वंश' उपाउ अनेक किये तै, छुपाये छुपै न कहीं सो उगै।
चित अंतरऊ हरि राषिये जो प्रतिबिंबि तऊ जग जोति जगै।[४]

(२)

चकृत भयो है चित जकि सी रही है बाल हालऊ न मो पै कह्यो जात वाके तनके।
बूझे ही अनेक बार निपट समीप ह्वै कै बोलति है मृदुल बड़े बार गनके।
जानी नहिं जात मो पै कहाँ धौं भयो है आली लागी डीठि काहू की है कैंधों वाके मन के।
कैंधों काहू डीठि हूँ पै अटकि रही है डीठि, बूझियत 'वंशमनि' वाके वोलपन के।[५]

※

---

१. श्रीउदयशंकर शास्त्री (काशी) द्वारा प्रेषित सूचना के आधार पर।

२. नगर चयनपुर के निकट वीरभानपुर ग्राम।
ताको पति सुत लोकमनि विसद बुलाकी नाम।
ताके सुत भए तीनि पुनि नंदरूप जसरूप।
मानिकचंद प्रसिद्ध जग वंश राज गुन भूप।
रसिक हेतु रस चंद्रिका कियो स्वमति अनुहारि।
छमिहो चूक परी जो कछु लैहो स्वजन सुधारि॥
—'व्रजभारती' (त्रैमासिक, कृष्णदत्त वाजपेयी, फाल्गुन २०११ वि०), पृ० ५०।

३. यह टीका उक्त शास्त्रीजी के पास ही है।

४. 'व्रजभारती' (वही), पृ० ५१। मूल—
मोहन मूरति श्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिंबित जग होइ॥

५. वही, पृ० ५३। मूल—
चकी जकी सी ह्वै रही, बूझे बोलति नीठि।
कहूं डीठि लागी लगी, कै काहू की डीठि॥

वृन्दावन

आपका जन्म बारा-ग्राम (शाहाबाद) में माघ शुक्ल चतुर्दशी, १८४८ वि० (१७९२ ई०) में हुआ था।[१] आपके पिता का नाम 'धर्मचन्द' और माता का 'सिताबी' था। बारह वर्ष की अवस्था में आप अपने पिता के साथ काशी चले गये। संयोगवश वहीं आपका विवाह एक सम्पन्न परिवार में 'रुक्मिणी' नामक कन्या से हो गया, और आप वहीं एक सरकारी खजांची के पद पर काम करने लगे। आपके दो पुत्र हुए—अजितदास[२] और शिखरचन्द। एक बार आपने 'ईस्ट-इंडिया-कम्पनी' के एक अँगरेज-किरानी को अपनी ससुराल की टकसाल देखने से रोका था, जिस पर वह बहुत क्षुब्ध हुआ। पीछे जब वह काशी के जिलाधीश के रूप में नियुक्त हुआ, तब कोई अभियोग लगाकर उसने आपको जेल भेज दिया। किन्तु कुछ ही दिनों के बाद जब उसने कारागार में जाकर आपको ईश्वर-प्रार्थना में लीन देखा, तब आपको मुक्त कर दिया।[३] आप १९१५ वि० (१८५८ ई०) में परलोक सिधारे।

आपने पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही रचना करना आरम्भ कर दिया था। जैनधर्मावलम्बी होने के कारण आपकी अधिकांश रचनाएँ जैनधर्म-संबंधी हैं। आप आशुकवि थे। आपकी प्रायः सभी रचनाएँ व्रजभाषा में हैं। यों, खड़ीबोली में भी आप रचनाएँ करते थे। आपकी रचित पुस्तकें, उनके विषय और उनके रचना-काल इस प्रकार हैं—(१) चौबीसी-पाठ[४] (२४) तीर्थंकरों की स्तुति, (१८७५ वि०), (२) तीस-चौबीसी-पाठ (स्तुति, १८७६ वि०), (३) छन्द-शतक (सौ प्रकार के छंद बनाने की विधि, १८९८ वि०), (४) प्रवचन-सार (कुंदकुंदाचार्य के प्राकृत-ग्रंथ का पद्यानुवाद, १९०५ वि०), (५) अर्हंतपासा-केवली (शकुनग्रंथ, १९०५ वि०)। आपकी स्फुट कविताओं का संग्रह-ग्रंथ 'वृन्दावन-विलास' है। इसके अतिरिक्त १८९१ वि० में लिखा हुआ एक 'जैनछन्दावली' नामक ग्रंथ भी आपका बतलाया जाता है।[५]

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, द्वितीय-भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ८७२।

२. इन्हींको पढ़ाने के लिए आपने एक छन्दोग्रन्थ की रचना की थी। ये एक बड़े ही सफल कवि थे। इनका विवाह आरा (शाहाबाद) में हुआ था, जहाँ आकर ये बस गये। इनके वंशज इस समय आरा में ही हैं।

३. आपकी यह प्रार्थना 'संकट-मोचन-स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

४. कहते हैं, इसकी रचना आपने एक रात में ही कर डाली थी।

५. आपने गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित-मानस' की भाँति एक 'जैन रामायण' भी लिखने की इच्छा की थी, किन्तु आपकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। आपके आदेश पर आपके पश्चात आपके पुत्र अजितदास ७१ सर्गों तक उक्त ग्रंथ की रचना कर असमय काल-कवलित हो गये। इनके पुत्र हरिदास ने उक्त ग्रंथ को पूरा करना चाहा, किन्तु दुर्भाग्यवश वे भी वैसा नहीं कर सके।

उदाहरण

(१)

बेजान में गुनाह मुझसे बन गया सही,
ककरी के चोर को कटार मारिये नहीं।
आनन्द कंद श्री जिनंद देव है तुही,
जस बेद औ पुरान में परमान है यही।
केवली जिनेश की प्रभावना अचिंत मित,
कंज पै रहैं सु अंतरिच्छ पाद कंजरी;
मूस औ बिडाल मोर व्याल बैर टाल-टाल,
हैं जहाँ सुमीत ह्वै निचीत भीत भंजरी।
अंगहीन अंग पाय हर्ष को कहा न जाय,
नैनहीन नैन पाय मंजु कंज खंजरी,
और प्रातिहार्य की कथा कहा कहै सुबृन्द
शोक थोक को है सुअशोक पुष्प मंजरी ।।[1]

(२)

जो आपनो हित चाहत है जिय तौ यह सीख हिये अवधारो।
कर्मज भाव तजो सबही निज आतम को अनुभौ रस गारो।।
श्री जिनचंद सों नेह करो मित आनँद कंद दसा बिसतारो।
मूढ़ लखै नहिं गूढ़ कथा यह गोकुल गाँव को पैंडो ही न्योरो ।।[2]

वेणीदत्त झा

कविता में आप अपना नाम केवल 'दत्त' रखा करते थे।

आप दरभंगा जिले के 'हाटी' ग्रामनिवासी थे।[3] मिथिला के राजा माधवसिंह (सन् १७७६-१८०७ ई०) आपके भानजा थे।

मैथिली में रचित आपकी कुछ कविताएँ लोक-कंठ में सुरक्षित हैं।

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद (वही), पृ० ८७३।

२. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (कामताप्रसाद जैन, प्रथम सं०, १९४० ई०), पृ० १९४।

३. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ८४।

उदाहरण

(१)

सून भवन नवि नागरि मदन-उजागरि रे।
पहिल वयस ऋतु कादरि, निशि घन वादरि रे।।
गाढ़ गहल पहु रहि रहि कुच युग गहि-गहि रे।
कान कलप कत नहि नहि, शिव शिव कहि कहि रे।।
वालहिं वसन पहु मोचल, किछु नहि सोचल रे।
मदन महीपति सोचल, जत मन रोचल रे।।
केश पाश शिर छूटल, कर चूड़ि फूटल रे।
उरज हार भल टूटल, हरि सुख लूटल रे।।
'दत्त' नवल रस गाओल, रसिक बुझाओल रे।
रसमय विश्रनि डोलाओल, धनि सुख पाओल रे।।[१]

(२)

कतए गमओलहुँ राति आँखि कोना रङ्गलहुँ रे।
काजर देलहुँ भौहँ सिन्दुर कोना अनलहुँ रे।।
विनु गुन माल हृदय अछि, अछि कत वेणी रे।
पट अछि अधिक मलीन, अधिक सुख श्रेणी रे।।
घुरि घर जाउ ओतए चल, जतए निशि रहलहुँ रे।
हमर छमव अपराध, 'दत्त' कवि कहलहुँ रे।।[२]

❊

वेदानन्दसिंह

आप बनैली-राज्य (पूर्णिया) के अधिपति थे।[३] आपके पिता का नाम चौधरी दुलारसिंह था, जिन्होंने नैपाल-युद्ध में ब्रिटिश-सरकार की सहायता कर 'राजा' की उपाधि प्राप्त की थी। आपके पूर्वजों में पं० गदाधर झा[४] बड़े विद्वान् व्यक्ति थे। आपके पौत्र राजा पद्मानन्दसिंह तथा राजा कीर्त्यानन्दसिंह अच्छे साहित्यिक हुए। सन् १८५१ ई० में आप परलोक सिधारे।

आपने हिन्दी में 'वेदानन्द-विनोद' नामक एक प्रामाणिक वैद्यक-ग्रंथ लिखा था। आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

❊

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ७८, पृ० ४५-४६।
२. वही, पद सं० ७९, पृ० ४६।
३. रजत-जयन्ती-स्मारक-ग्रंथ (वही), पृ० १२८।
४. इन्हीं की विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर दिल्ली के पठान-सम्राट् गयासुद्दीन तुगलक ने कुछ गाँव जागीर में दिये थे। इनकी दसवीं पीढ़ी में चौधरी परमानन्द झा हुए, जिन्होंने आठ-नौ लाख वार्षिक आमदनी की रियासत कायम कर पूर्णिया जिले के बनैली-ग्राम में अपनी राजधानी बसाई।

व्रजनाथ

मैथिल कवि पं० नन्दन झा[1] के प्रपौत्र होने के कारण आप दरभंगा जिले के उजान-ग्रामवासी थे ।

मैथिली में रचित आपकी कुछ काव्य-रचनाएँ यत्र-तत्र प्राप्त होती हैं ।

उदाहरण

चलु सखि ! चलु सखि ! परिछनिहारि । चन्द्रवदनि धनि सुदिन विचारि ॥
वरगुण निरखि परिछु ब्रजनारि । परम मनोहर कृष्ण मुरारि ।।
हँसि हँसि वचन कहू दुइ चारि । फाँस लगाए नाक धए नारि ।।
चीतक हार गरौं देल डारि । चतुरा सभ मिलि परिछन हारि ।।
आगु पाछु भेलि जत शुभ नारि । वाम दहिन दए पढ़इत गारि ॥
भन 'ब्रजनाथ' सकल निरधारि । राज दुलार दुलहि सुकुमारि ॥[2]

❀

शंकरदत्त

आप पटना-निवासी[3] और राधावल्लभ-सम्प्रदाय के उपासक थे ।

आपने संस्कृत और हिन्दी में कई ग्रंथों की रचना की थी । आपकी हिन्दी-रचनाएँ इस प्रकार हैं—(१) हरिवंश-प्रशस्ति (२) हरिवंश-हंस-नाटक (३) सद्‌वृत्ति-मुक्तावली तथा (४) राधिका मुख-वर्णन (काव्य) । आपकी रचना का उदाहरण उपलब्ध नहीं हुआ ।

शम्भुनाथ त्रिवेदी

आप चम्पारन जिले के गोविन्दगंज थाने के ममरखा-ग्राम-निवासी थे ।[4] आपके पिता का नाम श्रीअहिनाथ त्रिवेदी था । आपके पूर्वज कन्नौज की ओर से यहाँ आये थे आर बेतिया राज-दरबार में उन्हें आश्रय मिला था ।

आप संस्कृत और हिन्दी के एक मर्मज्ञ विद्वान् एवं कवि थे । आपने अनेक संस्कृत-स्तोत्रों की रचना की थी । कई संस्कृत-ग्रंथों का आपने हिन्दी-अनुवाद भी किया था । इन्हा में एक 'बहुला-कथा' भी है ।[5] इसकी भाषा पर भोजपुरी का विशेष प्रभाव है ।

---

१. इनका परिचय इसी ग्रंथ में यथास्थान मुद्रित है ।

२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ४४, पृ० २४ ।

३. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, द्वितीय-भाग, द्वितीय सं०, १८८४ वि०), पृ० ७८० ।

४. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० २२ ।

५. इसकी एक जीर्ण-शीर्ण और खण्डित प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के 'चौबे-संग्रह' में सुरक्षित है । इसकी रचना १८५५ वि० की कार्त्तिक कृष्ण द्वादशी को पूरी हुई थी ।

उदाहरण

हमरा ना जीव कै लोभा। तुम्ह कस बोलहु व्याघ्र असोभा।।
तोहरे मन यौ बाहे चोषा। सत्य कहावहु हमसे चोषा।।
सत्य मेदनी सत्य अकासा। सत्यहु ते रवि करहि प्रकासा।।
सत्य छाडि मोहि आन न भाई। सत्य निसाकर अमृत वाई।।[१]

※

शिवनाथदास

आप सारन जिले के तेलपा-मठ में निवास करते थे।[२] आप एक दरियापंथी साधु थे। आपने उक्त मठ में ही रहकर १८८५ वि० की पौष कृष्ण पंचमी को 'शिवनाथ-सागर'[३] नामक ग्रंथ की रचना पूरी की थी। इस ग्रंथ में आपने दरियासाहव का नाम कई बार बड़ी श्रद्धा के साथ लिया है और उन्हें अपना सत्-गुरु तथा अपने को उनका दास बतलाया है। इसकी भाषा विशुद्ध और परिमार्जित नहीं है। इसे भोजपुरी-प्रभावित सधुक्कड़ी भाषा कह सकते हैं।

उदाहरण

प्रथमहि बन्दौ सतपुरुष पुराना। जाकर जाप करहिं भगवाना।
तब पगु बन्दौ अलख जगदीशा। विमल नाम मनि पावौं पद ईशा।।
ब्रह्मा विष्णु बन्दौं गौरी महेशा। बन्दौ गणपति आदि गणेशा।
बन्दौ रामकृष्ण जगन्नाथा। भक्त वत्सल भक्ते ही सनाथा।।[४]

※

श्रीकान्त

आपका नाम 'गणक' भी मिलता है।

आप मिथिला-निवासी और मिथिला के राजा नरेन्द्रसिंह (सन् १७४५-६० ई०) के आश्रित कवि थे।[५]

आपका एक नाटक 'कृष्ण-जन्म' मिलता है। इसके अतिरिक्त आपने मैथिली में कुछ स्फुट पदों की भी रचना की थी, जो विभिन्न संग्रहों में प्राप्त होते हैं।

---

१. परिषद् में संगृहीत 'बहुला-कथा' की हस्तलिखित प्रति से।
२. 'साहित्य' (वही, जुलाई १९५२ ई०), पृ० ३४।
३. इस ग्रंथ में आपने ऋषि कुम्भज और परब्रह्म परमेश्वर तथा कई व्यक्तियों के वार्त्तालाप के रूप में निर्गुण-उपासना, योग, नाम-स्मरण, साधु-सेवा, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि विषयों पर विवेचन किया है। स्थान-स्थान पर शीर्षक में कुम्भज-वचन और साहब-वचन आदि उल्लिखित हैं। ग्रंथ-रचना के लिए दोहा, चौपाई, सोरठा, नराच और साखी छन्दों का आश्रय लिया है। इसकी हस्तलिखित प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के प्राचीन ग्रंथशोध-विभाग में सुरक्षित है।
४. परिषद् में संगृहीत हस्तलिखित 'शिवनाथ-सागर' से।
५. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पृ० ८१।

उदाहरण

(१)

मालति ! न करु विमुख अलिराज ।
जँ अभिलाष लाख तोहें विसरल, तइओ ने तेजए समाज ।।
वारि कमल वन मधुकर निअ मन वास पास ओझराए ।
भेद पिशुनकर, तें केओ परिहर, प्रेम महातरु लाए ।।
हुनकाँ तोहरि सनि, बहुत लता धनि ! तोहरा हुनिसन एक ।
तसु अपमान, आन कह अनुचित, किछु नहि तकर विवेक ।।
चान मलिन भेल, अरुण उदय लेल, पङ्कज दल परगास ।
तुअ अनुगत भए, अधिक आस धए, मधुलिह भमए उदास ।।
विलसि करए रस, नेह तकर वश, सुकवि 'गणक' इहो भान ।
सिंह नरेन्द्र नृपति, गुणिजन-गति, रसबिन्दुक रसजान ।।[१]

(२)

भाविनि ! बुझल तोहर अनुराग ।
दुरजन हँस, पुरजन देअ दुरयश, कि कहब अपन अभाग ।।
करु परसन हँसि, सुललित मुख शशि न करसि हृदय कठोर ।
अपन शपथ सुनु, तुअ दरसन विनु, परम विकल मन मोर ।।
कएल न कबहुँ, सबहुँ मोहि बरजल, अरजल तोहर सिनेह ।
एहन करम मोर, कि देब दुषन तोर, भाव न धन-जन गेह ।।
शीतल मलय, पवन बहि बीतल, भमर भमए वन गेल ।
तारक शशि कर तिमिर तिरोहित, रोहित दिनमणि भेल ।।
अवसर अरथित, न करह दुरथित, हेरि पुरह हितकाम ।
'गणक' चतुर भन, परवश कएमन, परिदेवन परिणाम ।।
मिथिलापति गुनिगन निज जन गति पारिजात-अनुरूप ।
बूझ नरेन्द्र रसिक रसविन्दुक मेदिनि-मदन सरूप ।।[२]

*

श्रीपति[३]

आप मिथिला-निवासी थे ।[४] आपने कालिदास के 'रघुवंश' की टीका लिखी थी । इससे अधिक आपका कोई परिचय नहीं मिला ।

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ६५, पृ० ३७-३८ ।

२. वही, पद सं० ६६, पृ० ३७-३८ ।

३. डॉ० जयकान्त मिश्र ने मिथिला में, इस नाम के दो कवियों के, विभिन्न कालों में होने का पता दिया है ।

४. A History of Maithili Literature (वही), P. 415-16.

उदाहरण

कनकलता सन तनुवर धनिआ, चिकुर रचल जलधर बिनु पनिआ।
नहि कचभार सम्हारए बेरि बेरि लचकय रे की।
अमल कमल दल सरस नयनमा, चातक पीक मधुर सुर बैनमा।
चाहए राहु गरासए विनु दुखे छाड़ए रे की।[1]

※

सदलमिश्र

आप हिन्दी की वर्त्तमान गद्य-शैली के प्रवर्त्तकों में प्रमुख थे। यों आपके बहुत पहले भी हिन्दी-गद्य की परम्परा मिलती है। किन्तु उस गद्य की भाषा आज की गद्य-भाषा से बहुत-कुछ भिन्न थी। आपके समकालीन गद्यकारों में भी केवल आपके गद्य की ही भाषा ऐसी हुई, जो पुरानी होती हुई भी वर्त्तमान खड़ीबोली के बहुत निकट रही। उस युग में आपके गद्य की भाषा लोगों को विशेष रुची और समकालीन तथा परवर्त्ती लेखकों ने उसी को अपनाया।

आपका जन्म अनुमानत: १७६८ ई० में, आरा नगर के मिश्रटोला मुहल्ले में हुआ था।[2] आपके पूर्वज शुकदेवमिश्र शाहाबाद जिले के 'धुपडीहा' ग्राम से 'भदवर' (शाहाबाद) आये, जहाँ आप तथा आपके वंशज बहुत दिनों तक रहे।[3] इतिहास-प्रसिद्ध बाबू कुँवरसिंह के समय में ये लोग आरा आकर बस गये।[4]

---

१. A History of Maithili Literature (वही), P. 416.

२. ये भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त और एकान्त प्रेमी थे। किसी कारणवश धुपडीहा (शाहाबाद) ग्राम के लोगों से इनकी अनबन हो गई और ये भदवर (शाहाबाद) चले आये।

३. नासिकेतोपाख्यान (सदलमिश्र, सं० श्यामसुन्दरदास, तृतीय सं०, १९९५ वि०, भूमिका), पृ० १-२। आपके पौत्र रघुनन्दनमिश्र को मैंने स्वयं देखा था। उस समय (सन् १९१८-२० ई०) वे अत्यन्त वृद्ध थे। लगभग ७५ वर्ष की अवस्था रही होगी। उन्होंने अपने घर के अन्दर मुझे ले जाकर वह स्थान दिखाया था, जहाँ सदलमिश्र पूजापाठ किया करते थे। उनके एकमात्र सुपुत्र भगवतीमिश्र टाउन स्कूल (आरा) में मेरे विद्यार्थी थे—बड़े प्रतिभाशाली और होनहार—सदलमिश्र की आत्मा के प्रकृत प्रतिबिम्ब-तुल्य। परंतु उन्हीं दिनों माता-पुत्र का देहान्त हो गया, जिससे सदलमिश्र की वंश-परम्परा समाप्त हो गई। सदलमिश्र का वह घर मिश्रटोले की उस पतली गली में था, जिसके पच्छिम छोर पर वैद्यराज पं० ब्रह्मदेवमिश्र का घर है और पूरबी छोर पर विद्वद्वर पं० चक्रपाणिमिश्र का। ये दोनों ही क्रमशः आयुर्वेद तथा साहित्य-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। चक्रपाणिजी के घर के पार्श्व भाग में प्रो० अक्षयवटमिश्र की ससुराल का मकान था। अक्षयवटजी ने ही रघुनन्दनमिश्र से मेरा परिचय कराया था, फिर भगवतीमिश्र के साथ मैं उनके पास प्रायः जाया करता था और वे अपने दादाजी (सदलमिश्र) के विषय में सुनी-सुनाई बातें कहानी की तरह कहा करते थे। —संपादक

४. आपके वंशज १९२० ई० तक आरा में वर्त्तमान थे।

आपके पिता का नाम पं० नन्दमणिमिश्र था। आप तीन भाई थे, जिनमें आपका नम्बर दूसरा था।[1] आपके वंशवृक्ष में ही हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा का नाम आता है।

आप एक प्रखर प्रतिभाशाली व्यक्ति और संस्कृत-साहित्य के प्रकांड विद्वान् थे। अनेक राजदरबारों में अपने पाण्डित्य का परिचय देते हुए आप लगभग चौबीस वर्ष की अवस्था में कलकत्ता पहुँचकर फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रिंसिपल जॉन गिलक्रिस्ट से मिले। आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर उन्होंने कॉलेज के एक हिन्दी-अध्यापक के पद पर आपकी नियुक्ति कर ली। लगभग तीस-पैंतीस वर्षों तक कलकत्ता रहकर आप घर लौटे, जहाँ आपकी मृत्यु ८० वर्ष की आयु में हुई। आपका मृत्यु-काल अनुमानत: सन् १८४७-४८ ई० माना गया है।

कलकत्ता में, फोर्ट विलियम कॉलेज के 'वर्नाक्यूलर सोसायटी' के अधिकारियों ने हिन्दी-गद्य में पाठ्य-पुस्तकें लिखने का भार आगरा-निवासी लल्लूलालजी के अतिरिक्त आप को भी सौंपा था, जिसके परिणाम-स्वरूप आपने कुछ ग्रंथों का रूपान्तर संस्कृत से हिन्दी और हिन्दी से संस्कृत में किया। संस्कृत से हिन्दी में रूपान्तरित आपकी पहली पुस्तक है 'चंद्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान'।[2] इस प्रकार की आपकी दूसरी पुस्तक है 'रामचरित' या 'अध्यात्मरामायण'।[3] हिन्दी से संस्कृति में किन पुस्तकों का रूपान्तर आपने किया, इसका कुछ पता नहीं चलता। हाँ, १८६७ वि० में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित-मानस' का एक संशोधित-मुद्रित संस्करण आपके नाम पर अवश्य मिलता है।[4]

उदाहरण

(१)

किसी समय बदरिकाश्रम में शौनक आदि ऋषियों ने सूत से पूछा—अब कुछ विशेष हरि का यश आप हमें सुनाइए। तब वे लगे कहने कि एक बेर नारद योगी पर उपकार के लिये सिगरे लोक फिरते फिरते सत्यलोक में जा पहुँचे। तो वहाँ देखा कि मूरति धारण किये चारो दिश वेद खड़े हैं, प्रात:काल के सूर्य का ऐसा वर्ण औ भक्तन को मनभावन फल दायक सकल शास्त्र का सार जाननिहार जगत का नाथ ब्रह्मा सरस्वती को साथ ले बीच सभा में बैठा है और मारकण्डेयादि मुनि बार-बार उसकी बड़ाई कर रहे हैं।

---

१. अन्य भाइयों के नाम थे—बदलमिश्र और सीतारामिश्र।

२. यह पुस्तक बा० श्यामसुन्दरदास के सम्पादन में १६०५ ई० में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से पहली बार प्रकाशित हुई थी।

३. इसकी एक हस्तलिखित अविकलप्रति 'इण्डिया-आफिस लाइब्रेरी' (लन्दन) में है, जिसकी प्रतिलिपि कराकर बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) में मँगाई गई है। परिषद् से आपके दोनों ग्रंथ 'सदलमिश्र-ग्रंथावली' के नाम से प्रकाशित हो रहे हैं।

४. इसकी एक प्रति काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा में है।

तब दूर से देखते ही नारद ने दंडवत किया ओ भक्ति से स्तुति कर हाथ जोड़ विस के आगे जा खड़ा भये कि इतने में अति हर्षित हो मुस्कुरा के ब्रह्मा बोल उठा—ए योगी! तू क्या पूछना चाहता है? मुंह खोल के कह, प्रसन्न होए सब मैं तुझे बताऊंगा।[1]

(२)

सिंधु सुता मुख चन्द्र चकोर, जा लग सिद्धि रहें कर जोर।
विविध रूप होए विघन विदारे, प्रतिपालक सोहैव हमारे॥
जगमग जोति जासु तन लसे, संत जनन के मानस बसे।
आनन्द रूप गजानन बड़े, भक्तन काज रहत जो खड़े॥
नृपति वीर जबते तूँ भए, होत सिंगार जगत कौ नये।
फूल उठी वसुधा हरषानी, धन-धान्यन ते अति अकुलानी॥
घर घर मंगलचार घनेरे, रंग ओ राग करहि बहुतेरे।
सुचित होय नर करें कलोलें, मणि भूषण पहरे अनमोलें॥
रण-अंगन पगु देत तुम्हारे, इंद्रहु हो पर वाहि पुकारे।
थर-थर कांप उठें दिगपाल, निज शस्त्रन धरती मह डाल॥[2]

(३)

तब मुनि से रहा नहीं गया, सो निकट चले आए और देखकर जी में कहा कि हो न हो यह अहल्या है कि द्रौपदी, कि इन्द्र की अप्सरा तिलोत्तमा कहीं से भूल पड़ी। इसके हाथ पाँव के आगे क्या कमल का फूल कि जिनके देखने से तनिक भी नहीं मेरी आँखें तृप्त होती हैं। और चन्द्रमा समान वदन, केहरि कटि मृग का सा चञ्चल नयन बड़ी-बड़ी छाती कि जैसे सोने का दो कलस होय, लाल अधर, तोते की सी नाक कि जिसके नीचे एक तिल कुछ और ही शोभा दे रहा है। इस भाँति रूप देख चकित हो निदान पूछा कि कहो कहाँ से आई हो और क्यों इतनी आतुर हो रोती हो?[3]

(४)

नरक विनासी सुख के रासी हरि चरित्र नहिं गाए।
क्रोध लोभ को नीच संग कर कहो कौन फल पाए॥
त्यजि आचार महा मद माते हृदय चेत में ल्याए।
आतुर ह्वै नारिन के पीछे मानुष जनम गँवाए॥[4]

❀

---

१. परिषद् में सुरक्षित उक्त 'रामचरित' या 'अध्यात्मरामायण' की अविकल प्रतिलिपि से।

२. वही।

३. नासिकेतोपाख्यान (श्यामसुन्दरदास, प्रथम सं०, १९०५ ई०), पृ० १२।

४. वही, पृ० ४६।

सदानन्द

आपका वास्तविक नाम 'चित्रधरमिश्र' था। घर से विरक्त होने पर आपका नाम बदल गया।

चम्पारन जिले के मझौलिया स्टेशन से तीन मील पश्चिमोत्तर दिशा में मिर्जापुर के निकट 'चनबाइन' नामक गाँव के आप निवासी थे।[१] बाल्यकाल में आप अपने गाँव के पास की ही एक पाठशाला (रतनमाला) में पढ़ते थे। कहते हैं, एक दिन अपनी पाठशाला के रास्ते में आपने एक पेड़ के नीचे एक पत्ते में रोटी, मिट्टी के बरतन में पानी तथा उसी के समीप एक पुस्तक पड़ी देखी। आपने पुस्तक पढ़ी तथा जनेऊ उतारकर रख दिया। उसके बाद रोटी खाई, पानी पिया तथा वहीं से विरक्त होकर कहीं चले गये।

आपकी गणना चम्पारन के संतमत के प्रवर्त्तकों में होती है।[२] आपके गुरु के नाम का पता नहीं चलता। आप एक सिद्ध संत के अतिरिक्त एक सुकवि भी थे। कहा जाता है कि आपकी सिद्धि से प्रभावित होकर तत्कालीन बादशाह ने आपको वृत्ति दी थी।[३] आपके सम्बन्ध में कई चामत्कारिक घटनाओं की चर्चा आज भी होती है। आपके शिष्यों में मनसाराम, जीताराम और परपन्तराम प्रसिद्ध सन्त हो गये हैं। आपने जीवित समाधि ली थी।[४]

आपने हिन्दी में बहुत-सी पुस्तकों का प्रणयन किया था, जिनमें से अधिकांश अग्निकांड में जलकर भस्म हो गईं। शेष पुस्तकें, जो भोजपुरी में रचित हैं, चम्पारन के मुसहरवा-निवासी श्रीनरसिंह चौबे के पास हैं।

मँगुराहा (चम्पारन) के श्रीमंकेश्वरनाथ मिश्र का कहना है कि आपकी जो पुस्तकें अग्निकांड में स्वाहा हुईं, उनमें 'ज्ञानमुक्तावली', 'योगांगमुक्तावली', 'ज्ञानस्वरोदय', 'योगांगरत्न' आदि प्रमुख हैं।[५] इनके अतिरिक्त 'भैरोभव', 'जोगीनामा' आदि आपकी पुस्तकों की भी चर्चा मिलती है।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

*

---

१. संतमत का सरभंग-संप्रदाय (वही), पृ० १४५।

२. आपके द्वारा प्रवर्त्तित शाखा के मठ अधिकतर चम्पारन के 'मलाही' और मँगुराहा नामक स्थानों में हैं।

३. इस वृत्ति के दो परवानों की मूल प्रति, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखितग्रंथ अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित है।

४. आपकी समाधि आज भी चम्पारन के 'चनाइनबान' नामक स्थान में है। समाधि पर सुन्दर मंदिर बना है। आपकी समाधि के पास ही आपकी दो क्वाँरी बहनों की भी समाधि है। कहते हैं, ये दोनों आपकी शिष्या ही थीं। इन सभी समाधियों की पूजा तिल-संक्रान्ति के दिन होती है।

५. परिषद् में प्रेषित श्रीमंकेश्वरनाथमिश्र के एक पत्र के आधार पर।

साहबरामदास

आपका वास्तविक नाम 'साहबराम झा' था, किन्तु वैराग्य-ग्रहण के पश्चात् आप 'साहबरामदास' कहलाने लगे। आपकी रचनाओं में आपके नाम के कई रूप मिलते हैं जैसे—'साहबदास', 'साहबजन', 'साहब' आदि।

आपकी गणना मिथिला के चोटी के भक्त-कवियों में होती है।

आप कुसुमौली-ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे।[२] 'प्रीतम' नाम के अपने एकमात्र पुत्र की आकस्मिक मृत्यु हो जाने के कारण पुत्र-शोकवश आप भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त एवं वैष्णव वैरागी हो गये। वैराग्य-ग्रहण के पश्चात् आपने योगिराज बलिरामदास[३] से दीक्षा ली। इन्होंने आपको योग-साधना में सिद्ध कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप आप दो-दो घंटे भगवान् श्रीकृष्ण के आगे समाधिस्थ हो पड़े रहते थे। आपने अनेक तीर्थ-यात्राएँ भी कीं। तीर्थ-यात्रा से वापस आकर भी आप निश्चिन्त न रह सके। मिथिला में ही अनेक स्थानों पर भटकते रहे। इसी कारण मिथिला में आपके कई मठ मिलते हैं। इन मठों में पचाढ़ी[४]-मठ (दरभंगा) विशेष प्रसिद्ध है। आपके सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ आज भी प्रचलित हैं।[५]

आपने कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी लगभग ५०० स्फुट पदों की रचना सन् ११५३ फसली (१७४६ ई०) में की थी।[६] इन पदों पर व्रजभाषा की गहरी छाप है।

---

१. आपके विस्तृत जीवन-परिचय के लिए देखिए—डॉ० ललितेश्वर झा द्वारा सम्पादित और भारत प्रकाशन-मंदिर (लहेरियासराय) द्वारा प्रकाशित, 'साहबरामदास की पदावली' की भूमिका, पृ० १-२६।

२. A History of Maithili Literature (वही), P. 443.

३. ये भी बाल-वैरागी थे और बचपन में ही क्वेटा-स्थित अपना घर छोड़कर निकल पड़े थे। 'मुड़िया-रामपुर' के एक वैरागी महात्मा से दीक्षा प्राप्त कर ये तीर्थाटन करने निकले और जीवन के अंतिम दिनों में सिद्धि प्राप्त कर अपनी जन्मभूमि में एक कुटिया बनाकर रहने लगे। इनकी समाधि आज भी उस स्थान पर विद्यमान है।

४. पचाढ़ी के अतिरिक्त आपके अन्य प्रसिद्ध मठ एकमा, दिगौन, क्वेटा, जमैला और कैथाही में हैं।

५. कुछ प्रसिद्ध किंवदन्तियों के लिए देखिए—साहेबरामदास की पदावली (डॉ० ललितेश्वर झा, प्रथम सं०, १९५५ ई०, भूमिका), पृ० १६-२०।

६. इन पदों के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें प्रथम, जिसमें ४३४ पद हैं, प० चन्दा झा के सम्पादन में यूनियन प्रेस, (दरभंगा) से प्रकाशित हुआ था। दूसरा संग्रह, जिसमें आपके चुने हुए १६३ पद हैं, डॉ० ललितेश्वर झा के सम्पादन में भारत प्रकाशन-मंदिर (लहेरिया-सराय) से प्रकाशित हुआ है।

उदाहरण

(१)

है मेरा मन राजी निस दिन वृदावन के वासी से।
ध्यान धरो हरि चरन मनाओ काम कौन मोरा काशी से।
जनम जनम की प्रीति बनी है मुरलीधर सुखरासी से।
कहि न रहौ मन मन भौ परवश नेह लग्यो अविनासी से।
या ब्रज में उपहास करो कोउ डर नाहि मोहि हासी से।
राजिव नयन रसिक नन्दनन्दन बाँधी प्रेम की फाँसी से।
अब तौ संग कबहि नहिं छुटिहैं यमुना कुंज विलासी से।
एक पलक सगरो निसि वासर विसरै नहि मोहि छाती से।
साहेबदास गुपुत मन हरि के कहिए न आन उपासो से ॥[१]

(२)

लखन आएल रघुनन्दन रे, मारिच मृगमारी।
सून भवन बिनु जानकि रे, बइसल हिय हारी ॥
कलपि पुछथि रघुनन्दन रे, सुनु लछुमन भाई।
आज कहाँ छथि जानकि रे, वन रहलि छपाई ॥
खन खन भवन विलोकथि रे, खन करथि पुछारी।
चन्द्रवदनि धनि बिछुड़लि रे, सिर करतल मारी ॥
पल पल बितय कलप सम रे, जामिनि भेल सेसे।
'साहेबराम' रमाओल रे, चल सीताक उदेसे।[२]

※

हरलाल

आपका जन्म हरिहरपुर (गोपालगंज) ग्राम-स्थित, एक मध्यम-वर्गीय परिवार में १८०१ वि० (१७४४ ई०) में हुआ था। आप बिलकुल अशिक्षित थे, किन्तु स्वाध्याय के बल पर एक विद्वान् संत हो गये।

कहते हैं, चितापुर-मठ के सूरतराम का आपने १८३६ वि० में शिष्यत्व ग्रहण किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में बड़हरवा नामक ग्राम में गंडकी के तट पर एक मठ बनवाकर आप वहीं स्थायी रूप से रहने लगे थे। आपके सम्बन्ध में बहुत-सी चामत्कारिक घटनाएँ चम्पारन में आज भी प्रचलित हैं। आपका निर्वाण १८९६ वि० में हुआ।

सधुक्कड़ी भाषा में रचित आपके कुछ स्फुट पद बड़हरवा-मठ में मिलते हैं।

---

१. साहेबरामदास की पदावली (वही, भूमिका), पृ० १५।
२. A History of Maithili Literature (वही), P. 446.
३. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० ४३।

उदाहरण

भाई रे पिया के खेल कठिनाई
अरध-उरध बिच कमल फुलानी ताहि बिच भौंरा लुभाई।
सिल-सन्तोष विवेक हिये धरि ज्ञान के दीप जलाई।
पाँच के मारि पचीस के बस करि सत्य सून्य मन लाई।
गुरु प्रसाद साधक की महिमा अनहद नाद सुनाई।
कित मुरलीधर कित पीताम्बर नारद बेनु बजाई।
बालक राम देखो घट भीतर सूरतराम दरसाई।
सत्य सोहागिन मातु शारदा जन हरलाल मिली जाई।[1]

※

हरिचरणदास

आपका उपनाम 'हरिकवि' था।

आप सारन जिले के चैनपुर-ग्राम के निवासी थे।[2] आपका जन्म १७६६ वि० (१७०९ ई०) में हुआ था। आपके पिता का नाम 'रामधन' था। पहले आप सारन

---

१. चम्पारन की साहित्य-साधना (वही), पृ० ४३।

२. (क) 'साहित्य-संदेश' (जनवरी, १९५६ ई०), पृ० ३०६।
(ख) श्रीमोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' के पृष्ठ १८६ में लिखा है कि "ये किशनगढ़ के रहनेवाले थे।" पर वस्तुतः यह सत्य नहीं है। वे किशनगढ़ के निवासी निश्चय ही नहीं थे। हाँ, बस अवश्य गये थे। मूलतः वे बिहार के ही निवासी थे। वे स्वयं ही अपनी लेखनी से 'कर्णाभरण' की अंतिम प्रशस्ति में इस प्रकार सूचित करते हैं—

राजत सुबे बिहार में है सारनि सरकार
सालग्रामी सुरसरित सरजू सोभ अपार ॥३८॥
सालग्रामी सुरसरित मिली गंग सो आय
अंतराल में देस सौं हरि कवि को सरसाय ॥३९॥
परगन्ना गोआ तहाँ गाँव चैनपुर नाम
गंगा सो उत्तर तरफ तहं हरि कवि को धाम ॥४०॥
सरजूपारी द्विज सरस बासुदेव श्रीमान
ताको सुत श्री रामधन ताकौ सुत हरि जाम ॥४१॥
नवापार में ग्राम है चढ़ुया अभिजन तास
विस्वेसेस कुल भूपवर करत राज विभास ॥४२॥
मारवाड़ में कृष्णगढ़ तिह किय हरि कवि वास
कोस जु कर्नाभरन यह कीनौ है जू प्रकास ॥४३॥

देखिए—'सम्मेलन-पत्रिका' (पौष-फाल्गुन, शक १८७९) में श्रीमुनिकान्तिसागर-लिखित 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अज्ञात आधार-कवि वृन्द के वंशज' शीर्षक लेख का फुटनोट, पृ० ५-६।

जिलान्तर्गत 'बढ़िया' (नावापुर) के जमींदार विश्वसेन के आश्रय में थे।[१] इसके पश्चात् आप कुछ दिनों के लिए वृन्दावन रहे, जहाँ से कृष्णगढ़ (मारवाड़) गये और महाराज राजसिंह द्वारा सम्मानित होकर वहाँ बस गये।[२] आप १८३५ वि० (१७७८ ई०) में परलोकवासी हुए।

आप एक सफल कवि थे। आपकी काव्य-रचना सरस, प्रौढ़ और भावपूर्ण होती थी। आपने केशवदास-कृत 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया', बिहारीलाल-कृत 'सतसई' तथा महाराज यशवन्तसिंह-कृत 'भाषा-भूषण' की टीकाएँ रची थीं।[३] आपकी तीन अन्य पुस्तकें भी मिलती हैं—'सभा-प्रकाश', 'बृहत्कवि-वल्लभ' और 'कर्णाभरण'[४]। कुछ लोग आपकी रचनाओं में 'मोहनलीला', 'रामायणसार' और 'भागवत-प्रकाश' नामक ग्रन्थों की भी गणना करते और बतलाते हैं कि इनमें प्रथम दो अप्राप्य हैं।[५]

उदाहरण

(१)

आनन्द कौ कंद वृषभानुजा कौ मुख-चंद लीला ही तैं मोहन के मानस कौ चोरै हैं।
दूजो तैसो रचिबै कौ चाहत विरंचि नित ससि कौं बनावै अजौं मन को न मोरै हैं।
फेरत हैं सान आसमान पै चढ़ाय फेरि पानिप चढ़ाइबै कौ वारिधि में बोरै हैं।
राधिका को आनन के जोत न बिलोकै विधि टूक टूक तोरै पुनि टूक टूक जोरै हैं।[६]

(२)

पूरन प्रभू की कृपा पूरन भई हैं ऐसी दान किरपान लियैं सुन्दर सुजान हैं।
विद्या के विधान बुधिवान छलवान छैल जानत जिहान जग देत जिन्हैं मान हैं।
वस्त्रम सुकवि कहैं बाजत निसान जहाँ रंगैं किरपान सुने जग मैं बषान हैं।
कौन करैं मान तासौं सुन्दर सुजान नारि बार बार बारो जात प्रानन के प्रान हैं॥[७]

❀

१. हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, प्रथम भाग), पृ० १५८-१६३।

२. आज भी किशनगढ़-दरबार में एक चित्र है, जिसमें एक कवि पूरे राजकीय सम्मान के साथ एक पालकी में विराजमान हैं और महाराजा स्वयं उस पालकी में सोत्साह कंधा लगाये हुए हैं। कहा जाता है कि उक्त कवि हरिचरणदासजी ही हैं। —'सम्मेलन-पत्रिका' (वही), पृ० ५।

३. इनमें प्रथम तीन की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ श्रीउदयशंकर शास्त्री (काशी) के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

४. इसी पुस्तक की अन्तिम प्रशस्ति में आपने अपना छन्दोबद्ध परिचय भी दिया है। इसकी हस्तलिखित प्राचीन प्रति आगरा-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विद्यापीठ के संग्रहालय में सुरक्षित है।

५. 'साहित्य-संदेश' (वही), पृ० ३०६।—देखिए, श्रीगोपालशर्मा द्वारा लिखित टिप्पणी।

६. राजस्थानी भाषा और साहित्य (मोतीलाल मेनारिया, प्रथम सं०, २००६ वि०), पृ० १८६।

७. 'सम्मेलन-पत्रिका' (वही), पृ० ७।

हरिनाथ

आप मिथिला-निवासी और मिथिला-नरेश महाराज प्रतापसिंह (सन् १७६१-७५ ई०) तथा माधवसिंह (सन् १७७६-१८०७ ई०) के दरबार में थे।

आपका जन्मकाल १८०४ वि० (१७४७ ई०) था। १९वीं शती में आपके एक सम्बन्धी पं० हर्षनाथ झा एक प्रसिद्ध कवि हुए। आप मैथिली में बहुत-सी कविताओं की रचना की थी, जिनमें कुछ यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं।

उदाहरण

पहिरि सुन्दरि चारु चन्दन, चकृत चहु दिशि नयन खञ्जन,
देखल द्वार कपाट लागल, हरि ने जागल रे।
कत कला कय कत जगाओल कतहु किछु नहि शब्द पाओल।
एहेन कुपुरुष नींद मातल जनि रसातल रे।।
गेलि एकसरि मध्य यामिनि, पलरि आइलि निरसि कामिनि,
एहि अवसर जे ने जागल थिक अभागल रे।
भनहि कवि 'हरिनाथ' मन दय हाथ मारति गेलि रस लय,
पाछाँ की दों नींद टूटत पलक छूटत रे।। [२]

⁂

१. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, द्वितीय भाग, द्वितीय सं०, १९८४ वि०), पृ० ८१४।
२. मिथिला-गीत-संग्रह (वही, तृतीय भाग), पृ० ११-१२।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

(बिहार के वे साहित्यकार, जिनकी पुस्तकाकार अथवा स्फुट रचनाएँ नहीं प्राप्त होतीं, किन्तु संक्षिप्त परिचय प्राप्त हैं।)[1]

८वीं शती

जोगीपा

आपका नाम 'अजोगीपा' भी मिलता है। आपका निवास-स्थान 'उदन्तपुरी'[2] कहा गया है। प्रायः सभी विद्वान् उक्त स्थान को आधुनिक 'बिहारशरीफ' का पुराना नाम मानते हैं।[3] आप सिद्ध 'शबरीपा' के शिष्य थे। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ५३वाँ है।

९वीं शती

खड्गपा

आपका निवास-स्थान मगध था।[4] आप 'चर्पटीपा' के शिष्य थे। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान १५वाँ है।

---

१. कुछ ऐसे बिहारी सिद्ध मिलते हैं, जिनकी कोई भी पुस्तकाकार अथवा स्फुट रचना नहीं प्राप्त होती। किन्तु सिद्ध-काल के विशेषज्ञों का कहना है कि प्रायः सभी सिद्धों ने पुरानी हिन्दी में रचना की थी, इसी आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इन सिद्धों ने भी निश्चय ही रचनाएँ की होंगी, जो काल-चक्र में पड़कर आज लुप्त हो गई हैं।

२. देखिए, रजत-जयन्ती-स्मारक ग्रंथ (वही, पृ० १५३ से १५५) में श्रीसूर्यनारायण व्यास का 'ओदन्त-पुरी (उद्दंडपुरी)' शीर्षक लेख।

३. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।

४. वही, पृ० २२१।

चवरीपा

आपके नाम 'जवरि', 'अजपालिपा' आदि भी मिलते हैं। आपका निवास-स्थान मगध कहा गया है।[१] आप 'कन्हपा' की तीसरी पीढ़ी में पड़ते हैं। सिद्धों में आपका स्थान ६४वाँ है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार आप 'चामरीनाथ' या 'चामरिपा' से अभिन्न व्यक्ति हैं।[२]

❋

मणिभद्रा (योगिनी)

आपका निवास-स्थान राहुलजी ने एक स्थान पर मगध[३] और दूसरे स्थान पर 'अगचेनगर'[४] लिखा है। हमारा अनुमान है कि आप मगध की ही थीं। आप सिद्ध 'कुकुरिपा' की शिष्या थीं। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान ६५वाँ है।

परिशिष्ट—२

(बिहार के वे साहित्यकार, जिनके परिचय तो प्राप्त नहीं होते, किन्तु रचनाओं के उदाहरण प्राप्त हैं।)

१२वीं शती

मल्लदेव[५]

कुसुमित कानन माँजरि पासे।
मधुलोभें मधुकर धाओल आसे॥
सजनी हिअ मोर झूरे।
पिआ मोर बहु गुने रहल विदूरे॥ ध्रुवं॥
माघ-मास कोकिल रय विरख[६] नादे।
मन बसि मनभर[७] कर अवसादे॥
वन्हि हम पिरिति एक पराने।
से आवे दोसर के राखत आने॥
हृदय हार राखल भोरे।
अइसन पिआर मोर गेल छाड़ि रे॥
नृप मलदेव कह सुन........।[८]

❋

---

१. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३।
२. नाथ-संप्रदाय (वही), पृ० १३८।
३. पुरातत्त्व-निबन्धावली (वही), पृ० १५३।
४. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२३। संभव है, यह 'अगचेनगर' बिहार के ही किसी स्थान का पुराना नाम रहा हो।
५. विद्यापति ने अपनी 'पुरुष-परीक्षा' में आपको कर्णाट-कुल के संस्थापक नान्यदेव का पुत्र बतलाया है।
६. शुद्ध पाठ 'बर्यार वन' है।
७. शुद्ध पाठ 'मनमथ' है।
८. The Songs of Vidyapati (वही, Appandix—A), पद सं० ८, पृ० ग।

१३वीं शती

कारनाट

(१)

जगत विदित वैद्यनाथ सकल गुण आगर हे।
तोहे प्रभु त्रिभुवननाथ दया के सागर हे।।
अङ्ग भस्म सिर गंग गले विच विषधर हे।
लोचन लाल विशाल भाल विच शशिधर हे।।
जानि सरन दीनबन्धु सरण धय रहलहुँ हे।
मनदय करु प्रतिपाल अगम जल पड़लहुँ हें।।
सुनिय सदाशिव गोचर मम एहि अवसर हे।
कौन सुनत दुख मोर छाड़ि तोहि दोसर हे।।
'कारनाट' निजदोष औगुन कतेक हम भाषव हे।
तोहे प्रभु त्रिभुवननाथ अपन कय राखव हे।।[१]

(२)

साजे हैं बरात कोटि कोटि गजरथ की, बाजे नगाड़ा शंख तुरही घन छाँह में।।
पताका फहराने देखि, गाइनि भहराने नाग माला है बाँह में।।
योगिनी गण करत गान बाउरि सी धरत ध्यान, कैसे वर लायो है हिमाचल की उछाह में।।
'कारनाट' कहत भवसागर के देवगण, फूलन की झपसी भई तपसी के विवाह में।।[२]

❊

१६वीं शती

रत्नाकर[३]

कनकलता अरविन्दा। मदना-माजरि उगि गेल चन्दा।।
केओ बोल भमए भमरा। केओ बोल नहि नहि चलए चकोरा।।
केओ बोल शैवाले बेढ़ला। केओ बोल नहि नहि मेघ मिलला।।
संशय परु जन मही। केओ बोल तोर मुख सम नही।।
कवि 'रतनाओ' भाने। सङ्ग कलङ्क दुअओ असमाने।।
मिलु रति-मदन-समाजा। देबल देवि लखनचन्द राजा।।[४]

❊

---

१. मिथिला-गीत-संग्रह (वही, प्रथम भाग), पद सं० ६४, पृ० २८।
२. वही (चतुर्थ भाग), पद सं० ६५, पृ० २८।
३. आपका उपनाम 'रतनाओ' मिलता है।
४. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० १५, पृ० ८। 'ई कवि रागतरंगिणीकार लोचन झा सँ प्राचीन छलाह। लखनचन्द राजाक परिचय अनुपलब्ध अछि।'—वही, पृ० ७१। यह पद 'रागतरंगिणी' में भी संगृहीत है।—देखिए, वही, पृ० ७६-७७।

श्यामसुन्दर[१]

दूरहिँ ऊरु रहल गहि ठाम। चरन पाओल थलकमल-उपाम॥
सेदविन्दु परिपूरल देह। मोतिम फरलि सौदामिनि-रेह॥
सङ्केत-निकेत मुरारि निहारि। अपनि अधिनि नहि रहलिअ नारि॥
पुलकित भेल पयोधर गोर। दगध मदन पुनु आँकुर-तोर॥
बजइतेँ वचन भेल सरभङ्ग। कदलीदल जकाँ काँपए अङ्ग॥
रसमय 'श्यामसुन्दर' कवि गात्र। सकल अधिक भेल मनमथ-भात्र॥
कृष्णनरायण[१] ई रस जान। कमलावतिपति गुनक निधान॥[२]

※

कुमुदी

जतनहुँ जतेओनरे रे निरवह एकान्हुततेओ अँगिरलह।
दरसन दिन सओरे रे बोलितह नयन जुडाएत तोँहतह।
हमे अवलावलिरे रे दएजिव तरवि दुसहनरि शिवशिव।
से सवेविसरु आवे रे रे की हेतु मरओमधथहेमकर केतु।
कवि कुमुदी कह रे रे थिररह सुपुरुष वचन पसान रेह।[३]

※

१७वीं शती

गंगाधर

जय जय देवि दुर्गे दनुज दारिनि भक्त जन सन्ताप
हारिनि प्रबलदनु मुण्डालि मालिनि चण्डादारिनि हे॥
मत्तमहिषासुर गरासिनि शंखचक्रकृपाण पासिनि
चकित बृन्दारक विलासिनि समर हासिन हे॥
श्री त्रिविक्रम नृपति नागर ममलकीर्ति कदम्ब
सागर महित कैरव वन बिभाकरमिति समाचर हे॥
रचित गंगाधर सुगीते धरणिपालक रचिणीते
सकल सुरनर सिद्धि ललिते वेद चरिते हे॥[४]

※

---

१. मिथिला की राजपंजियों से पता चलता है कि ये महेशठाकुर के कुछ दिन पूर्व एक राजकुलोत्पन्न व्यक्ति थे। संभवतः आप इन्हीं के आश्रित कवि थे।

२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० २१, पृ० ११-१२। यह पद 'रागतरंगिणी' में भी संगृहीत है।—देखिए, वही, पृ० ११५।

३. रागतरंगिणी (वही), पृ० ६७-६८।

४. वही, ७८।

चतुरानन

(१)

जयमङ्गला जयमङ्गला, होइ परसनि देवि तोरितबला ॥
मधुकैटभ महिषासुर अतिबल धूम्रलोचन खयकारी।
शुम्भनिशुम्भ देव कंटकरन खनहिं महाबल देल विदारी ॥
जैसे सुरगन देलह अभयबल सकल असुरगन मारी।
तैसे आस पुरह जगमाता रिपुगन हलह सँभारी ॥
जे अभिमत कए जे नर चिन्तए से नर से फल पावे।
सवं काज सिधि करह भवानी कवि चतुरानन गावे ॥[१]

※

जयकृष्ण

(१)

नयन निमिष जनि देखइत चउगुन भउ मोहि भान।
पतिसङ्ग रतिरङ्ग गुनितहुँ कलप अलप परिमान ॥
हरि हरि साप आरसमय असमय परिहरि गेल।
तँ हिश्र कओन पराभव, जँ दुइ आध न भेल ॥
नाह निकारुन कि कहब, दारुन पिकरव सूनि।
कोन परि जीवन राखब, कत झाँखब शिर धूनि ॥
गरल मृणालवलय बस, मलयज मोहि न सोहाव।
दिवसहुँ हिमधामा महिमा बिसरि सताव ॥
'जयकृष्ण' कवि रसमय भन, धैरज धर वर-नारि।
अचिरहिँ मिलत मधुरपति, गुनगौरव अवधारि ॥[२]

(२)

जय कालिके कर खड्गधारिणी, मत्त गजवर गामिनी।
चिकुर चामर चारु चन्द्र, तिलक चान समागिनी ॥
कनक कुण्डल गण्ड मण्डित, शम्भु गेहिनी कामिनी।
भओँह भ्रमर कमान सजल, दसन जगमग दामिनी ॥
नयन नीरज वदन विधुछवि, तीन नयन विलासिनी।
अधर लाल विशाल लोचिनि, शोक मोचिनि शूलिनी ॥

---

१. रागतरंगिणी (वही), पृ० ६१।
२. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० २०, पृ० ११। यह पद 'रागतरंगिणी' में भी संगृहीत है।—देखिए, वही, पृ० ८७-८८।

विकट आनन अति भेआउनि, हस्त खप्पर धारिणी।
योगिनीगण हास खलखल, सङ्ग नाच पिशाचिनी ॥
श्याम तनु अभिराम सुन्दरि, बाज रुनझुन किङ्कणी।
जङ्घ कदली अङ्ग कुण्डल, पादपद्म विभूषिणी ॥
करजोड़ि 'जयकृष्ण' करत गोचर, सिंहवाहिनी दाहिनी।
हरखि हेरिअ मोहि शङ्करि! त्वरित मन दुख नाशिनी ॥[१]

पूरनमल

साजयति सुरसरिदमर दानव नागनरवरदायिनी ॥
कासकुसुममृडालमुकुता धवल धार प्रवाहिनी ॥
तिलतुलित तण्डुल कुसुम चन्दन विबुध पूज्य सुधाविनी।
सुरनगर वीथी...... ....ब्रह्महस्त निवासिनी ॥
पुरमथनमस्तककलितशोभा कृष्ण चरणतरङ्गिनी।
जगधम्म सरसिज सोम भासा सलिल रासि सोहाग्नी ॥
जह्नुकन्या भीष्म जननी धरणि मध्य विभूषिनी।
कविराज पूरन मल्ल भाषित पतित पामर पालिनी ॥[२]

प्रीतिनाथ

(१)

नवमी तीथि उजागर, सब विधि आगर रे० ललना०
जनमल रघुकुल बालक, अति सुखदायक रे० ॥
उद्भव धाव अवधपुर, दुंदुभि बाजए रे० ललना०
दशरथ-मन आनन्द, दान सभ पाओल रे० ॥
दगरिनि औरि पसारल, प्रभु कें ओछारल रे० ललना०
पुनि पुनि वसन निहारल, निजकुल तारल रे० ॥
विविध यतन हरखाइलि, शुभशुभ भाखलि रे० ललना०
हिनहि जगत प्रतिपालक, त्रिभुवन-बालक रे० ॥
'प्रीतिनाथ' कवि गाओल, गाबि सुनाओल रे० ललना०
श्याम सुन्दर रघुराज, जयत पद पाओल रे० ॥[३]

---

१. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त।
२. रागतरंगिणी (वही), पृ० ५१-५२।
३. प्रो० ईशनाथ झा (दरभंगा) से प्राप्त।

(२)

वारि वएस तेजि गेह, पिआमन ओहे सँदेह ।। ध्रु० ।।
ओरे तन्हिमन अछ ओहे भाँन, एतए समए भेल आन ।।
तोरित पठाओव सँदेश, आबे नहि उचित विदेस ।
जौबन रूप सिनेह, सेहे सुमरि खिन देह ।
प्रीतिनाथ नृप[1] भान, अचिरे होएत समधान ।।[2]

*

भवानीनाथ

नाव डोलाव अहीरे, जीवहुतें न पाओव तीरे । खर नीरे लो ।।
खेव न लेअए मोले, हँसिहँसि कीवहु बोले । जीव डोलों लो ।
ककेहिके औलिहुँ आपे, बेढ़लहुँ मोहि बड़े सापे । मोरें पापें लो ।।
करितहुँ पर उपहासे, परलिहु तन्हिबिधि फासे । नहि आसे लो ।
न बुझसि अबुझ गोआरी, भजिरहु देव मुरारी । नहि गारी लो ।।
भवानीनाथ हेन भाने, नृपदेव जतरस जाने । नव कान्हे लो ।।[3]

*

यदुपति

गौर देह सुढार सुवदनि श्यामसुन्दर नाह ।
जनि जलद ऊपरँ तलित सन्चर सरुप ऐसन आह ।।
पीठि परु घनश्याम वेनी देखि ऐसन भाँन ।
जनि अजर हाट कपाट करें गहि लिखनि लिखु पचवान ।।
सघन सन्चर खन न थिर रह मनिक मेखल राव ।
जनि मदनराए दोहाए दए दए जवन तसु जस गाव ।।
रमनि नहिं अवसाद मानए रयनि वरु अवसान ।
ओजे रमनि राधा रसिक यदुपति सिंह भूपति भान ।।[4]

*

१. इस शब्द से यह ज्ञात होता है कि संभवतः ये कहीं के राजा थे ।
२. रागतरंगिणी (वही), पृ० ८० ।
३. वही, पृ० ६५ ।
४. वही, पृ० ६० ।

सदानन्द

जय जय दुर्गे दुर्गतिहारिनि सब सिधिकारिनि देवी।
भुगुति मुकुति दुहु दुखें विनु पाविश्र (तुश्र) पद-पङ्कज सेवी॥
विष्णु विरञ्चि-विभावसु-वासन-शिव तुश्र धरए धेश्राने।
श्रादि-सकति भगवति भव-भाविनि केश्रो न श्रन्त तुश्र जाने॥
तनु श्रति सुन्दर मरकत मनि जनि तीनि नयन भुज चारी।
शङ्ख चक्र शर कर धनु धारिनि शशिशेखर-श्रनुसारी॥
मनिमय कुण्डल हार मनोहर नूपुर घनहन बाजे।
किङ्किनि रन रन सुललित कङ्कन भूषन विविध विराजे॥
पञ्चानन-वाहिनि दाहिनि होहु सुमरि महेश-बिमोही।
'सदानन्द' कह चरन-युगल तुश्र सरन कएल जग जोही॥[१]

*

१८वीं शती

जीवदत्त

(१)

जय जय शङ्करि! सहज शुभङ्करि! समरभयङ्करि श्यामा।
बाउरि वेश केश शिर फूजल शववाहिनि हरवामा॥
वसन विहीन छीन छवि लहलह रसन दशन विकराला।
कटि किङ्किणि शवकुण्डल-मण्डित उरपर मुण्डक माला॥
श्रक बह खिधुर धार धरणी धर धरणीधर सम बाढ़ी।
खल खल हास पास दुइ योगिनि वाम दहिन भय ठाढ़ी॥
कट कट कए कत श्रसुर सहारल, कटि कटि केल ढेरी।
घट घट लिधुर धार कत पीउली मगमातलि फेरी फेरी॥
विकट स्वरूप काल देखि काँपथि, के पुनि श्रसुर वेचारे।
तुश्र पद प्रेम नेम जेहि अन्तर ताहि श्रमिश्र रस-सारे॥
'जीवदत्त' भन शिव सनकादिक, सभक शरण एक तोही।
निर-श्रवलम्ब जानि करुणामयि! करिश्र कृतारथ मोही॥[२]

*

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० १६, पृ० ८-६। यह पद 'रागतरंगिणी' में भी संगृहीत है।
—देखिए, वही, पृ० ११२।

२. वही, पद सं० ५६, पृ० ३३-३४।

धर्मनन्द

सखि हे ! कि कहब पहुक समाजे ।
निअर बसन्त कन्त नहि आएल रसमय समय विराजे ।।
दुसह दिवस परवस भेल वालम सुधि बिसरल सभ मोरा ।
ओतहि पाओल पहु हमसनि की धनि जें रहु परदेश मोरा ।।
उपवन परसन, परसन दरसन हिरदय दए पँचवाने ।
कुसुम कुसुम पर मधुकर अनुसर कोकिल कलरव गाने ।।
'धरमनन्द' भन प्रेम अरज जन बड़ जन ने कर निरासे ।
जइओ गगन बस तइओ प्रेमरस शशधर कुमुद बिकासे ।।[1]

❀

बलभद्र

ओकि माधव ! देखल रमणि एक ताही ।
जगत मनोहर रूप सार लए बिहि निरमाओल जाही ।।
जकर वदन छवि तुलना कारण कुमुद-बन्धु निरधारी ।
हर शिरलोचन ज्वलन वास कए करथि कठिन तप भारी ।।
सिन्दुर विन्दु जड़ाब जटित बिच केशरि आड़ सभारी ।
जनि रवि विधु गुरु एक सङ्ग भए फल गुण रहल बिचारी ।।
लोचन रूप पराजित सरसिज मीन बारि परवेशे ।
निज मन मानि ग्लानि हरिणी वन, खञ्जन गमन विदेशे ।।
कुटिल भौंहँ अति वाम बिलोकन, काजर रेह मिलाने ।
तीनि भुवन जय केतु काम जनु, सगुन धनुख धर वाने ।।
सुभग नासिका अधर मनोइर-सुषमा वरनि न जाए ।
बिम्ब लोभ जनि कीट बैसल अछि, कवि कहि रहए लजाए ।।
अमिअसार सँ वचन अधिक प्रिय, उपमा कहल न जाए ।
अनुदिन शिक्षा कर पिक वीणा, समता अजहु न पाए ।।
कनक किनारी ललित पीत पट, तासँ झाँपल देहा ।
सहित इन्द्र धनु नव घन तर जनु, छपल चञ्चला-रेहा ।।
अङ्ग अङ्ग छवि कतेक कहब तोहि, देखि करिअ परमाने ।
सखी वचन सुनि मुदित मनहि हरि, कवि 'बलभद्र' बखाने ।।[2]

❀

---

१. मैथिली गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ५४, पृ० ३१ ।
२. वही, पद सं० ७३, पृ० ४२-४३ ।

रमण

जखन पहुन बढ़ि, पलटि आओत हरि, देखब नयन भरि,
आगे सजनी, विरह वेदन छुटि जाएत रे की ।
हरखि जाएब वर, मिलब गरहिँ गर, सुपहु धरब कर,
आगे सजनी कुसुमक तलप ओछाएब रे की ।
बैसब निकट भए, मुख सम्मुख कए बीअनि कर कए,
आगे सजनी हरखि हेरब मिठ भाखब रे की ।
काहि कहब दुःख, विसरल सब सुख, ने देखिअ पहु मुख,
आगे सजनी अह निशि पिअ पथ हेरिअ रे की ।
मोरे लेखेँ आङन, भए गेल विजुवन वेधल मदन मन,
आगे सजनी, घर भए गेल अन्हारे रे की ।
परक रमनि सनि, न होअ परसमनि, जइओ सुन्दरि धनि,
आगे सजनी, ई बुझि बैसु हिअ हारिअ रे की ।
दछिन पवन बह, चित नहि थिर रह, हमरो वाम विह,
आगे सजनी, बिफल यौवन मोर बीतए रे की ।
सुकवि 'रमण' कह बब जन दुख सह, धैरज धए रह,
आगे सजनी, अचिर आओत तोर वालम रे की ।[१]

✻

वागीश्वर

जय जय निगुण-सगुण तनु-धारिणि ! गगन-विहारिणि ! माहे ।
कतकत विधि हरि हर सुर पतिगण सिरिजि सिरिजि तोहेँ खाहे ।।
निगुण कहब कत सगुण सुनिअ जत ततमन कए रहु वेदे ।
थाकि थाकि बैसल छथि भँखइत, नहि पावथि परिछेदे ।।
तोहरहि सँ सभतन, तोहरहि सँ तन्त्र मन्त्र कत लाखे ।
केओ नारि-तन, केओ पुरुष-तन अपन अपन कए माखे ।।
सुदृढ़ भक्ति रसवश तुअ अनुपम, ई बुझिअ परमाने ।
भक्ति मुक्ति वर दिअओ गोसाँउनि ! कवि 'वागीश्वर' भाने ।।[२]

✻

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ६१, पृ० ३५ ।
२. वही, पद सं० ८०, पृ० ४६ ।

शंकर

गिरिनन्दिनि शुभदीन हरखि मिथिलापुर आई ।
चन्द्र कोटि छवि-विमल वदन लखि, आनन्द उर न समाई ॥
नयन चकोर शरद विधु मण्डल, एकटक रहिअ लगाई ।
मोहित मधुकैटभ मद भञ्जिनि, सुर गण शक्ति समूले ॥
महिष महाहव सवल विपद लाखि, सुमन सुवरखह फूले ॥
शोभा धाम कामना सुरतरु, जनमन दायिनि चैन ॥
मणिमय अजिर कनक गिरिवासिनि, नाशिनि धूमरनैन ॥
चण्डमुण्ड शिरखण्डिनि भगवति, रक्तबीज संहारी ॥
शुम्भनिशुम्भदनुज कुलदारिणि, सिंहक पीठि सवारी ।
सुर-गन्धर्वयक्ष-किन्नरगण, कर गोचर कर जोरी ।
पावि अभय वर दहिन हाथ तुअ, अति हरखित चित मोरी ॥
तारा-पद-सरोज-शरणागत, सेवक 'शङ्कर' गाई ।
नित अभिनव मङ्गल मिथिलापुर, घर घर बाज बधाई ॥[1]

※

शूलपाणि

सौरभ भमर लोभाएल सजनी गे, विधिवश मधुरस आएल ॥
सुपहु सकल गुण-सागर सजनी गे, उचित ने अधिक अनातुर ॥
विहुँसि वदन करु परसन सजनी गे, लुबुध मधुप तुअ दरसन ॥
माधवि विरओ महवि मधु सजनी गे, भावक भुखल भमर बँधु ॥
'शूलपाणि' कह धनि सुनु सजनी गे, समय न पाविअ पुनुपुनु ॥[2]

※

शोभनाथ

निअ मन मानिनि ! करिअ विचार । एहि जगजीवन प्रेम पसार ॥
जइओ बन्धु-जन कर उपहास । तइओ न नागरि करए निराश ॥
सपनहुँ करिअ न दरसन-बाध । कुल-कामिनि नहि गुन अपराध ॥
सुमिरिअ पुरुब विलासक रीति । तुअ हम रहि दुर उपजल प्रीति ॥
'शोभनाथ' भन तजि मन लाज । अबहुँ राखु धनि अपन समाज ॥[3]

※

---

१. मैथिली-गीत-रत्नावली (वही), पद सं० ८१, पृ० ४७ ।
२. वही, पद सं० ३६, पृ० २० ।
३. वही, सं० ७१, पृ० ४१ ।

परिशिष्ट—३

(बिहार के बाहर के वे साहित्यकार, जिनका कार्यक्षेत्र बिहार था।)

नवीं शती

कण्हपा

आपके नाम 'कानफा', 'कानपा', 'कान्हूपा', 'कानूपा', 'काण्हपा', 'कृष्णवज्र', 'कर्णपा', 'कृष्णपा', और 'कृष्णाचार्य' भी मिलते हैं। कहते हैं, आपका रंग काला होने के कारण 'कृष्णपा' और कान लम्बे होने के कारण आप 'कर्णपा' कहे गये।

अपका जन्म-स्थान डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य ने उड़ीसा[१], म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने बंगाल[२] और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने एक स्थान पर[३] कर्णाटक और दूसरे स्थान पर सोमपुरी[४] बतलाया है। आपका जन्म-स्थान चाहे जहाँ-कहीं भी हो, इतना निश्चित है कि आपका कार्य-क्षेत्र बिहार ही था। आपकी रचनाए भी पुरानी-हिन्दी में ही मिलती हैं।

आपने अपने को 'कापाली' या 'कापालिक' कहा है। आपके एक पद में आपके गुरु का नाम 'जालन्धरिपा' या 'हाडीपा' मिलता है। आपके शिष्यों में वीणापा, भदेपा, धर्मपा, महीपा, आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त आपकी दो शिष्याओं 'नखला' और 'मेखला' की चर्चा भी मिलता है।

अपनी विद्वत्ता एवं कवित्व-शक्ति के कारण ही आप अस्पष्ट सिद्धों में सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान १७वाँ है।

'तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में आपके छह ग्रंथ दर्शन के और ७४ ग्रंथ तन्त्र के संगृहीत हैं। इन ७४ तन्त्र ग्रंथों में निम्नलिखित ६ ही अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में हैं —(१) गीतिका (२) महाढुंढन (३) वसंततिलक (४) असंबंध-दृष्टि (५) वज्रगीति और (६) दोहा-कोश।

उदाहरण

नगर बाहिरे डोम्बि तोहोरि कुडिया। छाइ छोई जाई सो बाह्मण नाडिया ॥
आलो डोम्बि तोए सम करिब म संग। निधिण काण्ह कपालि जाई लाँग ॥
एक सो पदुम चौषठि पाखुडी। तहिँ चडि णाचअ डोम्बि वापुडी ॥
हालो डोम्बि तो पूछमि सद्भावे। आइससि जासि डोम्बि काहरि नावेँ ॥
ताँति विकणअ डोम्बी अवर न चँगेडा। तोहोर अन्तरे छड़ि नड़ पेंढा ॥
तूँ लो डोम्बी हाँउ कपाली। तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि हाडेरी माली ॥
सरवर भाँजिअ डोम्बी खाअ मौलाण। मारमि डोम्बी लेमि पराण ॥[५]

*

१. Budhist Esoterism (वही), P. 75.
२. बौद्धगान ओ दोहा (वही), पृ० २४।
३. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२२।
४. पुरातत्त्व-निबंधावली (वही), पृ० १४१।
५. हिन्दी-काव्य-धारा (वही), पृ० १५०।

१०वीं शती

तन्तिपा

आपका दूसरा नाम 'टेण्ढणपा' बतलाया गया है। किन्तु आधुनिक अनुसन्धान के आधार पर ऐसा कहना ठीक नहीं।[१] कहते हैं, 'सिद्धचर्चा' में आप तंतुवाय (तंतवा या जुलाहा) का काम करते थे, इसी कारण आपका उक्त नाम पड़ा।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने आपका निवास एक स्थान पर 'मगध' (बिहार)[२], दूसरे स्थान पर 'अवन्ती-देश' (उज्जैन)[३] और तीसरे स्थान पर 'सोंधोनगर'[४] बतलाया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आपके नाम के आधार पर आपको 'अवन्ती-देश' का होना ही ठीक मानते हैं।[५] ऐसा ज्ञात होता है कि आपकी जन्म-भूमि अवन्ती-देश (उज्जैन भले ही रही हो, किन्तु आपका कर्मक्षेत्र मगध (बिहार) ही था। आपके गुरु सिद्ध 'जालन्धरपा' तथा 'कण्हपा' बतलाये गये हैं। चौरासी सिद्धों में आपका स्थान १३वाँ है। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर्' में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचित आपका एकमात्र ग्रन्थ 'चतुर्योग-भावना' संगृहीत है।

उदाहरण

टालत मोर घर नाहि पड़वेषी।
हाड़ीते भात नाँहि निति आवेशी॥ ध्रु॥
वेङ्ग संसार बड़हिल जाअ दुहिल दुधु कि वेराटे षमाय॥
बलद् विआएल गविआ बाँझे, पिटा दुहिए तिना साँझे॥
जो सो बुधी सो धनि-बुधी, जो सो चोर सोइ साधी॥
निते निते षिआला षिहे षम जुझअ, ढेयणपा पाएर गीत विरले बूझअ॥[६]

*

११वीं शती

अवधूतीपा

आपके नाम 'दामोदर', 'मर्तबोध', 'अमृतबोध', 'अद्वयवज्र', 'मैत्रीगुप्त', 'मैत्रीपा' आदि भी मिलते हैं।

महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्री ने आपका जन्म-स्थान 'बंगाल' बतलाया है।[७] किन्तु महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को सन् १९३४-३६ ई० की नैपाल-यात्रा में आपकी जो

१. सिद्ध-साहित्य (वही), ५५।
२. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २२१।
३. वही, पृ० २५६।
४. पुरातत्त्व-निबंधावली पृ० १४१।
५. नाथ-सम्प्रदाय (वही), पृ० १३८।
६. गंगा-पुरातत्त्वांक (वही), पृ० २५६।
७. बौद्धगान ओ दोहा (वही), पृ० ३२।

संक्षिप्त जीवनी मिली थी, उसके अनुसार आपका जन्म-स्थान कपिलवस्तु (वर्त्तमान तिलौराकोट, तौलिहवा, नैपाल की पश्चिमी तराई) के पास 'झोतकरणी' नाम का एक गाँव था।[१] किन्तु इतना तो निश्चित है कि आपका भी कर्मक्षेत्र बिहार ही था। आपके पिता का नाम 'नानूक' और माता का नाम 'सावित्ती' (सावित्री) था। कहते हैं, १८ वर्ष की अवस्था में आपने सम्पूर्ण शास्त्रों को पढ़ लिया। सबसे पहले ग्यारह वर्ष की अवस्था में आपने एक दंडी का शिष्यत्व ग्रहण किया। फिर क्रमशः सिद्ध नारोपाद, सिद्ध रत्नाकर शान्ति और प्रसिद्ध प्रमाणशास्त्री ज्ञानश्रीमित्र का शिष्यत्व, आपने विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन के लिए, स्वीकार किया। कहीं-कहीं 'डमरूपा' भी आपके गुरु कहे गये हैं। आपके शिष्यों में 'दीपंकर श्रीज्ञान' और सिद्ध 'चेलुकपा' उल्लेखनीय हैं।

अपने शिक्षा-काल में शिक्षा प्राप्त करने तथा पीछे धर्म-प्रचार करने के लिए आपने अपने देश के विभिन्न स्थानों तथा बाहर तिब्बत की भी यात्रा की। राजगृह में 'कालशिला' के दक्षिण बहुत दिनों तक आपने एकान्तवास भी किया था। यहीं आपने अपने शिष्य दीपंकर श्रीज्ञान को छह वर्ष अपने निकट रखकर शिक्षा दी थी।

आप बड़े ही विद्वान् तथा सिद्ध पुरुष थे। कदाचित् इसी कारण आपकी गणना विक्रम-शिला के आठ महापण्डितों में हुई।

आपने कितने ही ग्रंथों की टीकाएँ लिखी थीं, जिनकी संख्या आज अज्ञात है। तिब्बती 'स्तन्-ग्युर' में लिखित आपके निम्नलिखित ग्रंथ अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में संगृहीत हैं—(१) अबोध बोधक, (२) गुरुमैत्री गीतिका, (३) चतुर्मुद्रोपदेश, (४) चित्तमात्रदृष्टि, (५) दोहातत्त्वनिधितत्त्वोपदेश और (६) चतुर्वज्रगीतिका।

आपकी रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला।

१५वीं शती

लालचदास

आपकी रचनाओं में 'लालच', 'जनलालच', 'लालन' आदि नाम भी मिलते हैं।

आपका जन्म-स्थान तो उत्तर-प्रदेश में रायबरेली जिले का डलमऊ-ग्राम था, किन्तु आपका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से बिहार हो रहा। बिहार में अधिकतर आप दरभंगा जिले के 'रोसड़ा' नामक स्थान में रहते थे। रोसड़ा के पास एक मंदिर है, जो आपका निवास-स्थान बतलाया जाता है।[२]

---

१. दोहाकोश (वही), पृ० ४७१।

२. रोसड़ा (दरभंगा) निवासी श्रीबद्रीलाल आर्य से प्राप्त सूचना के आधार पर।

सुनि सुखदेव स्रवन सुख लागी। उपजी भगति भए अनुरागी ॥
उह तो हरिपद सदा वियोगी। सभ तनि भए विहंगम जोगी ॥
अम्रित कथा भागवंत, प्रगटित एहि संसार।
चरन सरन जन लालच, गावहि गुन बिस्तार ॥[1]

❋

१६वीं शती

भगीरथ[2]

आप सम्राट् अकबर के सेनापति राजा मानसिंह के आश्रित कवि थे। मानसिंह सन् १५८८ ई० से १६०५ ई० तक बिहार के सूबेदार थे।

कहा जाता है कि आप एक कुशल कवि थे। 'कंसनारायण-पदावली' में आपके दो पद[3] संगृहीत हैं।

आपकी रचना का उदाहरण नहीं मिला।

❋

१७वीं शती

दिनेश

आप 'भगपुरपट्टन'[4] नामक स्थान के निवासी कवि दामोदर के पुत्र और भोजपुराधीश महाराजाधिराज प्रबलसिंहदेव के आश्रित थे। आपने 'रसिक-संजीवनी'[5] नामक ग्रंथ लिखा था, जिसमें भोजपुर (शाहाबाद) के राजवंश की कीर्त्ति-कथा के साथ काव्य-शास्त्र के सिद्धान्तों का निरूपण है। आपके द्वारा रचित एक और ग्रंथ 'नखशिख' कहा जाता है।[6]

---

१. 'साहित्य' (वही, अक्टूबर, १९५८ ई०), पृ० २३-२४।

२. मिथिला के राजा महेशठाकुर के एक छोटे भाई का नाम भगीरथठाकुर था। कहा नहीं जा सकता कि दोनों भिन्न व्यक्ति थे या अभिन्न।

३. ११७ और १४६ संख्यक पद।

४. इस स्थान का कोई पता नहीं मिला।

५. सन् १८९३ ई० में श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसका सम्पादन कर हरिप्रकाश यन्त्रालय (काशी) से इसे प्रकाशित किया था।

६. रत्नाकरजी ने 'रसिक-संजीवनी' की भूमिका में लिखा है—"शिवसिंह ने जिस दिनेश के 'नखशिख' का जिक्र किया है, उससे संजीवनीकार की रचनाओं का अत्यधिक साम्य है। अतः दोनों को एक मानना गलत नहीं हो सकता।"

—देखिए 'रसिक-संजीवनी' की भूमिका, पृ० ५।

उदाहरण

राधे की ठोढ़ी को बिन्दु 'दिनेश' किधौं बिसराम गोबिन्द के जी को।
चाह चुभ्यौं कनको मनि नीलको कैधों जमाव जम्यो रजनी को।
कैधों अनंग सिंगार के रंग लख्यो बरबीच बरयो करपीको।
फूले सरोज में भौंरी बसी किधौं फूल समीमें लग्यो असली को।।[१]

※

१८वीं शती

देवदत्त

आपका पूरा नाम 'देवदत्त' था, किन्तु आप 'दत्तकवि' के नाम से ही प्रसिद्ध थे।

आपका जन्म-स्थान तो असनी और कन्नौजी के बीच गंगा तटवर्ती ग्राम 'जाजमऊ' था,[२] किन्तु टिकारी (गया) के कुँवरसिंह के आश्रित कवि होने के कारण आप अधिकतर टिकारी में ही रहते थे। चरखारी (मध्यप्रदेश) के राजा खुमानसिंह के भी आप कुछ दिनों तक आश्रित थे।

आपकी रचनाएँ हैं—'सज्जनविलास', 'वीरविलास', 'ब्रजराज पंचाशिका', 'लालित्य-लता' और 'द्रोणपर्व भाषा'।

मिश्रबंधु और आचार्य शुक्ल ने इनमें लालित्य-लता की बड़ी प्रशंसा की है और इसीके आधार पर आपको 'पद्माकर की श्रेणी का कवि' बतलाया है।

उदाहरण

(१)

ग्रीषम में तपै भीषम भानु, गई बनकुंज सखीन की भूल सों।
घाम सों बाम-लता मुरझानी, बयारि करैं घकश्याम दुकूल सों।
कंपत यों प्रगट्यो तनस्वेद उरोजन 'दत्त' जू ठोढ़ी के मूल सों।
द्वै अरबिंद-कलीन पै मानो गिरै मकरंद गुलाब के फूल सों।[३]

(२)

लाल है भाल सिंदूर भरो मुख सुंदर चारु जु बाहु बिसाल है;
साल है सत्रुन के उर को इतै लिखित सोम-कला भरे भाल है।
भाल है दत्त जू सूरज कोटि की कोटिन काटत संकट जाल है;
जाल है बुद्धि बिबेकनि को यह पारबती को लड़ाइतो लाल है।[४]

※

---

१. शिवसिंह सरोज (वही), पृ० १२४।

२. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल आपका जन्म-स्थान माढ़ी (कानपुर) मानते हैं। —देखिए 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, संशोधित और प्रवर्द्धित सं०), १९९७ वि० पृ० ३५३।

३. वही।

४. मिश्रबन्धु-विनोद (वही, द्वितीय भाग, तृतीय सं० १९८४ वि०) पृ० ६४३।

परिशिष्ट—४

(बिहार के वे साहित्यकार, जिनके नामके अतिरिक्त और कोई परिचय एवं उदाहरण नहीं मिले ।)

१६वीं शती

गोपीनाथ[1]

*

वीरनारायण[2]

*

१८वीं शती

रघुनाथ कवि

*

लक्ष्मीनाथ[3]

*

लोरिक[4]

*

---

१. इसी नाम के एक और कवि मोरंग के राजा लक्ष्मीनारायण के आश्रय में थे। इनका एक मैथिली में रचित पद (८४ संख्यक) 'कंसनारायण-पदावली' में मिलता है। कहा नहीं जा सकता कि ये आपसे कोई भिन्न व्यक्ति थे या अभिन्न।

२. इसी नाम के किसी कवि का मैथिली भाषा में रचित एक पद ५३ संख्यक 'कंसनारायण-पदावली' में संगृहीत है। इस नाम के एक कवि नेपाल के राजा त्रैलोक्यमल्ल (सन् १५७२-८६ ई०) के आश्रित थे। कहा नहीं जा सकता कि उक्त पद किस 'वीरनारायण' का है।

३. आपके नाम के पहले 'ठाकुर' शब्द भी मिलता है। मिश्रबन्धुओं ने आपको 'मैथिल कवि' बतलाया है। —देखिए 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १६८५ वि०) पृ० १२२३।

४. मिश्रबन्धुओं ने आपको मगही-कवि बतलाया है। —देखिए 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १६८५ वि०), पृ० १००५ ।

परिशिष्ट—५

(बिहार के वे साहित्यकार, जिनका स्थिति-काल अज्ञात है। किन्तु अनुमानतः ऐसा प्रतीत होता है कि वे क्रमानुसार १५वीं से १८वीं शती तक के हैं।)

आतम

माधव रजनी पु (नु) कतए आउति सजनी, शीतल ओरे चन्दा,
बड़ पूने मीलत गोविन्दा, ना रे की ॥ध्रु०॥
मुख ससि हेरि, अधर अमिअ कत वेरी,
अनन्दे ओरे पिबइ मुहुलओ मदन जिअबै ना रे की ॥ध्रु०॥
हरि देल हरवा, अलपित रतन पबरवा,
जीव लाए रे धरवा निधन नाओ
निधाने ना रे की ॥
आतम गबइ बडे पुने पुनमत पबइ
मानसओ पुरला सकल कलुख
विहि हरला ना रे की ॥[१]

※

टुडरस[२]

चतुर नायिका शिशिर ऋतुमध्ये क्रीड़ा करत ततच्छन ऐन;
आयो सुभग चहूँ दिशि चितवत कर गहे कनक बनक सुख दैन।
रोके मास प्रवास अंकुधर सारंग श्रवनन पर बैन;
टुडरस कवि अचरज दीठो फिरि गयो चतुर समझकर बैन।[३]

※

१. The Songs of Vidyapati (वही, Appendix—B), पद सं० २, पृ० च।
२. मिश्रबन्धुओं ने आपको 'पुरबिया' कहा है। —देखिए 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० ९७५।
३. वही।

पृथिवीचंद

एकसर अथिकहु राजकुमार। अमोल जुवतिहिं अछए अपार ॥
मति भरमलि थिक ओल उआर। जागि पहर के करत विआर ॥
कहए सनान सुमुखि घर आव। पथिक बैसल पथ कर परथाव ॥
विधि हरि लेलि मोरि पेअसि नारि। सहइ न पाबिअ मदनक धालि ॥
कओन सङ्गे बैसि खेपब कओने भाति। लगहिक दोसर नहि देखिअ राति ॥
पहिआ नागर अथिक सही। उकुति मनोरथ गेल कही ॥
'पृथिवीचन्द' भन मेदिनि सार। इ रस बुझए मनिक दुलार ॥[1]

सरसराम[2]

देख परबेस परम सुकुमारि। हस्ति गमनि ब्रिखभानु दुलारि ॥
तनु अनुपम आनन सानन्द। दामिनि उपर उगल नब चन्द ॥
नासा लखित नयन नहिं थीर। जनि तिल फुल अलि दुहु दिस फीर ॥
भाङि जाएत कुच भर परिनाम। तै जनि त्रिबलि गुन बान्हल काम ॥
सरसराम भन राधा रूप। रस बुझ रसमय सुन्दर भूप ॥१२॥[3]

※

---

१. The songs of Vidyapati (वही, Appendix-A), पद सं० १२, पृ० घ।
२. मिश्रबन्धुओं ने आपको 'मैथिल कवि' बतलाया है। —देखिए, 'मिश्रबन्धु-विनोद' (वही, तृतीय भाग, द्वितीय सं०, १९८५ वि०), पृ० १००८।
३. Journal of the Asiatic Society of Bengal (वही, 1884), P. 87.

परिशिष्ट[1] — ६

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
१.	सातवीं शती	ईशानचन्द्र (चिन्तातुरांक)	शाहाबाद	×	कवि
२.	आठवीं शती	कर्णरीपा (कनेरिन, आर्यदेव, वैरागीनाथ)	नालंदा	१	,,
३.	,,	कंकालीपा (कोंकलिपा, कंकलिपा, कंकरिपा)	मगध	१	×
४.	,,	भुसुकपा, (भुसु, भुसुकुपा, शान्तिदेव)	नालंदा	१	कवि
५.	,,	लीलापा (लीलावज्र)	मगध	१	×
६.	,,	लुइपा (लूहिपा, मत्स्यान्त्राद)	,,	५	कवि
७.	,,	शबरपा (शबरीपा, महा-शबर, शबरेश्वर, शबरीश्वर, नवसरह)	विक्रमशिला या मगध	६	,,
८.	,,	सरहपा (राहुलभद्र, सरोजवज्र, सरोरुहवज्र पद्म, पद्मवज्र)	राज्ञी-नगरी (भंगल या पुण्ड्रवर्द्धन)	१६	,,
९.	नवीं शती	कम्बलपा (कम्बलाम्बरपा, कामरीपा, कमरिपा)	मगध	३	,,
१०.	,,	घण्टापा (वज्रघण्टापा)	नालंदा	१	×

१. (क) 'ग्रंथ-संख्या' के 'कॉलम' में जिन साहित्यकारों के नाम के आगे 'क्रॉस' (×) का चिह्न दिया हुआ है, उनमें अधिकांश की स्फुट रचनाएँ ही उपलब्ध होती हैं। कुछ ऐसे भी साहित्यकार हैं, जिनकी ग्रन्थाकार रचना के साथ स्फुट रचनाएँ भी मिली हैं, और कुछ ऐसे भी हैं, जिनकी किसी प्रकार की रचना नहीं मिली है।

(ख) साहित्यकारों के सभी ग्रंथ स्वतः देखे नहीं गये हैं। अतः संभव है कि भ्रमवश कुछ संस्कृत-ग्रंथों की भी गणना हो गई हो।

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
११.	नवीं शती	चर्पटीपा (पचरीपा)	चम्पा (भागलपुर)	१	×
१२.	,,	चौरंगीपा (पूरनभगत)	मगध	२	कवि (-गद्यकार?)
१३.	,,	डोम्भिपा (डोम्बीहेरुक)	,,	४	कवि
१४.	,,	धामपा (धर्मपा, गुण्डरीपा)	विक्रमशिला (भागलपुर)	३	,,
१५.	,,	महीपा (महिलपा, महीधरपा, महित्ता, माहीन्दा, महिला)	मगध	१	,,
१६.	,,	मेकोपा	भंगल (भागलपुर)	१	×
१७.	,,	विरूपा (विरूपाक्ष, कालविरूप, धर्मपाल)	त्रिउर (मगध)	८	कवि
१८.	,,	वीणापा	गौड़देश (बिहार)	१	,,
१९.	दसवीं शती	कंकणपा (कोंकणपा, कोकदत्त)	विष्णुनगर (मगध)	१	,,
२०.	,,	चमरिपा	,,	१	×
२१.	,,	छत्रपा	भिगुनगर (मगध)	१	×
२२.	,,	तिलोपा (भिक्षु प्रज्ञाभद्र)	,,	४	कवि
२३.	,,	थगनपा (स्थगण)	मगध	१	×

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
२४.	दसवीं शती	दीपंकर श्रीज्ञान (चन्द्रगर्भ, गुह्यज्ञानवज्र, अतिशा)	विक्रम-मनिपुर (भागलपुर)	५	×
२५.	,,	नारोपा (नाडपा, नाडकपा, नरोपन्त)	मगध	२	×
२६.	,,	शलिपा (शीलपा, सियारी, श्रृगालीपा)	,,	१	×
२७.	,,	शान्तिपा (रत्नाकर शान्ति)	,,	१	कवि
२८.	ग्यारहवीं शती	गयाधर	वैशाली (मुजफ्फरपुर)	१	×
२९.	,,	चम्पकपा	चम्पा (भागलपुर)	१	×
३०.	,,	चेलुकपा	भंगल (भागलपुर)	१	×
३१.	,,	जयानन्तपा (जयनन्दीपा)	,,	२	कवि
३२.	,,	निर्गुणपा	पूर्वदेश (भंगल और पुण्ड्रवर्द्धन)	१	×
३३.	,,	लुचिकपा	भंगलदेश (भागलपुर)	१	×
३४.	बारहवीं शती	कोकालिपा	चम्पारन	१	×
३५.	,,	पुतुलिपा	भंगलदेश (भागलपुर)	१	×

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
३६.	बारहवीं शती	विनयश्री	पूर्वी मिथिला	×	कवि
३७.	तेरहवीं शती	हरिब्रह्म	बिहार	×	,,
३८.	चौदहवीं शती	अमृतकर (अमिअकर)	मिथिला	×	,,
३९.	,,	उमापति उपाध्याय	कोइलख (दरभंगा)	१	कवि-नाटककार
४०.	,,	गणपति ठाकुर	बिसफी (दरभंगा)	×	कवि
४१.	,,	ज्योतिरीश्वर ठाकुर (कविशेखराचार्य)	श्रीमत्पल्ली-ग्राम (मिथिला)	१	गद्यकार
४२.	,,	दामोदर मिश्र	मिथिला	१(?)	कवि
४३.	,,	विद्यापति ठाकुर	बिसफी (मिथिला)	×	कवि-नाटककार -गद्यकार
४४.	पन्द्रहवीं शतीं	कंसनारायण	मिथिला	×	कवि
४५.	,,	कृष्णदास (कृष्णकारखदास)	रोसड़ा (दरभगा)	४	,,
४६.	,,	गजसिंह	मिथिला	×	,,
४७.	,,	गोविन्द ठाकुर	भदौरा (दरभंगा)	२	कवि (-टीकाकार ?)
४८.	,,	चन्द्रकला	तरौनी (दरभंगा)	×	कवि
४९.	,,	चतुभु ज (चतुर चतुर्भु ज)	मिथिला	×	,,
५०.	,,	जीवनाथ	,,	×	,,
५१.	,,	दशावधान ठाकुर	,,	×	,,

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
५२.	पन्द्रहवीं शती	भानुदत्त (भानुकर)	सरिसब (दरभंगा)	×	कवि
५३.	,,	मधुसूदन	मिथिला	×	,,
५४.	,,	माधवी	,,	×	,,
५५.	,,	यशोधर (नवकविशेखर, कविशेखर)	,,	×	,,
५६.	,,	रुद्रधर उपाध्याय	,,	×	,,
५७.	,,	लक्ष्मीनाथ (लखिमिनाथ)	,,	×	,,
५८.	,,	विष्णुपुरी (तीरभुक्तिपरमहंस, तीरभुक्तिसंन्यासी)	तरौनी (दरभंगा)	×	,,
५९.	,,	श्रीधर (सिरिधर)	मिथिला	×	,,
६०.	,,	हरपति	बिसफी (दरभंगा)	×	,,
६१.	सोलहवीं शती	कृष्णदास	लोहना (दरभंगा)	×	,,
६२.	,,	गदाधर (गजाधर)	मिथिला	×	,,
६३.	,,	गोविन्ददास	लोहना (दरभंगा)	×	,,
६४.	,,	दामोदर ठाकुर	भौर (दरभंगा)	×	,,
६५.	,,	धीरेश्वर	मिथिला	×	,,

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
६६.	सोलहवीं शती	पुरन्दर	मिथिला	×	कवि
६७.	,,	बलवीर	,,	१	(कवि ?)
६८.	,,	भीषम	,,	×	कवि
६९.	,,	भूपतिसिंह (रूपनारायण, नृपनारायण, नृपसिंह, भूपनारायण, सिंहभूपति)	,,	×	,,
७०.	,,	महेश ठाकुर	भौर (दरभंगा)	×	×
७१.	,,	रतिपति मिश्र	मिथिला	१	कवि-अनुवादक
७२.	,,	रामनाथ	,,	×	कवि
७३.	,,	रूपारुण	,,	×	×
७४.	,,	लक्ष्मीनारायण	,,	२	×
७५.	,,	विश्वनाथ 'नरनारायण'	,,	×	कवि
७६.	,,	सविता	ननीजोर (सारन)	×	(कवि ?)
७७.	,,	सोनकवि	परसरमा (सहरसा)	×	कवि
७८.	,,	हरिदास	लोहना (दरभंगा)	×	,,
७९.	,,	हेमकवि	परसरमा (सहरसा)	×	,,
८०.	सत्रहवीं शती	कृष्णकवि (श्रीबुच)	,,	१	,,
८१.	,,	गोविन्द	मिथिला	१	कवि-नाटककार
८२.	,,	दरियासाहब	धरकंधा (शाहाबाद)	१८	कवि
८३.	,,	दलेलसिंह (दलसिंह)	रामगढ़ (हजारीबाग)	४	,,
८४.	,,	दामोदरदास	हजारीबाग	×	×

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
८५.	सत्रहवीं शती	देवानन्द (आनन्द देवानन्द)	परहटपुर (मिथिला)	१	कवि-नाटककार
८६.	,,	धरणीदास (गैबी, धरणीधरदास)	माँझी (सारन)	५	कवि
८७.	,,	धरणीधर	मिथिला	×	,,
८८.	,,	पदुमनदास	रामगढ़ (हजारीबाग)	२	कवि-अनुवादक
८९.	,,	प्रबलशाह	डुमराँव (शाहाबाद)	१	कवि
९०.	,,	भगवान मिश्र	मिथिला	×	गद्यकार
९१.	,,	भूधर मिश्र	मुंगेर	१	कवि
९२.	,,	भृगुराम मिश्र	,,	३	×
९३.	,,	मँगनीराम	पदुमकेर (चम्पारन)	१	कवि
९४.	,,	महीनाथ ठाकुर	मिथिला	×	,,
९५.	,,	रामचरणदास (जनसेवक)	पटना	१	,,
९६.	,,	रामदास (सरसराम, राम)	लोहना (दरभंगा)	१	कवि-नाटककार
९७.	,,	रामप्रियाशरण सीताराम	मिथिला	१	कवि
९८.	,,	रामयति	भोजपुर (शाहाबाद)	×	,,
९९.	,,	रुद्रसिंह	रामगढ़ (शाहाबाद)	१	×
१००.	,,	लोचन	उद्यान (दरभंगा)	१ (संग्रह)	कवि
१०१.	,,	विधातासिंह	तारणपुर (पटना)	×	,,

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
१०२.	सत्रहवीं शती	शंकर चौबे (शंकरदास)	इसुआपुर (सारन)	१	कवि
१०३.	,,	शीतलसिंह	शीतलपुर (सारन:	×	(कवि?)
१०४.	,,	साहबराम (कविराजाधिराज)	अम्बा (शाहाबाद)	३	(कवि?)
१०५.	,,	हलधरदास	पद्मौल (मुजफ्फरपुर)	१	कवि
१०६.	,,	हिमकर	सरिसब (दरभंगा)	×	,,
१०७.	अठारहवीं शती	अग्निप्रसादसिंह	सोनपुर (सारन)	३	,,
१०८.	,,	अचलकवि (अच्युतानन्द)	परसरमा (सहरसा)	×	,,
१०९.	,,	अजबदास (अजाएबपाण्डेय, अजब)	कर्जा (शाहाबाद)	३	,,
११०.	,,	अनिरुद्ध	मिथिला	×	,,
१११.	,,	अनूपचन्ददुबे (रामदास)	धनगाईं (शाहाबाद)	×	(कवि ?)
११२.	,,	आनन्द	मिथिला	×	कवि
११३.	,,	आनन्दकिशोरसिंह	बेतिया (चम्पारन)	१	,,
११४.	,,	इसवी खाँ	भभुआ (शाहाबाद)	१	कवि-गद्यकार (-टीकाकार ?)
११५.	,,	ईशकवि	मिथिला	१	कवि
११६.	,,	उदयप्रकाशसिंह	बक्सर (शाहाबाद)	१	(टीकाकार ?)

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
११७.	अठारहवीं शती	उमानाथ	हरिपुरी (दरभंगा)	×	कवि
११८.	,,	ऋतुराजकवि	सुखपुरा-परसरमा (सहरसा)	×	,,
११९.	,,	कमलनयन	सरिसब (दरभंगा)	×	,,
१२०.	,,	किफायत	दुमका (पूर्णिया)	१	,,
१२१.	,,	कुंजनदास (अखौरी कुंजबिहारी लाल, कुंजबिहारी दास, कुंजन)	कोरी (शाहाबाद)	१	,,
१२२.	,,	कुलपति	नवटोल-सरिसब (दरभंगा)	×	,,
१२३.	,,	कृष्णाकवि	सुखपुरा-परसरमा (सहरसा)	×	,,
१२४	,,	केशव	मिथिला	×	,,
१२५.	,,	गणेशप्रसाद	धमार (शाहाबाद)	१	(टीकाकार ?)
१२६.	,,	गुणानन्द	भगारथपुर (दरभंगा)	×	कवि
१२७.	,,	गुमानी तिवारी	पटना	२	,,
१२८.	,,	गोकुलानन्द	उजान या सरिसब (दरभंगा)	१	कवि-नाटककार

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
१२९.	अठारहवीं शती	गोपाल	बेहटा (दरभंगा)	३	कवि
१३०.	,,	गोपालशरणसिंह	बक्सर (शाहाबाद)	१	(टीकाकार ?)
१३१.	,,	गोपीचन्द	मगही-क्षेत्र	×	×
१३२.	,,	गोपीनाथ	शाहआलम-नगर (सहरसा)	२	×
१३३.	,,	गौरीपति (गारी)	दरभंगा	×	कवि
१३४.	,,	चन्दनराम	अम्बा (शाहाबाद)	३	,,
१३५.	,,	चन्द्रकवि	मिथिला	×	,
१३६.	,,	चन्द्रमौलि मिश्र (मौलि)	गया	१	,,
१३७.	,,	चक्रपाणि	मिथिला	×	,,
१३८.	,,	चतुर्भुज मिश्र	,,	१	,,
१३९.	,,	चूड़ामणिसिंह	हजारीबाग	१	×
१४०.	,,	छत्तरबाबा	पण्डितपुर (चम्पारन)	×	कवि
१४१	,,	छत्रनाथ (छत्रपति, नाथ, कविदत्त, कृवीश्वरदत्त)	हाटी-उझटी (दरभंगा)	४	,,
१४२.	,,	जगन्नाथ (जगरनाथराम	हवेली-खड़गपुर (मुँगेर)	१	,,
१४३.	,,	जयरामदास (गोस्वामी जयरामदास ब्रह्मचारी, सिद्धबाबा)	जोगियाँ (शाहाबाद)	२९	,,
१४४.	,,	जयानन्द (करणजयानन्द)	भगीरथपुर (दरभंगा)	१	कवि-नाटककार

क्रम०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
१४५.	अठारहवीं शती	जॉन क्रिश्चियन (जॉन अधम, अधमजन)	बनगाँव (सहरसा)	२	कवि
१४६.	,,	जीवनबाबा	राजापुर (शाहाबाद)	?	×
१४७.	,,	जीवनराम (रघुनाथ)	शिवदाहा (मुजफ्फरपुर)	१	कवि
१४८.	,,	जीवारामचौबे (युगलप्रिया)	इसुआपुर (सारन)	१	(टीकाकार ?)
१४९.	,,	झब्बूलाल	नयागाँव (सारन)	×	(कवि ?)
१५०.	,,	टेकमनराम	झखरा (चम्पारन)	×	कवि
१५१.	,,	तपसी तिवारी	ममरखा (चम्पारन)	×	,,
१५२.	,,	तुलाराम मिश्र	सतबरिया (चम्पारन)	×	,,
१५३.	,,	दयानिधि	पटना	×	,,
१५४.	,,	दिनेश द्विवेदी	टेकारी (गया)	२	,,
१५५.	,,	देवाराम	कर्जा (शाहाबाद)	×	,,
१५६.	,,	देवीदास	रामगढ़ (हजारीबाग)	१	,,
१५७.	,,	नन्दनकवि	उजान (दरभंगा)	?	,,
१५८.	,,	नन्दीपति (बादरि, कलानिधि)	मिथिला	१	कवि-नाटककार
१५९.	,,	नन्दूरामदास	ब्रह्मपुरा (मुजफ्फरपुर)	१	कवि

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
१६०.	अठारहवीं शती	नवलकिशोरसिंह	बेतिया (चम्पारन)	×	कवि
१६१.	,,	निधि उपाध्याय (जिरवन झा)	कोइलख (दरभंगा)	×	,,
१६२.	,,	पंडितनाथ पाठक	मुहम्मदपुर (गया)	×	(कवि ?)
१६३.	,,	प्रतापसिंह (मोदनारायण)	मिथिला	१	,,
१६४.	,,	प्रियादास	पटना	६	×
१६५.	,,	बालखंडी (रामप्रेम साह)	पिपरा (गोविन्दगंज)	×	कवि
१६६.	,,	बुद्धिलाल	मिथिला	×	,,
१६७.	,,	बेनीराम	इचाक (हजारीबाग)	२८	,,
१६८.	,,	ब्रह्मदेवनारायण 'ब्रह्म'	नयागाँव (सारन)	×	,,
१६९.	,,	भंजनकवि (कविशेखर)	मिथिला	×	,,
१७०.	,,	भवेश	भट्टपुरा (दरभंगा)	×	,,
१७१.	,,	भिनकराम	सहोरवा-गोनरवा (चम्पारन)	×	,,
१७२.	,,	भीखमराम (भीखामिश्र)	माधोपुर (चम्पारन)	१	,,
१७३.	,,	मनबोध (भोलन)	जमसम (दरभंगा)	१	कवि-अनुवादक
१७४.	,,	महीपति	मिथिला	×	कवि
१७५.	,,	माधवनारायण (केशव, केशन कवि)	,,	×	(कवि ?)
१७६.	,,	मानिकचंद दूबे	बनगाईं (शाहाबाद)	×	कवि

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
१७७.	अठारहवीं शती	मुकुन्दसिंह	रामगढ़ (हजारीबाग)	२	(कवि ?)
१७८	,,	मोदनारायण	मिथिला	×	कवि
१७९.	,,	रघुनाथदास	ब्रह्मपुरा (मुजफ्फरपुर)	×	,,
१८०.	,,	रमापति उपाध्याय	मिथिला	१	कवि-नाटककार
१८१.	,,	राधाकृष्ण (कृष्ण)	जयनगर (दरभंगा)	१	कवि
१८२.	,,	रामकवि	मिथिला	×	,
१८३.	,,	रामजीभट्ट	भोजपुर	१	(कवि-अनुवादक?)
१८४.	,,	रामजीवनदास	तुरकोलिया (चम्पारन)	×	कवि
१८५.	,,	रामनारायण प्रसाद	दामोदरपुर (चम्पारन)	×	,,
१८६.	,,	रामप्रसाद	बेतिया (चम्पारन)	१	,,
१८७.	,,	रामरहस्यसाहब (रामरजदूबे, रामरहेस)	टेकारी (गया)	५	,,
१८८.	,,	रामेश्वर	मिथिला	×	,,
१८९.	,,	रामेश्वरदास	कवलपट्टी (शाहाबाद)	१	,,
१९०.	,,	लक्ष्मीनाथ परमहंस (लक्ष्मीनाथ गोसाईं, लक्ष्मीपति, लखन, लछन)	परसरमा (सहरसा	१०	,,
१९१.	,,	लाल झा	मँगरौनी (दरभंगा	२	कवि-नाटककार
१९२.	,,	वंशराजशर्मा 'वंशमनि'	वीरभानपुर (शाहाबाद)	१	कवि-टीकाकार

क्रम सं०	स्थिति-काल	साहित्यकार का नाम	स्थान	ग्रंथ-संख्या	प्रवृत्ति
१९३.	अठारहवीं शती	वृन्दावन	बारा (शाहाबाद)	७	कवि
१९४.	,,	बेणीदत्त झा (दत्त)	हाटी (दरभंगा)	×	,,
१९५	,,	वेदानन्दसिंह	बनैली (पूर्णिया)	१	×
१९६.	,,	व्रजनाथ	उजान (दरभंगा)	×	कवि
१९७.	,,	शंकरदत्त	पटना	४	(कवि-नाटककार ?)
१९८.	,,	शुम्भुनाथ त्रिवेदी	ममरखा (चम्पारन)	१	कवि-अनुवादक
१९९.	,,	शिवनाथदास	तेलपा (सारन)	१	कवि
२००	,,	श्रीकान्त (गणक)	मिथिला	१	कवि-नाटककार
२०१.	,,	श्रीपति	,,	१	कवि-टीकाकार
२०२.	,,	सदल मिश्र	आरा (शाहाबाद)	२	अनुवादक-गद्यकार
२०३.	,,	सदानन्द (चित्रधर मिश्र)	चनबाइन (चम्पारन)	६	(कवि ?)
२०४.	,,	साहबरामदास (साहब-राम झा, साहबदास, साहबजन, साहब)	मिथिला	×	,,
२०५.	,,	हरलाल	हरिहरपुर (गोपालगंज)	×	,,
२०६.	,,	हरिचरणदास (हरिकवि)	चैनपुर (सारन)	१०	कवि-टीकाकार
२०७.	,,	हरिनाथ	मिथिला	×	कवि

❋

मूल पुस्तक में आये उद्धरणों[1] की प्रथम पंक्ति की अकारादिक्रम से सूची

१. उद्धरणों के आगे कोष्ठक में, 'ग०' संकेत का अर्थ गद्य और 'परि०' का अर्थ परिशिष्ट है ।

*तारांकित पंक्तियाँ क्रमशः ४८, १७०, १५०, १५१ और १८७ पृष्ठों के उदाहरणों में भ्रमवश आ गई हैं। 'भूमिका' के अन्त में इसका संकेत देखिए।—सं०

*

व्यक्तिनामानुक्रमणी

※

ग्रंथनामानुक्रमणिका[1]

1. जिन नामों के आगे कोष्ठक में 'प०' है, वे 'पत्र-पत्रिकाएँ' हैं।

*

सहायक ग्रंथों की सूची[1]

१. **श्रीवाल्मीकि रामायण सटीक**—सं० श्रीवासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, पाण्डुरंग जावजीं, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

२. **शब्दकल्पद्रुम** सं० स्यार-राजा राधाकान्तदेव बहादुर, वरदाप्रसाद वसु तथा हरिचरणवसु, ७१ पथरिया घाट स्ट्रीट, कलकत्ता।

३. **पुस्तक-भण्डार रजतजयन्ती-स्मारक-ग्रंथ**—पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय और पटना।

४. **कीर्त्तिलता**—सं० बाबूराम सक्सेना, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

५. **विद्यापति**—सं० मित्र-मजूमदार, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना-४।

६. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—पं० बलदेव उपाध्याय, शारदा-मंदिर, काशी।

७. **हिन्दी-शब्द-सागर**—सं० श्यामसुन्दर दास, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

८. **अध्यात्म रामायण**—सं० मुनिलाल, गीता प्रेस, गोरखपुर।

९. **बिहारसंस्कृतसमितेः समावर्त्तनमहोत्सवे मिथिलेशमहेशरमेशव्याख्यानात्मकं दीक्षान्त-भाषणम्**—श्रीआदित्यनाथ झा, मंत्री, बिहारसंस्कृतसमितेः।

१०. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—महेशचन्द्र प्रसाद, लेखक, छपरा।

११. **संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा**—स्वं० पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय शास्त्री तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य-निकेतन, कानर, बरेली।

१२. **संस्कृत-साहित्य का इतिहास**—हंसराज अग्रवाल तथा डॉ० लक्ष्मणस्वरूप, राजहंस प्रकाशन, सदरबाजार, दिल्ली।

१३. **मध्यकालीन भारतीय संस्कृति**—म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, हिन्दुस्तानी एकाडेमी, प्रयाग।

१४. **अमरकोष**—रामश्रमी टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

१५. **महाभाष्य**—रामश्रमी टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

१६. **प्राकृत-भाषाओं का व्याकरण**—डॉ० रिचर्ड पिशल, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३।

१७. **हिन्दी-साहित्य का इतिहास**—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी।

---

१. यह सूची केवल उन्हीं ग्रंथों की है, जिनका उल्लेख पाद-टिप्पणियों में हुआ है। —सं०

१८. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, रामनारायणलाल, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता, प्रयाग।
१९. मिश्रबन्धु-विनोद—मिश्रबन्धु, गंगापुस्तक-माला, लखनऊ।
२०. हर्षचरितम्—बाणभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, काशी।
२१. **Sanskrit English Dictionary**—Sir Monier-Williams, Oxford University Press, London.
२२. कविता-कौमुदी—रामनरेश त्रिपाठी, नार्दर्न इंडिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
२३. शुक्ल-अभिनन्दन-ग्रन्थ—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, मध्यप्रदेश।
२४. हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३।
२५. जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी, संशोधित, साहित्य-माला, ठाकुरद्वार, बम्बई-२।
२६. पुरातत्त्वनिबन्धावली—राहुल सांकृत्यायन, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।
२७. बौद्धधर्म-दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३।
२८. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के सप्तम वार्षिकोत्सव के सभापति-पद से किया गया डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का भाषण (मार्च १९५८ ई०),—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३।
२९. बौद्धगान-ओ-दोहा—म० म० हरप्रसाद शास्त्री, वंगीय साहित्य-परिषद्, कलकत्ता।
३०. हिन्दी-काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन, किताब-महल, इलाहाबाद।
३१. **An Introduction to Budhist Esoterism**—Benoytosh Bhattacharya, Humphrey Milford Oxford University Press, London.
३२. नाथ-संप्रदाय—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
३३. सिद्ध-साहित्य—डॉ० धर्मवीर भारती, किताब-महल, प्रयाग।
३४. दोहाकोश—राहुल सांकृत्यायन, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-३।
३५. राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रंथ—नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा।
३६. योग-प्रवाह—पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, श्रीकाशी विद्यापीठ, बनारस।
३७. बुद्ध और उनके अनुचर—भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग पब्लिशिंग हाउस, प्रयाग।
३८. तिब्बत में सवा वर्ष—राहुल सांकृत्यायन, शारदा-मंदिर, नई दिल्ली।
३९. बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन—जयचन्द्र विद्यालंकार और पृथ्वीसिंह मेहता पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय और पटना।
४०. तिब्बत में बौद्धधर्म—राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद।
४१. महाकवि विद्यापति—हरिनन्दन ठाकुर 'सरोज', प्रभात लाइब्रेरी, मधुबनी, दरभंगा।
४२. विद्यापति-गीत-संग्रह—डॉ० सुभद्र झा, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।
४३. रागतरंगिणी—बलदेव मिश्र, राजप्रेस, दरभंगा।
४४. विद्यापति की पदावली—नगेन्द्रनाथ गुप्त, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

४५. पारिजातहरण — चेतनाथ झा, दरभंगा प्रेस कम्पनी, दरभंगा।

४६. **A History of Maithili Literature**—J. Mishra, Tribhukti Publications, Allahabad.

४७. धूर्त्तसमागम (हस्त०)—बिहार-रिसर्च-सोसायटी (पटना) में सुरक्षित।

४८ श्रीज्योतिरीश्वर ठाकुर-प्रणीत वर्ण-रत्नाकर—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी तथा पं० बबुआजी मिश्र, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता।

४६. मैथिली-गीत-रत्नावली—बदरीनाथ झा, ग्रन्थालय प्रकाशन, दड़िभङ्गा।

५०. **An Introduction to the Maithili Language of North Bihar Containing Grammar, Chrestomathy and Vocabulary**—Grierson, Asiatic Society, Calcutta.

५१. विद्यापति-विशुद्ध-पदावली — शिवनन्दन ठाकुर, मैथिली-साहित्य-परिषद्, लहेरियासराय, दरभंगा।

५२. क्रियाबोध (हस्त०)— बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्(पटना)के हस्तलिखित-ग्रन्थ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

५३. मध्यकालीन हिन्दी-कवयित्रियाँ—डॉ० सावित्री सिन्हा, आत्माराम ऐण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली।

५४. विद्यापति-पदावली—कुमुद विद्यालंकार, रीगल बुक डिपो, दिल्ली।

५५. गोविन्द-गीतावली—मथुराप्रसाद दीक्षित, पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय और पटना।

५६. मिथिला-भाषामय-इतिहास — बख्शी म० म० मुकुन्द शर्मा, चौखम्बा संस्कृत-पुस्तकालय, बनारस सिटी।

५७. मिथिला-गीत-संग्रह —भोला झा, श्री रमेश्वर प्रेस, दरभंगा।

५८. गीतगोविन्द का मैथिली-अनुवाद (हस्त०)—बिहार रिसर्च सोसायटी (पटना) में सुरक्षित।

५६. पदकल्पतरु—श्रीसतीशचन्द्रराय, वंगीय-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता।

६०. मिथिलाराज-प्राप्ति-कवितावली—पं० जगदीश कवि, राजप्रेस, दरभंगा।

६१. राघव-विजयावली—पं० जगदीश कवि, राज प्रेस, दरभंगा।

६२. मैथिली-साहित्यक इतिहास—प्रो० कृष्णकान्त सिंह, मिथिला-प्रकाशन, लहेरियासराय।

६३. संत-कवि दरिया : एक अनुशीलन—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-३।

६४. राम-रसार्णव (हस्त०)—मन्नूलाल पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित।

६५. गोविन्दलीलामृत (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, (पटना) में सुरक्षित।

६६. हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

६७. धरनीदास जी की बानी—धरनीदास, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

६८. भोजपुरी के कवि और काव्य—दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३।

६९. बिहार-दर्पण—रामदीन सिंह, खड्गविलास प्रेस, पटना।

७०. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज—प्राचीन-साहित्य-संस्थान, राजस्थान-विश्वविद्यापीठ, उदयपुर।

७१. An Account of the district of Purnea in 1809-10 by Francis Buchanan—Bihar and Orissa Research Society, Patna.

७२. पंचामृत—शुकदेव ठाकुर, खड्गविलास प्रेस, पटना।

७३. चम्पारन की साहित्य-साधना—रमेशचन्द्र झा, भारती प्रकाशन, सुगौली, चम्पारन।

७४. विभिन्न कवियों के पदों के संग्रह (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

७५. नरेन्द्र-विजय—पं० महेश झा, राज प्रेस, दरभंगा।

७६. पोथी विद्याधर (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

७७. शिवपुराण-रत्न—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

७८. श्रीमत्खण्डवलाकुल-विनोद—पं० गोपाल झा, राज प्रेस, दरभंगा।

७९. Linguistic Survey of India—Sir George Abraham Grierson, Government of India, Central Publication Branch, Calcutta.

८०. उद्यन्त-प्रकाश (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

८१. सन्तमत का सरभंग-सम्प्रदाय—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३।

८२. श्रीमद्भगवद्गीता (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

८३. शिवदीपक (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ अनुसंधान विभाग में सुरक्षित।

८४. डॉ० जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन-कृत हिन्दी-साहित्य का इतिहास—किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

८५. भाषा-सार—बा० साहबप्रसाद सिंह, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।

८६. हरिहरकथा (हस्त)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

८७. शिवसिंह-सरोज—शिवसिंह, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

८८. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३।

८९. पाण्डव-चरितार्णव (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्त-लिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।

९०. शब्द-संहिता वाणी-प्रमोद—श्रीविश्वम्भरदासजी, राघोपुर बखरी, सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर।
९१. सीतासौरभ-मंजरी (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।
९२. भक्तविनोद तथा रागरत्नाकर—राजित शर्मा मलिक (प्रकाशक का पता नहीं मिला)।
९३. मिथिला-तत्त्व-विमर्श—पं० परमेश्वर झा, श्रीपरमेश्वर पुस्तकालय, तरौनी, दरभंगा।
९४. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी-ग्रंथों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण : सन् १९३५-३७ ई०—स्व० डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।
९५. बिरहमासा (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।
९६. श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रंथ—श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-समिति, मुंगेर।
९७. गोस्वामी लक्ष्मीनाथ की पदावली—डॉ० ललितेश्वर झा, भारत-प्रकाशन-मंदिर, लहेरियासराय।
९८. बिहार की साहित्यिक प्रगति—बिहार-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, पटना-३।
९९. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—कामता प्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
१००. बहुला-कथा (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।
१०१. शिवनाथ-सागर (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के हस्तलिखित-ग्रंथ-अनुसंधान-विभाग में सुरक्षित।
१०२. नासिकेतोपाख्यान—सदलमिश्र, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।
१०३. रामचरित्र या अध्यात्म-रामायण (हस्त०)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के प्रकाशन-विभाग में सुरक्षित।
१०४. साहब रामदास की पदावली—डॉ० ललितेश्वर झा, भारत प्रकाशन-मंदिर, लहेरियासराय।
१०५. राजस्थानी भाषा और साहित्य—मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

❀

सहायक पत्र-पत्रिकाएँ[१]

१. वंगीय साहित्य-परिषद्-पत्रिका (त्रैमासिक)—वंगीय-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता।
२. सरस्वती (मासिक)—इंडियन प्रेस, प्रयाग।
३. गंगा (मासिक)—गंगा-कार्यालय, सुल्तानगंज, भागलपुर।
४. साहित्य (त्रैमासिक)—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् एवं बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पटना-३।
५. **Journal of the Asiatic Society of Bengal**—Asiatic Society, Calcutta.
६. **Journal of the Bihar and Orissa Research Society**—Bihar and Orissa Research Society—Patna.
७. हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक)—हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद।
८. **Patna Univerversity Journal**—Patna University, Patna.
९. मिथिला-मिहिर (मासिक)—राज प्रेस, दरभंगा।
१०. कल्याण (मासिक)—गीताप्रेस, गोरखपुर।
११. वार्षिकी (वार्षिक)—नवयुवक-पुस्तकालय, मोतीहारी।
१२. आभा—आभा-परिषद्, सोनपुर।
१३. भोजपुरी (मासिक)—बाल-हिन्दी-पुस्तकालय, आरा।
१४. प्रदीप (दैनिक)—सर्चलाइट प्रेस, पटना।
१५. श्रीवेंकटेश्वर समाचार (दैनिक)—वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई।
१६. साप्ताहिक शाहाबाद (साप्ताहिक)—आरा, शाहाबाद।
१७. **Champaran District Gazetteer**—The Bihar and Orissa Government Press.
१८. व्रजभारती (त्रैमासिक)—व्रज साहित्य-मण्डल, मथुरा।
१९. साहित्य-संदेश (मासिक)—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।
२०. सम्मेलन-पत्रिका (मासिक)—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

❀

---

१. यह सूची भी केवल उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं की है, जिनका उल्लेख पाद-टिप्पणियों में हुआ है। इनके अतिरिक्त और भी पत्र-पत्रिकाएँ सहायक सिद्ध हुई हैं। —सं०

शुद्धि-पत्र

वक्तव्य

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
ख	१३	अम्बष्ठजा	अम्बष्ठजी
ख	१४	काफा	काफी
ग	१	शोध- ंस्थानों	शोध-संस्थानों
ग	१८	शाघ्र	शीघ्र

भूमिका

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
ण	२८	बेनापुरीजी	बेनीपुरीजी
न	१४	आर	और
प	१३	था	थी
फ	४	उल्लेखनाय	उल्लेखनीय
फ	२७	सामग्री-ंग्रह	सामग्री-संग्रह

प्रस्तावना

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२४ (टि०)	गेसूदराज बन्दानवज	गेसूदराज बन्दानवाजने
१६	९	प्राचान	प्राचीन
१६	२२	आर	और
१७	२१	अंख्य	असंख्य
२२	१३	इसी	इस
२४	२२	आर	और
२६	१३	शता	शती
२७	६	आर	और
२७	११	ंभव	संभव

मूल पुस्तक

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१७	छाड़िअ	छाडिअ
३	३-४	बिल में शयन करने वोल प्रभु	(बिल में शयन करनेवाले प्रभु)

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४	१०	भुसुक का)	(भुसुक का)
६	२	का	की
६	३	आर	और
६	१२ और १७	लुई	लुइ
६	२०	शबरापा	शबरीपा
६	२२	गुना	गुनी
७	१	इसा	इसो
७	१४	छाड़ छाड़	छाडु छाड
७	१७	पुकड़ए	पुडकए
७	१८	वाड़िर	वाडिर
१०	४	द्विवेदा	द्विवेदी
१०	६	भा	भी
१०	२३	केड़ु आल	केडुआल
१०	२४	मागा	माँगा
१२	१२	इसा	इसी
१२	१८	चनपुर	चैनपुर
१२	१७	पृ० ५६	(पृ० ५६)
१४	३	नाड़ी	नाडी
१४	१४	कवड़ी	कवडी
१४	१४	चड़िया	चडिया
१४	१४	बुड़ाई	बुडाई
१५	४	कम	काम
१५	१० और ११	दाढ़इ	दाढइ
१५	१२	फुड़	फुड
१७	७	वारूणी वान्धअ	वारुणी बान्धअ
१७	८	वारूणी	वारुणी
१७	१२	घड़िये	घडिए
१८	८	वाजिल	बाजिल
१८	२२	विदु	बिंदु
२०	१५	तिब्बता	तिब्बती
२२	२२	कं	कर्ण
२४	८ (टि०)	तइछन	तइसन
२४	१० (टि०)	ताड़क	ताडक
२४	१५ (टि०)	पुरातत्त्व-निबन्धाबली	पुरातत्त्व-निबन्धावली

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२५	२१	अवधूतापा	अवधूतीपा
३३	३६	मङ्गलाभिनीय	मङ्गलमभिनीय
३४	२५	नायिका	दायिका
३७	१५ (टि०)	श्रीज्योरीश्वर	ज्योतिरीश्वर
४२	६	भनथे	भनये
४४	१	आर	और
४४	७	अवधो-भाषा	अवधी-भाषा
४५	४ (टि०)	लखिमादेइ क	लखिमादेइ केर
४८	१	का	को
४८	५	नषधचरित	नैषधचरित
५१	१	जानू	(जानू)
५२	५ (टि०)	हिन्दी-कवयित्रियों	हिन्दी-कवयित्रियाँ
५४	२१	निवासा	निवासी
५४	२१	का	की
५५	१०	बंदरि	बदरि
५५	१७	आर	और
५५	१७	कहा	कहीं
५६	१६	था	थी
६२	१५	आइनवार-वंशीय	ओइनवार-वंशीय
६३	१८	आर	और
६६	१५	मैथिला-अनुवाद	मैथिली-अनुवाद
६६	१६	लेचन	लोचन
६७	१६	मैथिला	मैथिली
६८	१५	ह।	है।
६९	१०	मझाली	मझौली
६९	१५	कवित्व	कवित्त
६९	१६	का	की
७०	६ (टि०)	अचक	अचल
७८	१७	दउ	दोउ
७८	२०	दामोदरदास	दामोदरदास[१]
७८	२३	ग्रंथाकार	ग्रंथाकार
८७	२२	मथिली	मैथिली
९०	२१	मिला	मिला।
९२	३	पाठान्तर	पाठ

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
९४	३३ (टि०)	उद्यमं	उद्यमः
९८	८	कहां-कहीं	कहीं-कहीं
१०१	११	आर	और
१०२	१२	संगीतों	संगीत
१०३	८	पमाणालंकार	प्रमाणालंकार
१०४	२३	नहा	नहीं
१०५	३	इसा	इसी
११५	१२	भा	भी
११७	१२	था	थी
१२०	१ टि०	भोजपुररी	भोजपुरी
१२२	१२	हवेला खड़गपुर	हवेली खड़गपुर
१२२	१८	भा	भी
१२३	१३	यागिक	यौगिक
१२६	३	कोठा	कोठी
१२६	११	आपका	आपको
१२६	१५	था	थी
१२६	१७	का	की
१२८	२२	चाबे	चौबे
१३३	१८	जा	जो
१३६	२२	निवासा	निवासी
१३७	३	मैथिला-गीतों	मैथिली-गीतों
१३८	७	का	की
१३९	१९	परिरमाण	परिरम्भण
१४७	४ (टि०)	मिथिला के	मिथिलांक
१५३	८	श्रतिज्योति	अतिज्योति
१५३	६ (टि०)	की	के
१५५	२३	दुतिहारि	दुतिहारी
१५८	११	लंगा	लगा
१५९	२३	सुखदत्त	सुखदत्त
१६३	१० (टि०)	ब्रह्मभारती	व्रजभारती
१६६	२०	पात्र	पौत्र
१६७	१८	आर	और
१६७	२२	इन्हा	इन्हीं
१६८	२	बाहे	बाढे

पृ०	पं	अशुद्ध	शुद्ध
१६८	८	ग्रंथ	ग्रंथ
१७०	१३	धुपडोहा	ध्रुवडीहा
१७१	१६	संस्कृति	संस्कृत
१७३	६	आपका	आपकी
१७४	६	ओर	और
१७७	१६	बारा	बारी
१७८	१३	कनि	कवि
१८६	२५	प्रीप्तिनाथ	प्रीतिनाथ
१६२	११	मिलता	मिलती
१६४	१७	संग्रहात	संगृहीत
१६५	२	दोहे-चापाई	दोहे-चौपाई
१६७	१७	घकश्याम	घनश्याम
१६६	१३	विह्नि	विहि
२०४	२२	चतुभुज	चतुर्भुज
२०६	२४	भगारथपुर	भगीरथपुर
२१०	६	गारी	गौरी
२११	१	क्रमं०	क्रम सं०
२१२	१	क्रमं०	क्रम सं०

विशेष—उपर्युक्त अशुद्धियों के अतिरिक्त १८वीं शती के कुछ परिचयों और उनके उदाहरणों में भ्रमवश जो अशुद्धियाँ हो गई हैं, उनके लिए पाठक कृपया 'भूमिका', पृ० 'श' देखें और तदनुसार सुधार लेने का कष्ट करें।

द्रष्टव्य—तेरहवीं शती के कवि हरिब्रह्म के विषय में इधर यह ज्ञात हुआ है कि वे मिथिला के सोनकरियाम ग्राम के निवासी थे। इन दिनों उक्त ग्राम का नाम बदल गया है। पंजी-पुस्तक में उनके विषय में लिखा है—"सोनकरियाम कर्महास बीजी वंशधर: ए सुता महामहो० हरिब्रह्म महामहो० हरिकेश महोधूर्तराज गोनूका: सकराढ़ी सं चन्देयी दौहित्रा:" (देखिए मिथिला-तत्त्व-विमर्श, वही, पृ० १५१)। पाठक कृपया पृ० ३१ में प्रकाशित 'हरिब्रह्म' के परिचय में यह सामग्री सम्मिलित कर लें। —सं०

*